Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

तृतीय सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)- 201

संस्कृत नाट्य साहित्य

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकायाध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया इस्लामि
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड**	**इकाई संख्या**
डॉ0 नीरज कुमार जोशी	**खण्ड 1**	(इकाई 1 से 5)
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग	**खण्ड 2**	(इकाई 1)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 3**	(इकाई 5)
डॉ0 संगीता बाजपेयी	**खण्ड 2**	(इकाई 2)
अका0 एसोसिएट, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी		
डॉ0 बिन्देश्वर अवस्थी	**खण्ड 2**	(इकाई 3)
सरदार पटेल महावि0, हरैया बुजुर्ग, कुशीनगर	**खण्ड 3**	(इकाई 1 से 4)
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र	**खण्ड 2**	(इकाई 4 एवं 5)
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।		

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139 **कॉपीराइट** @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- संस्कृत नाट्य साहित्य **प्रकाशन वर्ष :** 2024
ISBN No. **मुद्रक:**

नोट:- इस पुस्तक में लिखित इकाइयों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की आपत्ति के निस्तारण का उत्तरदायित्व इकाई लेखक का होगा । इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता ।

अनुक्रम

खण्ड- एक संस्कृत नाट्य साहित्य का इतिहास	**पृष्ठ संख्या 1- 4**
इकाई-1 संस्कृत नाट्य परम्परा उद्भव एवं विकास	5-12
इकाई.2 संस्कृत नाट्यसाहित्य के प्रमुख नाट्यकार एवं उनके नाटक	13-42
इकाई-3 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का परिचय	43-63
इकाई-4 प्रमुख नाट्य तत्वों का परिचय	64-75
इकाई-5 रूपक के भेद	76-85
खण्ड- दो अभिज्ञानशाकुन्तलम् : प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय अंक	**पृष्ठ संख्या 86**
इकाई-1 महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त एवं उनकी काव्यप्रतिभा	87-105
इकाई-2 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कथावस्तु एवं पात्रों का परिचय	106-118
इकाई-3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक : मूलपाठ , अर्थ एवं व्याख्या	119-144
इकाई-4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् द्वितीय अंक : मूलपाठ , अर्थ एवं व्याख्या	145-164
इकाई-5 अभिज्ञानशाकुन्तलम् तृतीय अंक : मूलपाठ , अर्थ एवं व्याख्या	165-180
खण्ड- तीन अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ एवं पंचम अंक	**पृष्ठ संख्या 181**
इकाई-1अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक : श्लोक संख्या 01 से 11 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या	182-198
इकाई-2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक : श्लोक संख्या 12 से 22 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या	199-211
इकाई-3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचम अंक : श्लोक संख्या 01 से 15 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या	212-225
इकाई-4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचम अंक : श्लोक संख्या 16 से 31 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या	226-239
इकाई-5 अभिज्ञानशाकुन्तलम् की महत्त्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या	240-255

तृतीय सेमेस्टर / SEMESTER-III
खण्ड- एक (Section-A)
संस्कृत नाट्य साहित्य का इतिहास

इकाई-1 संस्कृत नाट्य परम्परा उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नाट्य शब्द का अर्थ एवं महत्त्व
1.4 नाट्य साहित्य का उद्भव
1.4.1 उद्भव सम्बन्धी भारतीय मत
1.4.2 उद्भव सम्बन्धी पाश्चात्य मत
1.4.3 नाट्य साहित्य का विकास
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 उपयोगी पुस्तकें
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाट्य साहित्य से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई है। साहित्यशास्त्र को जानने के लिए दो विधाओं को जानना अत्यन्त आवयश्क है। साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं दृश्य काव्य एवं श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार होती है। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक के नाम से जाना जाता है।

प्रस्तुत इकाई में आप यह जानेगें कि नाट्क किसे कहते हैं। इसकी उत्पत्ति तथा विकास किस प्रकार हुआ। नाट्यशास्त्र का स्वरूप क्या हैं ? इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे। नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि है इनके बारें में आप भली-भाँति परिचित होंगे। नाट्यशास्त्र के काल के विषय में अनेंक आचार्यों ने अपना अलग - अलग मत स्वीकार किया है इसके बारे में आप भली-भाँति परिचित होंगे।

इस इकाई के अध्ययन से बाद नाट्यशास्त्र का महत्व क्या है ? इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे। संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ। नाटकों के द्वारा सहृदय सामाजिक को आनन्द की प्राप्ति होती जो मानव के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसकी उपयोगिता से परिचित होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- नाटक किसे कहते हैं तथा इनका उद्भव किस प्रकार हुआ इस विषय को जान सकेगें।
- नाट्क के उद्भव से सम्बन्धित भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को समझ पायेगें।
- नाट्यशास्त्र के स्वरूप विषयक ज्ञान से अवगत हो सेकेंगे।

1.3 नाट्य शब्द का अर्थ एवं महत्त्व

साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं— दृश्य काव्य एवं श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के द्वारा भावक किसी भी घटना या वस्तु का चाक्षुष ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु श्रव्य काव्य के द्वारा केवल श्रवण ही प्राप्त होता है। श्रव्य काव्य मेंआनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा इसी आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार रूप से होती है।

जिसका अभिनय किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहते हैं **'दृश्यं तत्राभिनेयं'**। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक संज्ञा से भी जाना जाता है। रूपक शब्द की निष्पत्ति रूप धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से होती है। ये दोनों ही शब्द साहित्य में 'नाट्य' के द्योतक है। नाट्यशास्त्र में 'दशरूप' शब्द का प्रयोग नाट्य की विधाओं के अर्थ में हुआ है। अब प्रश्न यह उठता है कि नाट्य क्या है ? दशरूपककार आचार्य धनंजय नाट्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं — **'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'** अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं।

1.4 नाट्य साहित्य का उद्भव

संस्कृत रूपकों के उद्भव एवं विकास का प्रश्न भी नाम रूपात्मक जगत की सृष्टि के समान विवादास्पद है । अधिकांश विद्वानों का दृष्टिकोण है कि परमात्मा ने जिस प्रकार नामरूपात्मक जगत की सृष्टि की है उसी प्रकार नाट्य विद्या की भी नाट्य विद्या के सम्बन्ध में भारतीय तत्ववेत्ता मनीषी यह अवधारणा रखतें हैं कि इसकी उत्पत्ति के मूल में परमात्मा ही है । नाट्य साहित्य एक समग्र स्वतंत्र कला है, किन्तु उस में अनेक शास्त्रों का समाहार है। आज पश्चिम की परम्परा का रङ्गमञ्च में पर्याय स्थान देखने को मिलता है। लेकिन पारम्परिक रङ्गपरम्परा आज भी भारतीय परम्परा में जीवन्त है। नाटक की उत्पत्ति के विषय में सर्वाधिक प्राचीन मत हमें भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में उपलब्ध होता है। इस अध्याय का नाम 'नाट्ययोत्पत्ति' है। इसके अनुसार नाटक पंचम वेद है, जिसकी सृष्टि ब्रह्मा ने महेन्द्र सहित देवसमूह की प्रार्थना पर की—

महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्त: किल पितामह:।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यचयद्भवेत ॥
जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयांरसानाथर्वणादपि ॥
वेदापवेदै: संबद्धो नाव्यवेदो महात्मना ।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना ॥

इस प्रकार सब वेदों के ज्ञाता महात्मा भगवान श्री ब्रह्मा जी के द्वारा वेदों और उपवेदों से सम्बन्ध रखने वाला यह नाट्यवेद रचा गया। उपवेद चार हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद तथा स्थापत्यवेद। नाट्यवेद को उत्पन्न करके ब्रह्मा जी ने देवराज इन्द्र से कहा कि इसका अभिनय देवताओं से कराओ। जो देवता कार्यकुशल, पण्डित, वाक्पटु, तथा थकान को जीते हुए हों, उनको अभिनय का कार्य सोंपो। अर्थात अभिनेता के ये चार गुण हैं— कार्य कुशलता, पाण्डित्य, वाक्पटुता तथा थकान को जीतने की शक्ति। इन्द्र द्वारा देवताओं को अभिनय में असमर्थ बताने पर ब्रह्मा ने भरतमुनि के पुत्रों को इसकी शिक्षा देने के लिए कहा। ब्रह्माजी के कथानुसार इन्द्र के ध्वजोत्सव में नाट्यवेद सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ। इस अभिनय में देवों की विजय तथा दैत्यों का अपकर्ष प्रदर्शित हुआ, अत: उन्होंने विघ्न उपस्थित किया। इन विघ्नों से बचे रहने के लिए इन्द्र ने विश्वकर्मा से नाट्यगृह की रचना कराई। इसके उपरान्त ब्रह्मा ने दैत्यों को शान्त करने के लिए कहा कि नाट्यवेद देव और दैत्यों दोनों के लिए हैं तथा इसमें धर्म, क्रीड़ा, हास्य और युद्ध आदि सभी विषय ग्रहीत किये जा सकते हैं।

श्रंगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानका: ।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्य रसा: स्मृता:।

नाट्य का प्रयोजन—

दु:खार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम।

विश्रांतिजननं काले नाट्यमेतन्मयाकृतम ॥
धम्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्द्धनम ।
लोकोपदेश जननं नाट्यमेतद्भविष्यति ॥

अर्थात् ब्रह्मा जी कहते हैं कि मेरे द्वारा रचा हुआ यह नाट्य दु:ख से पीड़ित, श्रान्त, शोक संतप्त लोगों के लिए उचित समय पर विश्राम देने वाला है। यह नाटक धर्म, यश और आयु बढ़ाने वाला, हितकारी, बुद्धिवर्धक तथा लोकोपदेश का जन्मदाता होगा। इस नाटक में समस्त शास्त्र, शिल्प एवं विविध प्रकार के कर्म एकत्र एवं सन्निविष्ट हैं।

अहो नाट्यमिंद सम्यक त्वया सृष्टं महामते।
यशस्यं च शुभार्थं च पुण्यं बुद्धि विवर्द्धनम ॥

आचार्य भरतमुनि के अनुरोध पर पितामह ब्रह्म के आदेश से विश्वकर्मा द्वरा निर्मित नाट्यशाला में जब अमृतमन्थन नामक समवकार और त्रिपुरदाह नामक डिम का अभिनय हुआ (नगपति हिमालय, कैलाश पर नाट्यशाला थी) तो उसमें देवता तथा दानवों ने अपने–अपने भावों एवं कर्मों का स्वाभाविक एवं सजीव प्रदर्शन देखकर हार्दिक उल्लास प्रकट करते हुए कहा—'हे महामते, आपके द्वारा विरचित यह नाट्य–रचना अत्यन्त सुन्दरं है। यह यश, कल्याण, पुण्य तथा बुद्धि का विवर्द्धन करने वाली है।'

1.4.1 उद्भव सम्बन्धी भारतीय मत

यहां हम भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं —

दैवीय उत्पत्ति सिद्धान्त —

नाट्य विद्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शुभंकर ने अपने संगीत दामोदर में लिखा है कि एक समय देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे एक ऐसे वेद की रचना करें जिसके द्वारा सामान्य लोगों का भी मनोरंजन हो सके । इन्द्र की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने समाकर्षण कर नाट्य वेद की सृष्टि की । सर्वप्रथम देवाधिदेव शिव ने ब्रह्मा को इस नाट्य वेद की शिक्षा दी थी और ब्रह्मा ने भरतमुनि को और भरत मुनि ने मनुष्य लोक में इसका इसका प्रचार प्रसार किया । इस प्रकार शिव , ब्रह्मा भरत मुनि नाट्य विद्या के प्रायोजक सिद्ध होते हैं ।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्यविद्या के उद्भव के सम्बन्ध में कहा है कि सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे जनसामान्य के मनोरंजन के लिए किसी ऐसी विधा की रचना करें । उनके इस कथन से ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गायन यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण करके इस नाट्य वेद नामक पंचम वेद की रचना की । दशरूपककार आचार्य धनंजय ने भी इसी मत को स्वीकार किया है ।

भारतीय विद्वानों की यह मान्यता है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम इन्द्रध्वज महोत्सव के समय पर नाट्य का अभिनय हुआ था ।

संवादसूक्त सिद्धान्त —

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का विचार है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में संवाद प्राप्त होते हैं । यथा — 'यम यमी संवाद', पुरूरवा उर्वशी,शर्मा पाणि संवाद,इन्द्रमरूत, इन्द्र इन्द्राणी ,

विश्वामित्र नदी आदि प्रमुख संवाद है। यजुर्वेद में अभिनय सामवेद में संगीत और अथर्ववेद में रसों की संस्थिति है। इन्हीं तत्वों से धीरे धीरे रूपको का विकास हुआ।

1.4.2 उद्भव सम्बन्धी पाश्चात्य मत

संस्कृत नाटकों के उद्भव के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के मत इस प्रकार है।

वीरपूजा सिद्धान्त —

पाश्चात्य विद्वान डा0 रिजवे का मत है कि रूपकों के उद्भव में वीर पूजा का भाव मूल कारण है। दिवंगत वीर पुरूषों के प्रति समादर का भाव प्रकट करने की रीति ग्रीस, भारत आदि देशों में अत्यधिक प्राचीन काल से है।दिवंगत आत्माओं की प्रसन्नता के लिए उस समय रूपकों का अभिनय हुआ करता था। परन्तु डा0 रिजवे के इस सिद्धान्त से विद्वान सहमत नहीं हैं।

प्रकृति परिवर्तन सिद्धान्त —

डा0 कीथ के मतानुसार प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्त रूप में देखने की स्पृहा ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया। इसके प्रबल समर्थक डा0 कीथ प्रकृति परिवर्तन से नाटक की उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। 'कंसवध' नामक नाटक में हम इसके मूर्त रूप का दर्शन कर सकते हैं। परन्तु डा0 कीथ के इस मत को भी विद्वानों का समर्थन प्राप्त न हो सका।

पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त —

जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान डा0 पिशेल संस्कृत नाटक का उद्भव पुत्तलिकाओं के नृत्य तथा अभिनय से मानते हैं। 'सूत्रधार' एवं स्थापक शब्दों का नाटक में प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है महाभारत, बाल रामायण ,कथासरित्सागर इत्यादि में दारूमयी , पुत्तलिका आदि शब्दों का प्रयोग इस मत को पुष्टता प्रदान करते हैं। परन्तु विद्वानों के मध्य यह मत भी सर्वमान्य न हो सका

छाया नाटक सिद्धान्त —

छाया नाटकों से रूपक की उत्पत्ति एवं विकास का समर्थन करने वाले प्रसिद्ध विद्वान डा0 लूथर्स एवं क्रोनो है। अपने मत के समर्थन में वे महाभाष्य को प्रगाढ रूप में प्रस्तुत करते हैं। महाभाष्य में शौभिक छाया नाटकों की छाया मूर्तियों के व्याख्याकार थे पर दूतांगद नामक छाया नाटक अधिक प्राचीन नही है। अत: इसे नाटकों की उत्पत्ति का मूलकारण मानना न्यायोचित नहीं। अत: विद्वानों का यह मत भी अधिक मान्य नहीं हुआ।

मेपोलनृत्य सिद्धान्त —

इस सिद्धान्त के समर्थक इन्द्रध्वज नामक महोत्सव को नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य देशों में मई के महीने में लोग वसन्त की शोभा को देखकर एक लम्बा बाँस गाडकर उसके चारों तरफ उछलते कूदते एवं नाचते गाते हैं। यह इन्द्रध्वज जैसा ही महोत्सव है ऐसे ही उत्सवों से शनै: शनै: नाटक की उत्पत्ति हुई। परन्तु दोनो महोत्सवों के समय में पर्याप्त अन्तर है तथा इनके स्वरूप में भी परस्पर भिन्नता है अत: यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य नहीं है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ विद्वान लोकप्रिय स्वांग सिद्धान्त तथा वैदिक अनुष्ठान सिद्धान्त को भी रूपकों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। किन्तु विद्वान इस मत से भी सहमत नहीं हैं। विद्वानों के उपर्युक्त मतों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचंते हैं कि रूपकों के उद्भव का विषय अत्यन्त विवादास्पद है। प्राचीन भारतीय परम्परा नाट्यवेद का रचयिता ब्रह्मा को इंगित करती है और लोक प्रचारक के रूप में भरतमुनि को निर्दिष्ट करती है। आधुनिक विद्वान इससे भिन्न मत रखते हैं य़द्यपि यह माना जा सकता है कि इन मतों में से कोई मत नाटक की उत्पत्ति का कारण हो सकता है परन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि अमुक मत ही नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण है।

1.4.3 नाटक साहित्य का विकास

ऋग्वेद से ही हमें नाट्य के अस्तित्व का पता चलने लगता है। सोम के विक्रय के समय यज्ञ में उपस्थित दर्शकों के मनोरजंन के लिए एक प्रकार का अभिनय होता था। ऋग्वेद के संवाद सूक्त भी नाटकीयता का द्योतन करते हैं। यजुर्वेद में 'शैलूष' शब्द का प्रयोग किया गया है जो नट (अभिनेता) वाची शब्द है। सामवेद में तो संगीत है ही। इस प्रकार नाटक के लिए आवश्यक तत्व गीत, नृत्य,वाद्य सभी का प्रचार वैदिक युग में था। यह निश्चित है कि भारतीय नाट्य परम्परा के मूल उदगम ग्रंथ वेद ही है। आदिकाव्य रामायण में नाट्य तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत में भी नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का स्पष्ट उल्लेख है। हरिवंशपुराण में उल्लेख हुआ है कि कोबेररम्भाभिसार नामक नाटक का अभिनय हुआ था जिसमें शूर रावण के रूप में और मनोवती ने रम्भा का रूप धारण कर रक्खा था। मार्कण्डेय पुराण में भी काव्य संलाप और गीत शब्द के साथ नाटक का भी प्रयोग हुआ है। संस्कृत भाषा के महान वैयाकरण महर्षि पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में नट सूत्रों का स्पष्ट उल्लेख किया है। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक नाटकों का उल्लेख करते हुए 'शोभनिक' शब्द का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नट,नर्तक, गायक एवं कुशीलव शब्दों का प्रयोग हुआ है ।भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रमुख आचार्य माने गये हैं। भरतमुनि ने सुप्रसिद्ध 'नाट्यशास्त्र' की रचना की है। इसमें नाट्य से सम्बन्धित विषयों का विधिवत् विवेचन हुआ है। इन्होनें कोटल शाण्डिल्य, वात्सम, धूर्तिल आदि आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इनके समय तक अनेक नाटकों की रचना हो चुकी थी और नाट्यकला का विधिवत् विकास हो चुका था।

वेदों से लेकर भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों की रचना पुरातन काल से होती चली आ रही है परन्तु परिष्कृत नाटकों की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। संस्कृत नाटकों में महाकवि भास के नाटक अत्यधिक प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं। परिष्कृत रूपक रचनाओं में भास के रूपकों को प्राचीन माना जाता है। भास, शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, विशाखादत्त, मुरारि,

शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि आते हैं। इनके उच्चकोटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि की है।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. नाट्यशास्त्र के रचयिता का नाम लिखिए।
2. महाभारत के रचयिता का नाम लिखिए।
3. पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त किस विद्वान का मत है।
4. नाटक के उद्भव से सम्बन्धित कौन से दो मुख्य मत है।

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि नाटक किसे कहते हैं। किस प्रकार इसका उद्भव एवं विकास हुआ। इसके उद्भव के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों का क्या मत है। साथ ही आप वैदिक काल से लेकर अब तक नाटकों के विकास को भी जान पाये।

1.6 शब्दावली

शब्द	अर्थ
श्रवण	सुनना
उद्भव	उत्पत्ति
नाट्य	नाटक
दिवंगत	मृत (मरे हुए)
परिवर्तन	बदलाव
स्पृहा	इच्छा
विक्रय	बेचना
शैलूष	अभिनेता (नट)
प्रसादगुणोपेत	प्रसादगुण से युक्त
वपुः	शरीर
छेत्तुम्	काटने के लिए
अनघं	निष्कलंक
अनास्वादितम्	न चखा गया

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 —

(1) आचार्य भरतमुनि (2) महर्षि वेदव्यास (3) डा0 पिशेल (4) भारतीय एवं पाश्चात्य मत

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
3. दशरूपक, आचार्य धनंजय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

1.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
2. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तारिणीश झा ,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डा0 शिवबालक द्विवेदी , ग्रन्थम प्रकाशन।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाट्य साहित्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिये।

इकाई 2. संस्कृत नाट्यसाहित्य के प्रमुख नाट्यकार एवं उनके नाटक

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संस्कृत नाट्यसाहित्य के प्रमुख नाटककार एवं उनके नाटक
- 2.3.1 भास
- 2.3.2 कालिदास
- 2.3.3 विशाखदत्त
- 2.3.4 शूद्रक
- 2.3.5 श्रीहर्ष
- 2.3.6 भट्टनारायण
- 2.3.7 भवभूति
- 2.3.8 अन्य नाटयकार
- 2.3.9 आधुनिक संस्कृत नाट्य परम्परा

2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाटक साहित्य से सम्बन्धित यह द्वितीय इकाई है। जैसा कि आपने पूर्व में अध्ययन किया है की साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार होती है। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक के नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत इकाई में आप यह जानेगें कि संस्कृत नाटकों के विकास में किस- किस का योगदान है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप संस्कृत नाट्यसाहित्य के प्रमुख नाटककारों महाकवि भास, कालिदास, अश्वघोष, विशाखदत्त, शूद्रक, हर्ष, भट्टनारायण, भवभूति आदि महाकवियों का संस्कृत नाटकों में क्या योगदान है। नाटकों के द्वारा सहृदय सामाजिक को आनन्द की प्राप्ति होती जो मानव के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसकी उपयोगिता से परिचित करा सकेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- कालिदास का जन्म कब और कहां हुआ यह जान सकेंगे।
- कालिदास की रचनाओं के बारे में बता सकेगें।
- भास, शूद्रक, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटकों के नाम बता सकेंगे।
- शूद्रक कौन थे यह बता सकेंगे।
- शूद्रक के जन्म स्थान के विषय में बता सकेगे।
- आधुनिक संस्कृत नाटक परम्परा से अवगत हो सकेंगे।

2.3 संस्कृत नाट्यसाहित्य के प्रमुख नाटककार एवं उनके नाटक

2.3.1 भास—

भास की चर्चा अनेक प्राचीन कवियों और लेखकों ने की थी जिनमें कालिदास (मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना), बाण (हर्षचरित, प्रस्तावना), दण्डी (अवन्ति-सुन्दरीकशा), वाक्पतिराज (गउडवहो, गाथा-८००), राजशेखर (सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत पद्य भासनाटकचक्रेऽपि'०), सगरनन्दी (नाटकलक्षणरत्नकोश), रामचन्द्र-गुणचन्द्र (नाट्यदर्पण, गायकवाड सं०, पृ० ८४), भोजदेव (श्रृंगारप्रकाश, द्वादश प्रकाश), अभिनवगुत (लोचन-टीका) इत्यादि प्रमुख हैं। फिर भी आधुनिक युग में भास की रचनाओं को प्रकाश में १९०९ ई० में डॉ० गणपतिशास्त्री (१८६०-१९२६ ई०) ही ले आये। केरल राज्य के पद्मनाभपुरम् के निकट मणलिक्करमठ से उन्हें मलयालम लिपि में १०५ पृष्ठों की गठरी मिली जिसमें भास के दस रूपक पूरे और एक रूपक खण्डित रूप से प्राप्त हुए। अभिषेक और प्रतिमा नाटक बाद की यात्राओं में उन्हें मिले। डॉ० विन्सेन्ट स्मिथ ने इस उपलब्धि का प्रचुर प्रचार किया। भास का समय निर्धारण करना कठिन समस्या है। इनके समय की पूर्ववर्ती सीमा 500 ईसा पूर्व मानी जाती है क्योंकि

भास ने रामायण, महाभारत की घटनाओं एवम् उदयन तथा प्रद्योत की कथा को आश्रित करके अपने रूपकों की रचना की है। इन ग्रन्थों तथा राजाओं का समय लगभग 600 ईसा पूर्व माना जाता है अतः भास के समय की पूर्ववर्ती सीमा 500 ईसा पूर्व मान सकते हैं। ए. बी. कीथ के मतानुसार भास का. समय 300 ई0 के लगभग है। भास की कुल तेरह उपलब्ध रचनाओं को निम्नलिखित पांच वगों में रखा जाता है-

1.	रामकथाश्रित	१. प्रतिमा तथा २. अभिषेक
2.	महाभारताश्रित	३. पन्चरात्र ४. मध्यम व्यायोग ५. दूत घटोत्कच ६. कर्णाभार ७. दूतवाक्य ८. उरूभंग
3.	भागवताश्रित	९. बालचरित
4.	लोककथात्मक	१०. दरिद्रचारूदत्त ११. अविमारक
5.	उदयन कथाश्रित	१२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण १३. स्वप्नवासवदत्त

इनमें कतिपय नाटक – महाभारताश्रित रूपक – एक ही अंक में समाप्त हैं। अत: उन्हें 'एकांकी रूपक' कहा जा सकता है। इन रूपकों का संक्षिप्त परिचय यहाँ इसी क्रम से प्रस्तुत किया जाता है।

1. प्रतिमा नाटक – राम का वनवास, सीताहरण आदि आयोध्या काणड से लेकर रावणवध तक की घटनाओं का वर्णन इस नाटक में किया गया है। इस नाटक से प्राचीन भारत में कला-विषयक नवीन वृत्तांत का पता लगता है। प्राचीनकाल में राजाओं के देवकुल होते थे जिनमें मृत्यु के अनंतर राजाओं की पत्थर की बड़ी मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी। इक्ष्वाकुवंश का भी ऐसा ही देवकुल था जिसमें मृत नरेशों की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी। केकेयदेश से आते समय अयोध्या के समीप देवकुल में स्थापित दशरथ की प्रतिमा को देखकर ही भरत ने उनकी मृत्यु का अनुमान आप ही आप कर लिया। इसी कारण इसका नाम 'प्रतिमा'-नाटक' है।

2. अभिषेक नाटक – इसमें राम के राज्याभिषेक का तथा किष्किधा, सुंदर और लंकाकांड के कथानक का वर्णन किया गया है। इन दोनों नाटकों में बालकांड को छोड़कर रामायण के शेष कांडों की कथाएँ आ गई है।

3. पन्चरात्र- महाभारत की एक घटना को लेकर यह नाटक रचित है। द्रोणा ने दुर्योधनसे पांडवों को आधा राज्य देने के लिये कहा। दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की कि पाँच रातों में यदि पांडव मिल जायँगे तो मैं उन्हें राज्य दे दूँगा। द्रोणा के प्रयत्न रकने पर पांडव मिल गये और दुर्योधन ने उन्हें आधा राज्य दे दिया। यह घटना कल्पित है और महाभारत में नहीं मिलती।

4. मध्यमव्यायोग

5. दूतघटोत्कच

6. कर्णाभार

7. दूतवाक्य

8. उरूभंग – ये नाटक महाभारत की विशिष्ट तत्तत् घटनाओं से सम्बद्ध है।

9. बालचरित – कृष्ण के बालचरित से सम्बद्ध है।

10. दरिद्रचारूदत्त – धनहीन परन्तु चरित्रसंपन्न ब्राह्मण चारूदत्त तथा गुणाग्राहिणी वारवनिता

11. वसंतसेना का आदर्श प्रेम वर्णित है।

12. अविमारक – प्राचीन आख्यायिका का नाटकीय रूप है जिसका संकेत कामसूत्र में मिलता है। इस नाटक में अविमारक तथा राजा कुंतिभोज की पुत्री कुरंगी के प्रेम का वर्णन किया गया है। प्रणय का चित्रण बहुत ही सुंदर तथा सरस है।

13. प्रतिज्ञायौगन्धरायण – कौशाम्बी के आखेट के प्रेमी राजा उदयन को कृत्रिम हाथी के छल से उज्जयिनी-नरेश महासेन ने पकड़ लिया। इस रूपक में उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण ने दृढ़ प्रतिज्ञा करके केवल राजा को ही बन्धन से नहीं छुड़या, बल्कि कुमारी वासवदत्त का भी कपट से हरण कराया। मन्त्री की दृढ़-प्रतिज्ञा तथा कुटिलनीति का यह सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है।

14. स्वप्नवासवदत्तम् – भास के उपर्युक्त नाटको में स्वप्नवासवदत्तम् सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति है। इसमें उदयन तथा वासवदत्ता की प्रेमकथा का वर्णन है। विशुद्ध प्रेम के वर्णन के अतिरिक्त नाटकीय घटनाओं का अद्भुत संयोजन इस नाटक की अपनी विशेषता है।

2.3.2 कालिदास—

संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास के जन्म स्थान, समय और जीवनवृत्त के विषय में अन्य कवियों की भांति निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। कुछ किंवदन्तियों तथा अनुमानों के आधार पर ही थोडा बहुत जाना जा सकता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तावना तथा भरतवाक्य के आधार पर इतनी जानकारी तो अवश्य ही प्राप्त होती है कि ये विक्रमादित्य के राजकवि थे। महाकवि कालिदास के विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वे आरम्भ में इतने मूर्ख थे कि जिस डाल पर बैठे हुए थे उसी को काट रहे थे। कुछ पण्डित जो एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में पराजित हो गये थे वहां के राजा से रूष्ट होकर धोखे से उनका विवाह उनकी विदुषी पुत्री विद्योत्तमा से करा देते हैं। एक दिन जब वह ऊँट को उट्र कहकर पुकारने लगे और प्रयत्न करने पर भी उष्ट्र न कह सके तब उनकी पत्नी ने उन्हें धक्का देकर घर से निकाल दिया। खिन्न होकर वह काली देवी के मन्दिर में गये ओर अपनी जीभ काट कर देवी पर चढा दी। माँ काली ने इन्हें सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान दिया और तभीसे यह कालिदास कहलायें। वहाँ से लौटकर अपने घर वापस आने पर इन्होने 'अनावृतं कपाटं द्वारं देहि' कह कर अपनी पत्नी से किवाड खुलवाये। विद्योत्तमा ने 'अस्ति कश्चित वाग्विशेष: ' कहकर इनका सम्मान किया। कालिदास ने अस्ति शब्द से 'अस्त्युत्तरस्याम् दिशि देवतात्मा ' कुमारसंभवम् ,कश्चित से 'कश्चितकान्ताविरहर्गुरूणां ' से मेघदूत और वाग्विशेष: से 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ ' से रघुवंश महाकाव्य की रचना की। इनके वर्णनों से ज्ञात होता है कि इन्होनें दूर दूर तक भ्रमण किया था। प्रकृति से इन्हें विशेष लगाव था। ऐसा माना जाता है कि इनकी मृत्यु 50 वर्ष की अवस्था में सिंहलद्वीप में इनके मित्र कुमारदास की दरबारी वेश्या के द्वारा हुई थी। इसी प्रकार इनके जन्म स्थान भी काश्मीर, बंगाल,विदर्भ तथा उज्जयिनी

बतलाये जाते हैं किन्तु उज्जयिनी को ही इस महाकवि की जन्मभूमि कहलाने का गौरव हुआ है।

स्थितिकाल —

महाकवि कालिदास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत है। इनका स्थितिकाल ईसा की छठी शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक माना जाता है। इसका विवरण निम्नलिखित है —

ईसा की छठी शताब्दी का मत —

कालिदास ने अपने नाटकों में स्वयं को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राजसभा का कवि बतलाया है। किन्तु विक्रमादित्य नाम के कई राजा हुए हैं अत: कालिदास किस विक्रमादित्य के समय में हुए हैं यह एक विवादास्पद विषय है। डा0 फर्ग्युसन का मत है कि उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने 544 ई0 में शकों को पराजित करके विक्रम सम्वत् चलाया उन्होनें इस सम्वत् को प्राचीन बनाने के लिए इसका आरम्भ अपने समय से 600 वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा से 57 वर्ष पूर्व रखा। कालिदास इन्हीं विक्रमादित्य की सभा के कवि थे। इस मत को मानने वाले कहते हैं कि कालिदास के ग्रन्थों में शक, यवन और हूण आदि जातियों का उल्लेख है। हूणों ने भारत पर 500ई0 में आक्रमण किया था अत: कालिदास का समय ईसा की छठवीं शताब्दी है।

समीक्षा —

डा0 फर्ग्युसन के इस मत की पुष्टि में कि विक्रम सम्वत् को 600 वर्ष चलाया कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शक,यवन और हूण आदि जातियों का वर्णन विदेशी आक्रमणकारियों के रूप में नहीं किया है बल्कि रघु की दिग्विजय के प्रसंग में ही किया है। अत: शकादि के आक्रमण से पूर्व भी उनका वर्णन न्यायोचित नहीं है। 473 ई0 में मन्दसौर बाली वत्स भट्ट द्वारा लिखित प्रशस्ति में ऋतुसंहार और मेघदूत की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है अत: कालिदास इससे पूर्व के ही होगें।

गुप्तकालीन मत —

'कीथ' महोदय का मत है कि कालिदास गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375—413) की सभा के कवि थे। इन्हीं चन्द्रगुप्त ने शकों को भारत से बाहर निकाल कर विक्रमादित्य की उपाधि को धारण किया था और पहले से ही चले आने वाले मालव सम्वत् को विक्रमसम्वत् के नाम से चलाया था। इस मत को मानने वालों के निम्न तर्क हैं —

कालिदास के कुमार संभव महाकाव्य की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमार गुप्त के नाम को ध्यान में रख कर की थी। कालिदसा के ग्रन्थों में वर्णित भारत की सुख समृद्धि गुप्तकाल की सुख समृद्धि से समानता रखती है। रघुवंश में वर्णित अश्वमेध यज्ञ का वर्णन समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ से समानता रखता है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि कालिदास गुप्त काल में विशेषत: चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में हुए होगें।

समीक्षा —

कालिदास ने कुमार संभव महाकाव्य में कुमार शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ में किया है। अत: इससे कुमारगुप्त संकेत निकालना अनुचित है। रघु की दिग्विजय का वर्णन एक काल्पनिक कवित्वपूर्ण वर्णन है, ऐतिहासिक नहीं। किसी भी गुप्त सम्राट का नाम 'विक्रमादित्य'नहीं था यह केवल उनकी उपाधि मात्र थी। इससे सिद्ध है कि उनके पूर्व विक्रमादित्य नाम का अति प्रतापी राजा हुआ होगा और उसका नाम बाद में उपाधि के रूप में स्वीकार कर लिया होगा इस प्रकार यह मत भी उचित नहीं है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का मत —

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विक्रम की प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा उज्जयिनी का शासक था। अत: कालिदास इसी के समकालीन रहे होगें क्योंकि प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में महाकवि अश्व घोष की स्थिति सिद्ध होती है और उनके ऊपर कालिदास का प्रभाव है। अत: कालिदास का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी में ही सिद्ध होता है। उक्त प्रमाणें से स्पष्ट हे कि कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही होना चाहिए।

रचनाएं —

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रंगार है। कालिदास ने दो महाकाव्य , दो गीतिकाव्य तथा तीन नाटकों की रचना की। इस प्रकार इनकी कुल सात रचनाऐं हैं जिसमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् इनका विश्व प्रसिद्ध नाटक है।

महाकाव्य —

कुमारसंभव तथा रघुवंश कालिदास के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। कुमारसंभव में 18 सर्ग हैं किन्तु विद्वान 8 सर्गों को ही कालिदास द्वारा रचित मानते हैं। इसमें पार्वती जन्म, कामदहन , पार्वती तपस्या, शिव विवाह, कार्तिकेय जन्म आदि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। **रघुवंश** महाकाव्य में19सर्ग हैं। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वर्णन है। यह उनका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

गीतिकाव्य —

ऋतुसंहार तथा मेघदूत कवि के प्रसिद्ध गीतिकाव्य हैं। ऋतुसंहार में षडऋतुओं का छ: सर्गों में अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। प्रत्येक सर्ग में क्रमश: एक—एक ऋतुओं का वर्णन है। मेघदूत कालिदास का प्रसिद्ध गीतिकाव्य है। इसमें कवि ने विरही यक्ष के द्वारा मेघ के माध्यम से अपनी प्रियतमा को भेजे गये सन्देश का वर्णन किया है। भौगोलिक वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण, तथा विरहिणी की मर्म व्यथाओं को देखकर मेघदूत को संस्कृत काव्य जगत का सर्वोत्तम गीतिकाव्य कहा जाता है।

नाटक —

विक्रमोर्वशीयम् , मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास के प्रसिद्ध नाटक हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण , कथोपकथन , नाटकीय सन्धि तथा रसपरिपाक की दृष्टि से

कालिदास के नाटक अद्वितीय हैं । मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का प्रथम नाटक है इसमें अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणय कथा का पाँच अंको में वर्णन है । विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंको का नाटक है। इसमें पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् कवि का सर्वश्रेष्ठ नाटक है । इसमें सात अंक है । इसके सात अंको में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन , वियोग तथा पुनर्मिलन का सुन्दर वर्णन है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है ।

1. 'मालविकाग्निमित्र' में शुङ्गवंशीय नरेश अग्निमित्र तथा मालविका के प्रेम का अभिराम चित्रण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय लेकर कमनीयता के साथ अंकित किया गया है। कवि ने राजाओं के अन्तःपुर की चहारदीवारी के भीतर विकसित होने वाले काम, रानियों की परस्पर ईर्ष्या, राजा की कामुकता, महिषी बारिणी की धीरता तथा उदात्तता का चित्रण बड़ी सुन्दरता से किया गया है।

2. विक्रमोर्वशीय' में कालिदास ने एक वैदिक प्रेमाख्यान को, ऋग्वेद (१०१९५) तथा शतपथ ब्राह्मण (११।५।१) में निदिष्ट पुरुरवा तथा उर्वशी की प्रेम-कथा को, कमनीय नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्राचीन प्रेमाख्यान ने अपनी प्रौढ़ता तथा चमत्कार के कारण कवि का ध्यान आकृष्ट किया। पुरुरवा नितान्त उपकारपरायण भूपाल है और बह राक्षस से उर्वशी का उद्धार करता है। इसी प्रसंग में उर्वशी उसके अलौकिक रूप पर आसक्त होकर अनेक धनों के माथ उसकी रानी बनना स्वीकार करती है। उसके वियोग में पुरुरवा पागल बनकर जंगल में मारा-मारा फिरता है। कवि ने पुरुरवा के उद्दाम प्रेम का, संसार के समग्र वन्धनों को तोड़कर बहनेवाली कामरिता का, चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ किया है। यहाँ कवित्व का ही विलाम अधिक है, नाटकीय कौशल का काम। इस नाटक में कवि ने प्रणय तथा प्रणयोन्माद को ही प्रधान प्रतिपाद्य विषय बनाया है।

3. अभिज्ञान-शाकुन्तल- यह कालिदास का सबसे प्रसिद्ध नाटक है । भारतीय आलोचकों ने तो इसे नाटक-साहित्य में सबसे श्रेष्ठ बतलाया है- 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' । पश्चिमी विद्वानों ने भी अपनी दृष्टि से इसे अत्युत्तम नाटक माना है। इस नाटक में सात अंक हैं। पहले अंक में हस्तिनापुर का राजा दुष्यन्त आखेट करने के लिए बन में जाता है और संयोगवश महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला से साक्षा- त्कार करता है। उसकी जन्मकथा सुन उसके हृदय में शकुन्तला के लिए अनुराग उत्पन्न होता है । द्वितीय अंक में ऋषियों की प्रार्थना पर आश्रम की रक्षा करने के लिये वह स्वयं वहीं रह जाता है । तृतीय अंक में राजा और शकुन्तला का समागम है। चतुर्थ अंक में कण्व तीर्थयात्रा से लौटकर आश्रम में आते हैं और आपन्नसत्त्वा शकुन्तला को गौतमी, शारद्वत और शार्ङ्गरव नामक दो शिष्यों के साथ हस्तिनापुर भेजते है। शकुन्तला का आश्रम से जाने का दृश्य बड़ा ही करुणोत्पादक है। पंचम अंक में शकुन्तला हस्तिनापुर पहुँचती है; परन्तु दुर्वासा के अभिशाप के कारण राजा उसे पहचानता नहीं । इस प्रत्याख्यान के बाद ऋषियों के चले जाने पर शकुन्तला को कोई दिव्य ज्योति आकाश में उठा ले जाती है और मारीच के आश्रम में वह अपनी माता मेनका के साथ निवास करती है। पष्ठ अंक में राजा की

नामांकित अंगूठी मछुए के पास से राजा को मिलती है जिसे देखते ही दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति हो जाती है। वह अपनी प्रियतमा के प्रत्याख्यान से अत्यन्त विह्वल हो उठता है। अन्त में इन्द्र की साहयता करने के लिये वह स्वर्गलोक में जाता है। सप्तम अंक में दुष्यन्त विजय प्राप्त कर स्वर्ग से लौटता है और मारीच आश्रम में अपने पुत्र तथा प्रियःतमा का साक्षात्कार करता है। इसी मिलन तथा मारीच के आशीर्वाद के साथ नाटक समाप्त होता है।

अभ्यास प्रश्न 1 —

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. कालिदास का समय ईसा पूर्व ——— शताब्दी है।
2. कालिदास की पत्नी का नाम ——— है।
3. रघुवंश ——— है।
4. विक्रमोर्वशीयम् ——— अंको का नाटक है।
5. अभिज्ञानशाकुन्तल का नायक ——— है।
6. मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का ——— नाटक है।
7. मेघदूत ——— है।
8. ऋतुसंहार में ——— ऋतुओं का वर्णन किया गया है।
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नायिका ——— है।
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ——— अंक है।

2.3.3 विशाखदत्त—

सस्कृत नाट्य जगत में एकमात्र राजनीतिक नाटक 'मुद्रराक्षस' के प्रणेता विशाखदत्त का संस्कृत नाट्य साहित्य में विशेष स्थान है। मुद्राराक्षस की प्रस्तावना से यह ज्ञात होता है कि विशाखदत्त राजपरिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता महाराज पृथु एवं पितामह वटेश्वरदत्त थे। परिणामतः राजनीति के क्षेत्र में इनकी विशेष रुचि थी। शायद यही कारण रहा होगा कि इन्होंने मुद्राराक्षस जैसे नाटक का प्रणयन किया। कुछ लोग 'देवीचन्द्रगुप्त' को भी विशाखदत्त की ही रचना मानते हैं। नाट्यदर्पण एवं भोज के शृङ्गारप्रकाश से इस नाटक के विषय में जानकारी मिलती है। छः या सात अंकों के इस नाटक में भी विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के द्वारा शकों की पराजय एवं सौराष्ट्र विजय का वर्णन किया है। मुद्राराक्षस नाटक में विशाखदत्त मगध के प्रति विशेष आदरभाव प्रदर्शित करते हैं। पाटलिपुत्र एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों के वर्णन से ऐसी प्रतीति होती है कि ये मगध के निवासी थे, उसी राज्य के प्रमुख सामन्तों के परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनकी पारिवारिक उपाधि दत्त थी। इन्होंने मुद्राराक्षस के मंगलाचरण में शिव की तथा भरतवाक्य में विष्णु की स्तुति की है, अतः इन्हें ब्राह्मण धर्म का अनुयायी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मुद्राराक्षस में बौद्ध धर्म के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म के प्रति भी वे श्रद्धा का भाव रखते थे। विशाखदत्त के काल निर्धारण में अन्तः साक्ष्य एवं बहिः साक्ष्य का आश्रय लिया जाता है।

अन्तःसाक्ष्यों पर यदि दृष्टिपात् करें तो मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में म्लेच्छों के आक्रमण की चर्चा, प्रस्तावना में वर्णित चन्द्रग्रहण तथा जैन और बौद्ध धर्म के प्रति उनके विचार उनका काल निर्धारण करने में साक्ष्य उपस्थित करते हैं। मुद्राराक्षस में 'पार्थिवोऽवन्विर्मा', 'पार्थिवों दन्तिवर्मा' आदि पाठ मिलते हैं उन्होंने गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (375.423 ई.) की ओर संकेत किया है। ये अवन्तिवर्मा कन्नौज के मौखरि राजा थे जिनका समय छठीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध था। इस आधार पर विशाखदत्त का समय 550.600 ई. माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त भरतवाक्य में म्लेच्छों के आक्रमण और उनकी पराजय, चन्द्रग्रहण और विशाखदत्त की जैन और बौद्ध धर्म के प्रति आस्था भी इन्हें 600 ई. से पूर्व का ही सिद्ध करती है। बहिःसाक्ष्यों में दशरूपक आरै सरस्वतीकण्ठाभरण में मुद्राराक्षस के श्लोक प्राप्त हाते हैं। किन्तु यह ग्रन्थ नितान्त बाद के हैं। अतः इनके आधार पर विशाखादत्त का काल निर्धारण करना उचित नहीं होगा।

मुद्राराक्षस—

सुभाषित ग्रन्थों में दिए गए उद्धरणों से पता चलता है कि विशाखदत्त ने ''मुद्राराक्षस'' और ''देवीचन्द्रगुप्त'' के अतिरिक्त ''राघवानन्द'' नामक एक और नाटक की रचना की थी, पर यह कृति अब उपलब्ध नहीं है।

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस भारतीय कूटनीति से ओत प्रोत एक ऐतिहासिक नाटक है। वीर रस प्रधान इस नाटक का नायक चाणक्य है। नायिका एवं विदूषक रहित सात अंकों वाले इस नाटक में चाणक्य व आमात्य राक्षस के बुद्धिकौशल का विशाखदत्त ने वर्णन किया है। इस नाटक के प्रथम अंक में चाणक्य को राक्षस के तीन विश्वासपात्र सम्बन्धियों क्षपणक जीवसिद्धि, कायस्थ शकटदास तथा श्रेष्ठी चन्दनदास के सम्बन्ध में गुप्तचरों से सचूना मिलती है तथा राक्षस की एक मुद्रा भी प्राप्त होती है, जो राक्षस की पराजय का कारण बनती है। द्वितीय अंक में राक्षस की कूटनीतिक पराजय का प्रथम दर्शन होता है। चाणक्य की जागरुकता के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त की हत्या की राक्षस की योजना विफल हो जाती है। तृतीय अंक में कौमुदी महोत्सव निषेध का वर्णन किया गया है। नाटक के चतुर्थ अंक में राक्षस को अपनी योजना की असफलता का पता चलता है। राक्षस पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु से सम्पर्क स्थापित कर उसे चन्द्रगुप्त की जगह नन्दवंश के सिंहासन पर बैठाने की योजना बनाता है। पंचम अंक में नाटक की मुख्य कथा का वर्णन है। इस अंक में मुद्रित लेख तथा आभूषण के साथ सिद्धार्थक पकडा़ जाता है। परिणामस्वरूप मलयकेतु का विश्वास राक्षस से हट जाता है और वह राक्षस का विरोधी बन जाता है। राक्षस के विरोध के परिणामस्वरूप मलयकेतु अपने सहयोगियों के साथ पकड़ लिया जाता है तथा राक्षस को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। छठें अंक में राक्षस चन्दनक की प्रवृत्ति जानने के लिए कुसुमपुर लौट जाता है जहाँ उसे चन्दनदास को दिए जाने वाले मृत्युदण्ड की सजा की सूचना मिलती है। सातवें अंक में चन्दनदास को फाँसी के लिए वधस्थान पर ले जाया जाता है, जहाँ उसकी पत्नी व पुत्र विलाप कर रहे हैं। स्वयं को इस विपत्ति से बचाने के

लिए उसका मित्र राक्षस वहाँ उपस्थित होता है और चाणक्य की मित्रता स्वीकार कर चन्द्रगुप्त का आमात्य बनना स्वीकार करता है। इसी घटना के साथ नाटक का अन्त होता है।

2.3.4 शूद्रक—

शूद्रक की एकमात्र रचना मृच्छकटिकम् है । इसमें कुल दस अंक है जिसमें सामान्य जनजीवन को आधार बनाकर सामाजिक पृष्ठभूमि का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस नाटक के दो प्रमुख विभाग हैं – एक चारूदत्त और वसन्तसेना का प्रेम तथा दूसरा आर्यक की राज्य-प्राप्ति । यह एक चरित्र प्रधान प्रकरण है । इसमें कुल सत्ताइस प्रकार के पात्र है इनमें राजकर्मचारी, चोर, सिपाही, सन्यासी, दासी, वैश्य, गणिका आदि विविध पात्र हैं । यह नाटक तत्कालीन जन-जीवन की सम्पूर्ण झाँकी प्रस्तुत करने में समर्थ है ।

मृच्छकटिक के रचियता शूद्रक का कुछ परिचय ग्रन्थ के आरम्भ (1। 4. 1। 5) में ही मिलता है । उसके अनुसार शूद्रक हस्तिशास्त्र में परम प्रवीण थें, भगवान शिव के अनुग्रह से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, बड़े ठाट बाट से उन्होने अश्वमेघ यज्ञ किया था, अपने पुत्र को राज्य सिंहासन पर बैठा दस दिन तथा सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर अन्त में अग्नि में प्रवेश किया। वह युद्वप्रेमी थे, प्रमाद रहित थे, तपस्वी तथा वेद जानने वालों में श्रेष्ठ थे । राजा शूद्रक को बड़े हाथियों के साथ बाहुयुद्ध करने का बड़ा शौक था, उनका शरीर था शोभन , उसकी गति थी मतंग समान नेत्र थे चकोर की तरह, मुख था पूर्ण चन्द्रमाँ की भाँति । तात्पर्य यह है कि उनका समग्र शरीर सुन्दर था। वे द्विजो में मुख्य थे । प्रतीत होता है की किसी अन्य लेखक ने यहाँ जान बूझ कर कह दिया है। 'शूद्रकोऽग्नि प्रविष्ट' स्वयं लेखक की लेखनी इस भूतकाल का प्रयोग कैसे कर सकती है। निः संदेह यह अंश प्रक्षेप है।

द्विदेन्द्र गतिश्चनकोरनेत्र: परिपूर्णेन्दु मुख: सुविग्रहश्चब ।
द्विजमुख्ययतम: कविर्बभूव प्रथित: शूद्रकं इत्यूगाधसत्वद: ।।
ऋग्वेयदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाच्द्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्यर: ।
राजानं वीक्ष्यध पुत्रं परमसमुदवेनाश्वशमेधेन चेष्ट्वा
लब्वां व आयु: शताब्दंट दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टि: ।।
समरव्य सनी प्रमादशून्यय: ककुदो वेदविदां तपोधनश्चद ।
परवारणबाहुयुद्धलुब्धम: क्षितिपाल: किल शूद्रको बभूव ।।

शूद्रक नामक राजा की संस्कृत - साहित्य में खूब प्रसिद्धि है। जिस प्रकार विक्रमादित्य के विषय में अनेक दंतकथायें हैं । उसी प्रकार शूद्रक के विषय में भी है। कादम्बरी विदिशा नगरी में कथा- सरित्सागर में शोभावती तथा वेतालपंचविंशति में वर्धमान नामक नगर में शूद्रक के राज्य करने का वर्णन पाया जाता है। कथा सरित्सागर का कथन है। कि किसी ब्राह्मण ने राजा को आसन्नमृत्यु जानकर उसे दीर्घ जीवन की आशा में अपने प्राण निछावर कर दिये थे। हर्षचरित में लिखा है शूद्रक चकोर राजा चन्द्रकेतू का शत्रु था ।

स्कन्दपुराण के अनुसार विक्रमादित्य के सत्ताईस वर्ष पहले शूद्रक ने राज्य किया था। प्रसिद्ध है की कालिदास के पूर्ववती रामिल तथा सोमिल नामक कवियों ने मिलकर 'शूद्रक कथा' नामक कथा लिखी थी। अतः शूद्रक इसके कर्ता नहीं है। बहुत से लोग तो शूद्रक की सत्ता में ही विश्वास नहीं करते। परन्तु ये सब श्रान्त धारणाऐं हैं। तथ्य यह प्रतीत होते है कि विक्रमादित्य के समान ही शूद्रक भी ऐतिहासिक क्षेत्र से उठकर कल्पना जगत के पात्र माने जाने लगे थे। और उसी प्रकार ऐतिहासिक लोग प्रथम शतक में विक्रमादित्य के अस्तित्व के विषय में भी सन्देहशील थे उसी प्रकार शूद्रक के विषय में भी। आधुनिक शोध में दोंनों ही ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध होते है। ऐसी दशा में शूद्रक को मृच्छकटिक का रचयिता न मानने वाले डासिलवाँ लेवी तथा कीथ मत स्वयं ध्वस्त हो जाता है। विशेल ने जो दण्डी को इसका रचयता होने का श्रेय दिया है। वह भी कालविरोध होने से भ्रान्त प्रतीत होता है। शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और वे ही मृच्छकटिक के यथार्थ लेखक थे।

जन्म समय—

पुराणों में आन्ध्रभृत्य - कुल के प्रथम राजा शिमुक का वर्णन मिलता है। अनेक भारतीय विद्वान राजा शिमुक के साथ शुद्रक की अभिन्नता कर अंगीकार कर इनका समय विक्रम की प्रथम शताब्दी में मानते है। यदि यह अभिन्नता सप्रमाण सिद्ध की जा सके तो शूद्रक कालिदास के समकालीन अथवा उनके कुछ पूर्व के ही माने जायेंगे। परन्तु मृच्छकटिक की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने में बहुतों को आपत्ति है। वामनाचार्य ने अपनी काव्यालंकार - सूत्र वृति में 'शूद्रकादिरचिषु' प्रबन्धेषु' शूद्रक-विरचित प्रबन्ध का उल्लेख किया और 'द्यूतं हि नाम पुरूषस्य असिंहासनं राज्यम् ' इस मृच्छकटिक के द्यूत - प्रशंसा-परक वाक्य को उद्धृत भी किया है , जिससे हम कह सकते है कि आठवीं शताब्दी के पहले ही मृच्छकटिक की रचना की गई होगी। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य दण्डी (सप्तम शतक) ने भी काव्यादर्श में 'लिम्पतीव तमोऽगांनि' मृच्छकटिक के इस प़द्यांश को अलंकारनिरूपण करते समय उद्धृत किया है। इन बहिरंग प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि मृच्छकटिक की रचना सप्तम शताब्दी के पहले ही हुई होगी। समय-निरूपण में मृच्छकटिक के अन्तरंग प्रमाणों से भी बहुत सहायता मिलती है। नवम अंक मे वसन्तसेना की हत्या करने के लिए शकार आर्य चारूदत पर अभियोग लगता है। अधिकरणिक के सामने यह पेश किया जाता है। अन्त में मनु के अनुसार ही धर्माधिकारी निर्णय करता है।

अयं हि पातकी विप्रो न बध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मातु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह ।।

इससे स्पष्ट ही है कि मनु के कथनानुसार अपराधी चारूदत अवध्य सिद्व होता है और धनसम्पति के साथ उसे देश से निकल जाने का दण्ड दिया जाता है। यह निर्णय ठीक मनुस्मृति के अनुरूप है।

न जातु ब्राहम हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतम् ।।
न ब्राहमणवधाद् भूयानधर्मो विद्यते भुवि।

तस्मादस्य वधं राजा मनसपि न चिन्तयेत् ।।

अतः मृच्छकटिक की रचना मनुस्मृति के अनन्तर हुई होगी। मनुस्मृति का रचना काल विक्रय से पूर्व द्वितीय शतक माना जाता है जिसके पीछे मृच्छकटिक को मानना होगा। भास कवि के 'दरिद्र चारूदत' तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में अत्यन्त समानता पाई जाती है। मृच्छकटिक का कथानक बहुत विस्तीर्ण है, दरिद्रचारूदत का संक्षिप्त। मृच्छकटिक भास के रूपक के अनुकरण पर रचा गया है अतः शूद्रक का समय भास के पीछे चाहिए। मृच्छकटिक के नवम अंक में कवि ने बृहस्पति को अंगारक (अर्थात् मंगल) का विरोधी बतलाया है।

परन्तु वराहमिहिर ने इन दोनों ग्रहों को मित्र माना है। , प्रसिद्व

अङ्गारकविरूद्वस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः

ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः।। (मृच्छ0 9 ।33)

ज्योतिषी वराहमिहिर का सिद्वान्त ही आजकल फलित ज्योतिष में सर्वमान्य है। आज कल भी मंगल तथा बृहस्पति मित्र ही माने जाते है , परन्तु वराहमिहिर के पूर्ववर्ती कोई-कोई आचार्य इन्हें शत्रु मानते थे, जिसका उल्लेख बृहज्जातक में ही पाया जाता है। वराहमिहिर का परवर्तीग्रन्थकार बृहस्पति को मंगल का शुत्र कभी नहीं माना जा सकता। अतः शुद्रक वराहमिहिर से पूर्व के ठहरते है। वराहिमिहिर की मृत्यु 589 ईस्वी में हुई थी , इसीलिए शुद्रक का समय छटी सदी के पहिले होना चाहिये।

इन सब प्रमाणों का सार यही है कि शूद्रक दण्डी (सप्तम शतक) और वराहमिहिर (षष्ट शतक) के पूर्ववर्ती थे, अर्थात् मृच्छकटिक की रचना पंचम शतक में मानना उचित है। और यह अविर्भावकाल नाटक में वर्णित सामाजिक दशा से पुष्ट होता है।

मृच्छकटिकम् का सारांश—

मृच्छकटिक में 10 अंक है। पहले अंक का नाम 'अलंकारन्यास' है। इसमें उज्जयिनी की प्रसिद्व वारवनिता वसन्तसेना को राजा का श्यालक शकार वश में करना चाहता है। रास्ते में अँधेरी रात में विट तथा चेट के साथ शकार उसका पीछा कर रहा है। मूर्ख शकार के कथन से वसन्तसेना को पता चलता है कि वह आर्य चारूदत के मकान के पास ही है। अतः उसके घर में घुसती है। विदूषक मैत्रेय शकार को डॉट-डपट कर घर में घुसने से रोकता है। चारूदत से वार्तालाप करने के बाद शकार से बचने के लिये वसन्त-सेना अपना गहना उसके घर पर रख आती है। दूसरें अंक का नाम 'द्युतक-संवाहक' है। दूसरे दिन सवेरे दो घटनाएं घटती हैं। संवाहक पहले चारूदत की सेवा में था , पीछे पक्का जुआरी बन जाता है। वह जुएँ में बहुत सा धन हार जाता है जिससे वह चारूदत के घर भाग आता है। चारूदत उसे ऋण मुक्त कर देते है। संवाहक बौद्व भिक्षु बन जाता है उसी दिन प्रातः काल वसन्तसेना का हाथी रास्ते में किसी भिक्षुक को कुचलना ही चाहता है कि उसका सेवक कर्णपूरक उसे बचाता है। चारूदत अपना बहुमूल्य दुशाला को उपहार में दे देते हैं। तीसरे अंक का नाम सधिच्छेद है। वसन्तसेना की दासी मदनिका को शर्विलक सेवा से मुक्त करना चाहता है। वह ब्राह्मण है, परन्तु प्रेमपाश में बंधकर आर्य चारूदत के घर में सेंघ मारता है। और वसन्तसेना का गहना चुरा लेता है।

चतुर्थ अंक का नाम '**मदनिका-शर्विलक** ' है जिसके शर्विलक अलकार लेकर वसन्त-सेना के घर जाता है और मदनिका को सेवा-मुक्त कर देता है। चारूदत की पतिव्रता पत्नी धूता अपनी बहुमूल्य रत्नावली उसके बदले में देती है। मैत्रेय रत्नावली लेकर वसन्तसेना के महल में जाता है और जुएँ में हार जाने का बहाना कर रत्नावली देता है । वसन्तसेना सायंकाल चारूदत के घर आने के लिए वादा करती है । पाँचवें अंक का नाम 'दुर्दिन' है । इसमें वर्षा का विस्तृत वर्णन है सुहावने वर्षाकाल में आर्य चारूदत उत्सुकता से वसन्तसेना की प्रतीक्षा में बैठे हैं। चेट वसन्तसेना के आगमन की सूचना देता है।

षष्ठ अंक का नाम 'प्रवहणविपर्यय' है । तथा सप्तम का 'अर्थकापहरण' । प्रातः काल चारूदत पुष्पकरण्डक नामक बगीचे में गये है। उनसे भेंट करने के लिए वसन्तसेना जाना चाहती है, परन्तु भ्रम से शकार की गाड़ी में, जो समीप में खड़ी थी , जा बैठती है। इधर राजा पालक किसी सिद्व की भविष्यवाणी पर विश्वास कर गोपाल के पुत्र आर्यक को कैदखाने में बन्द कर देता है आर्यक कारागृह से भागकर चारूदत की गाड़ी में चढ़ जाता है। श्रृंखला की आवाज को भूषण की झनझनाहट समझ गाड़ी हाँक देता है। रास्ते में दो सिपाही गाड़ी देखने जाते हैं जिनमें से एक आर्यक को देख उसकी रक्षा करने का वचन देता है और अपने साथी से किसी बहाने झगड़ा कर बैठता है आर्यक बगीचे में चारूदत से भेंट करता है, 'अष्टम अंक' का नाम 'वसन्तसेना' - मोचन' है । जब वसन्तसेना पुष्पकरण्डक उद्यान में पहुँचती है , तब प्राणप्रिय चारूदत के स्थान पर दुष्ट शकार - संस्थानक मिलता है , जो उसकी प्रार्थना न स्वीकार करने से वसन्तसेना का गला घोंट डालता है संवाहक भिक्षु बन गया है । वसन्तसेना को समीप के विहार में ले जाते है और योग्य उपचार से उस पुनरूज्जीवित करता है । नवम अंक में जिनका नाम 'व्यहार ' है, शकार चारूदत्त पर वसन्तसेना के मारने का अभियोग लगता हैं कचहरी में जज के सामने मुकदमा पेश होता है । उसी समय चारूदत का बालक पुत्र रोहसेन-मृच्छकटिक (मिट्टीकी गाड़ी) लेकर आता है, जिसमें वसन्तसेना के दिये सोने के गहने है। इसी आधार पर चारूदत को फाँसी का हुक्म होता है । 'संहार 'नामक दशम अंक में उसी समय राज्य-परिवर्तन होता है। पालक को मार चारूदत का परम मित्र आर्यक राजा बन जाता है। वह चारूदत को क्षमा ही नहीं कर देता, प्रत्युत मिथ्याभियोग के कारण शकार को फाँसी का हुक्म देता है., परन्तु चारूदत के कहने से क्षमा कर देता है । वसन्तसेना के साथ चारूदत का व्याह सम्पन्न होता है । इसी अन्तिम प्रेम-मिलन के साथ यह रूपक समाप्त होता है। इस प्रकरण के कथावस्तु के दो अंश है -प्रथम भाग चारूदत् तथा वसन्तसेना का प्रेम दूसरा भाग आर्यक की राज्यप्राप्ति। शूद्रक ने पहले अंश को भास के 'दरिद्र-चारूदत् नाट्क से अविकल लिया है। शब्दतः और अर्थतः दोनो प्रकार की अपनी सम्पति प्राचीन ऐतिहासिक घटना के आधार पर लिखा गया मानते है । दोनों अंशों को शूद्रक ने बड़ी सुन्दरता के साथ सम्बद्व किया हैं ।

अभ्यास प्रश्न. 2—

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अतिसंक्षेप में दीजिए।

1-मृच्छकटिकम् के रचयिता कौन है ।

2- मृच्छकटिकम् के आरम्भ में किसका वर्णन है

3- मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक का क्या नाम है।

4-शूद्रक किस शास्त्र में प्रवीण थे।

5-वसन्तसेना कौन थी।

6- शकार कौन था।

अभ्यास प्रश्न 3 - बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मृच्छकटिकम् का अर्थ है-

(क) लोहे का घोड़ा (ख) सोने का घोड़ा

(ग) मिट्टी का गाड़ी (घ) लकड़ी का गाड़ी

2. मृच्छकटिकम् की मुख्य नायिका है-

(क) मदनिका (ख) वसन्तसेना

(ग) गौरी (घ) पार्वति

3. मृच्छकटिकम् प्रकरण का नायक है -

(क) शकार (ख) विट

(ग) चारूदत्त (घ) इनमें से कोई नहीं

4. शकार का राजा से सम्बन्ध है-

(क) साला का (ख) मामा का

(ग) चाचा का (घ) पिता का

5. मृच्छकटिकम् क्या है -

(क) कथा (ख) गीतिकाव्य

(ग) प्रकरण (घ) चम्पू काव्य

2.3.5 श्रीहर्ष—

संस्कृत साहित्य के लिए यह सौभाग्य की बात है कि हर्ष के विषय में जानने और समझने के लिए हमारे पास पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। बाण ने हर्षचरित में तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में हर्ष के जीवन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित पक्षों को उद्धृत किया है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि 606 इ. से 648 ई. तक हर्ष का शासन काल था। ह्वेनसांग ने भी हर्ष के शासन में ही 629 ई. से 641 ई. के मध्य भरत का भ्रमण किया था। वह बहुत दिनों तक हर्ष की राजसभा में ही रहा। हर्ष के पिता प्रभाकरवधर्न ने 588 ई. में अवन्तिवर्मा के साथ मिलकर हूणों को परास्त किया था। प्रभाकरवर्धन के तीन पुत्रों में हर्ष का स्थान दसूरा है। हर्ष ने अपनी कूटनीति से बाल्यावस्था में ही अपने राज्य स्थाणीश्वर को इतना विस्तृत कर लिया कि पूरा उत्तरी भारत उसके अधिकार में आ गया। हर्ष केवल वीर ही नहीं अपितु श्रेष्ठ विद्वान् और कवि भी थे। इन्होंने प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द नामक तीन नाटकों की रचना की है। महाकवि श्रीहर्ष की तीन नाट्य कृतियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं – (1) रत्नावली (2) प्रियदर्शिका (3) नागानन्द।

महाकवि हर्ष ने तीन नाटकों की रचना की है। 'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली' आरै 'नागानन्द'। इन कृतियों के सम्बन्ध में कुछ आलोचकों का कहना है कि ये हर्ष की रचनाएँ नहीं हैं। उन्होंने अपने किसी आश्रित कवि (बाण का धावक) द्वारा उन्हें लिखवाकर अपने नाम से प्रचलित किया। इतना तो निश्चित है कि उक्त तीनों रचनाएँ एक ही कवि की लेखनी से प्रसूत हैं क्योंकि इन तीनों नाटकों की प्रस्तावना में एक ही रचयिता हर्ष का उल्लेख हुआ है।

'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' में दो श्लोक समान हैं तथा एक श्लोक 'प्रियदर्शिका' आरै 'रत्नावली' में भी अभिन्न है। इन तीनों नाटकों की शैली में भी पूर्ण समानता है। अब प्रश्न यह होता है कि इनके रचयिता कानै थे ? कुछ टीकाकारों के अनुसार धावक नामक किसी कवि ने रत्नावली आदि की रचना हर्ष के नाम से करके प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त की थी किन्तु इस किंवदन्ति के समर्थन में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। हर्ष स्वयं एक अच्छे कवि थे। बाण ने उनकी काव्य चातुरी की प्रशसां अपने हर्षचरित में की है। जयदेव ने उन्हें ''कविताकामिनी का हर्ष'' कहा है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इन तीनों नाटकों की रचना हर्ष की लेखनी से ही हुई है।

1. प्रियदर्शिका—

प्रियदर्शिका हर्ष की प्रथम रचना है। प्रियदर्शिका का सम्बन्ध भी उदयन के कथाचक्र के साथ है, यह भी चार अंकों की एक प्रणय नाटिका है। इसमें राजा उदयन के अन्तःपुर की प्रेम कहानी चित्रित है। इस नाटिका में तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। राजा दृढवर्मा युद्ध में हार जाते हैं। उनकी कन्या प्रियदर्शिका दुर्घटना के कारण राजा उदयन के अन्तःपुर में पहुँच जाती है। वहाँ वह आरण्यिका नाम से रानी की दासी बनकर रहती है। उदयन उस पर मुग्ध हो जाते हैं। अन्तःपुर के रंगमंच पर उदयन और वासवदत्ता के विवाह का अभिनय होता है, जिसमें आरण्यिका वासवदत्ता बनती है और उदयन स्वयं उदयन। यह अभिनय प्रेम का अभिनय न रहकर वास्तविक हो जाता है। वासवदत्ता क्षुब्ध होकर अरण्यिका को कारागार में डाल देती है। अरण्यिका के विषपान कर लेने पर उसको विष उतारने वाले उदयन के समक्ष लाया जाता है। तभी दृढवर्मा का कंचुकी मूर्च्छित राजकुमारी को पहचान लेता है। इससे वासवदत्ता को पश्चाताप होता है और वह राजा और अरण्यिका का विवाह करवा देती है। अपनी प्रसादिक शैली, वस्तु रचना की सरलता, अनेक रोचक घटनाओं एवं अवस्थाओं की सृष्टि तथा कतिपय उत्कृष्ट वर्णनों द्वारा हर्ष अपनी प्रियदर्शिका नाटिका को रोचक बनाने में सफल हुए।

2. रत्नावली—

रत्नावली संस्कृत साहित्य की सफल नाटिका है। रत्नावली में चार अंक हैं। इसमें वत्सराज उदयन तथा उनकी रानी वासवदत्ता की परिचारिका सागरिका की रोचक प्रेम.कथा वर्णित है। नायिका वास्तव में सिंहल देश की राजकन्या रत्नावली है, जो दुर्घटनावश दासी का कार्य कर रही है। अन्त में इस रहस्य का उद्घाटन होने पर नायक.नायिका का विवाह हो जाता है। रत्नावली में प्रधान रस शृंगार है। इसका नायक धीरललित है। कथानक कौतूहल से परिपूर्ण है।

घटनाएँ नाटकीय ढंग से घटित होती हैं। रत्नावली अभिनय की दृष्टि से भी सफल कृति है। वेष विपर्यय का दृश्य बड़ा रोचक हुआ है। काव्य सौन्दर्य के साथ.साथ इसमें चरित्र.चित्रण भी विशद् हुआ है। नाट्यशास्त्र के नियमों का इसमें पूर्णतया पालन हुआ है।

3. नागानन्द—

नागानन्द में पाँच अकं हैं। जीमूत वाहन नामक राजकुमार के आत्मत्याग का बौद्ध आख्यान इसमें वर्णित है। जीमूतवाहन एक विद्याधर राजकुमार है। राजा मित्रवसु की भगिनी मलयवती से उसका विवाह होता है। एकदिन मित्रवसु के साथ टहलते समय जीमूतवाहन हड्डियों का ढेर देखता है। उसे ज्ञात होता है कि दिव्य पक्षी गरुड़ को प्रतिदिन साँपो की भेंट चढ़ाई जाती है। यह उन्हीं मरे हुए साँपो की हड्डियों का ढेर है। वह निश्चय करता है कि में प्राणों का बलिदान करके भी इस हत्याकांड को रोकूँगा। नागानन्द पर ''बौद्धधर्म'' की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। नायक और मलयवती के प्रमे का भी इस नाटक मे वर्णन किया गया है। प्राणियों के प्रति दया तथा आत्मोत्सर्ग की भावना का इस नाटक में सुन्दर निदर्शन हुआ है।

इन तीन नाट्यकृतियों में रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिकाएँ है । इन दोनों में साहित्य में प्रसिद्ध वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की प्रेमकथा वर्णित है । इनकी तीसरी नाटयकृति नागानन्द में प्रसिद्ध ब्राह्मणकुमार जीमूतवाहन की करूणापूर्ण दान वृत्ति का गुणगान है । जीमूतवाहन नागों की रक्षा के लिए गरूड़ को अपना शरीर तक समर्पित करते हैं ।

2.3.6 भट्टनारायण—

'वेणीसंहार' नाटक महाभारत-युद्ध पर आश्रित वीररस-प्रधान नाटक है तथा इसमें नाटकीय उपादानों का सर्वाधिक प्रयोग होने के कारण संस्कृत नाट्यशास्त्रियों के द्वारा इसके उद्धरण व्यापक रूप से दिये गये हैं। वेणीसंहार की प्रस्तावना में इन्होंने अपने को 'मृगराजलक्ष्मा' (अर्थात् मृगराज या सिंह की उपाधिवाला) कहा है। सम्भवतः ये 'कविमृगेन्द्र' कहे जाते होंगे। बंगाल में किंवदनी प्रचलित है कि सेनवंश के प्रवर्तक आदिशूर (६५० ई०) ने कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मण-परिवारों को वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बुलाया था, उनमें भट्टनारायण भी अन्यतम थे।

उक्त किंवदन्ती में सत्य का जो भी अंश निहित हो, किन्तु एक बात स्पष्ट है कि वेणीसंहार के उद्धरण प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने दिये हैं। वामन (८०० ई०) ने अपनी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (५/२/८१) में वेणीसंहार (३/४१) के 'पतितं वेत्स्यसिक्षतौ' प्रयोग में 'वेत्स्यसि' को शुद्धाशुद्धता पर विचार किया है।' आनन्दवर्धन (८५० ई०) ने ध्वन्यालोक (३/४४ की वृत्ति) में वेणीसंहार के पञ्चम अङ्क का एक पूरा पद्य 'कर्ता द्यूतच्छलानाम्' इत्यादि पद्य गुणीभूतव्यङ्ग्य के साथ ध्वनि के मिश्रण का उदाहरण देने के लिए संकलित किया है। एकादश शतक ई० के भोज, क्षीरस्वामी और मम्मट ने जो उदाहरण दिये हैं, वे भट्टनारायण की प्रसिद्धि के पर्याप्त प्रमाण हैं। कश्मीर-निवासी वामन जब बंगवासी भट्टनारायण का उद्धरण देते हैं तो यही उन्हें सातवीं शताब्दी में सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

वेणीसंहार–

वेणीसंहार छह अंकों का नाटक है। इसमें मुख्य कथानक इस प्रकार है भीम अपनी प्रतिज्ञा अनुसार दुःशासन और दुर्योधन को मार कर द्रौपदी को चोटी बाँधते हैं (वेणी-चोटी, संहार सवाँरना)। इसी घटना की पूर्तिक क्रम में महाभारत की पूरी कथा इसमें दृश्य या सूच्य प्रक्रिया से वर्णित है। इसके प्रथम अंक में कृष्ण के दूत बनकर दुर्योधन की राजसभा में जाने का वर्णन है, इससे भीम बहुत कुपित हैं क्योंकि सन्धि हो जाने पर वे दुःशासन की छाती का रक्तपान करने एवं दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर पायेंगे।' भीम अपनी प्रतिज्ञा इस प्रकार सुनाते हैं-

चञ्चद्भुज - भ्रमित - चण्डगदाभिघात- सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानावनद्ध - घन - शोणित शोणपाणि- रुत्तंसयिष्यति कचाँस्तव देवि भीमः ॥ (१/२१)

भीम को जब सूचना मिलती है कि दुर्योधन ने कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयास किया और विश्वरूप-प्रदर्शन से वे बचे तो भीम उनकी महिमा का वर्णन करते हैं। कृष्ण के अपमान से युधिष्ठिर भी कुपित होते हैं (क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते १२४)।

द्वितीय अंक के आरम्भ में महाभारत-युद्ध में अभिमन्यु के मारे जाने की सूचना विष्कम्भक में मिलती है। दुर्योधन की पत्नी भानुमती अपने अनिष्ट स्वप्न के फल-शमनार्थ देवार्चन करने जाती है। दुर्योधन उसे अमंगल की आशंका से मुक्त करने के लिए अनेक कामुक चेष्टाएँ करता है। वीर में श्रृंगार की इस उद्‌द्भावना पर समीक्षकों ने आपत्ति की है। अङ्कान्त में अर्जुन द्वारा जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा की सूचना मिलती है। दुर्योधन जयद्रथ की माता को आश्वासन देता है।

तृतीय अंक मुख्यतः द्रोणाचार्य के छल से मारे जाने पर उनके पुत्र अश्वत्थामा के क्रोध का प्रदर्शक है। दुर्योधन कर्ण को सेनापति बना देता है जिससे अश्वत्थामा कर्ण से वाग्युद्ध में टकरा जाता है; अश्वत्थामा शस्त्र-त्याग देता है। इसी बीच दुःशासन की छाती फाड़कर भीम द्वारा उसका रक्तपान किये जाने की सूचना मिलती है।

चतुर्थ अंक में यह घटना चरितार्थ होती है, दुर्योधन अपने अनुज की रक्षा करते हुए भीम के बाणों से आहत हो जाता है। अर्जुन कर्ण के पुत्र वृषसेन का वध करते हैं जिससे कर्ण दुःखी होता है। इस अंक में लम्बे समास तथा बड़े वाक्य नीरसता उत्पन्न करते हैं। महाभारत की बहुत-सी घटनाएँ इस अङ्क में समेटी गयी हैं। दुर्योधन के साथ सूत का एवं बाद में सुन्दरक का वार्तालाप ही पूरे अंक में भरा है जो नाट्यदृष्टि से विष्कम्भक के समान लगता है। नाट्यव्यापार का अभाव वस्तुत: खटकता है।

पञ्चम अङ्क में कर्ण का वध हो जाता है, दुर्योधन युद्ध के लिए प्रस्तुत होता है। उसी समय धृतराष्ट्र के अभिवादनार्थ भीम और अर्जुन आते हैं। भीम और दुर्योधन का वाग्युद्ध होता है। अश्वत्थामा भी वहाँ आता है किन्तु दुर्योधन के व्यवहार से कुपित होकर चला जाता है।

अन्तिम अङ्क में भीम के भय से दुर्योधन सरोवर में छिपा है किन्तु सहदेव के प्रयन में उसका पता लग जाता है। भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध होता है। दुर्योधन का मित्र चार्वाक युधिष्ठिर को मिध्या बात बताता है कि गदायुद्ध में भीम मारे गये और अर्जुन से युद्ध चल रहा है।

युधिष्ठिर और द्रौपदी दुःख से चितारोहण की तैयारी में हैं कि भीम दुर्योधन को मारकर आ जाते हैं तथा द्रौपदी को वेणी सवाँरते हैं। सभी प्रसन्न हो जाते हैं।

वीररस प्रधान नाटक में भी रोचकता का समावेश करने,अर्थानुकूल भाषाशैली के प्रयोग एवं पात्रों के ओजस्वी चित्रण के कारण इस नाटक के रचियता भाट्टनारायण संस्कृत नाट्यजगत में अमर हैं।

2.3.7 भवभूति—

संस्कृत साहित्य की यह परम्परा रही है कि कवि या लेखक अपना परिचय नहीं देते रहे है । जिसने दिया भी वह संक्षिप्त ही और उसके आधार पर उसके जीवन चरित तथा समय पर सम्यक् प्रकाश नहीं पड़ता। परन्तु भवभूमि के सम्बन्ध में वैसी बात नहीं है । अपने रूपकों की प्रस्तावना में उन्होंने अपने कुल, गुरु और पाण्डित्य आदि का संक्षिप्त परिचय दिया है ।

भवभूति की प्रसिद्धि उनकी तीन रचनाओं के कारण ही रही है । उनकी उपलब्ध तीन रचनाओं में "महावीर चरित" और उत्तररामचरित" सात-सात अंकों के नाटक हैं और "मालती माधव" दस अंकों का एक प्रकरण । उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

भवभूति की कृतियों का सामान्य परिचय—

भवभूति की प्रसिद्धि उनकी तीन रचनाओं के कारण ही रही है। उनकी उपलब्ध तीन रचनाओं में ''महावीरचरित'' और उत्तररामचरित'' सात-सात अंकों के नाटक हैं और ''मालती माधव'' दस अंकों का एक प्रकरण। इन रचनाओं के कालक्रम के विषय में विद्वानों में मतभेद है। उत्तररामचरित को प्रायः सभी आलोचक कवि की अन्तिम कृति मानते हैं; किन्तु महावीर चरित और मालती माधव के रचनाक्रम के विषय में पर्याप्त मतभेद है। पण्डित टोडरमल, डॉ0 भण्डारकर, चन्द्रशेखर पाण्डेय आदि महावीर चरित को कवि की प्रथम कृति मानते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि भवभूति ने अन्य अनेक रचनाएँ की होंगी, जिनका उचित सम्मान नहीं हुआ, तब उन्होंने मालती माधव प्रकरण की रचना की, जिसमें अपने आलोचकों के प्रति उनकी खीज स्पष्ट व्यक्त हुई है; किन्तु उसका भी अधिक सम्मान नहीं हुआ तब वे महावीर चरित की रचना में प्रवृत्त हुए। इसके बाद भी जब उन्हें यथेष्ट सम्मान नहीं मिला; तब वे उत्तररामचरित की ओर उन्मुख हुए और प्रारम्भिक आलोचना के बाद अपने जीवन में ही एक उच्च कोटि के कलाकार की ख्याति प्राप्त करने में सफल हुए। उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

मालतीमाधव—

भवभूति की प्रथम नाट्यकृति मालती माधव है। यह 10 अंको का प्रकरण है। इसमें मालती और माधव के प्रेम की काल्पनिक कथा चित्रित की गई है। भूरिवसु और देवरात क्रमशः पावती और विदर्भ के राजमन्त्री थे। उन्होंने यह प्रण किया था कि वे अपने पुत्र पुत्रियों का परस्पर विवाह करेंगे। समय पर देवरात के पुत्र और भूरिवसु के पुत्री उत्पन्न हुई। भूरिवसु देवरात के पुत्र माधव के साथ अपनी प्रतिज्ञानुसार मालती का विवाह करना चाहते हैं, परन्तु राजा का साला और मित्र (नर्मसुहृत्) मालती से अपना विवाह करना चाहता है। राजा का समर्थन भी उसे प्राप्त है। माधव का एक साथी मकरन्द है और नन्दन की बहिन मदयन्तिका मालती की सहेली है।

मालती और माधव एक शिव मन्दिर में मिलते हैं; वहीं मदयन्तिका को मकरन्द एक सिंह से बचाता है। तभी वे एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं। इधर राजा मालती और नन्दन का विवाह कराने के लिए तैयार है। माधव अपनी प्रेम सिद्धि के लिए श्मशान में तन्त्रसिद्धि कर रहा है कि उसे एक स्त्री की चीख सुनाई पड़ती है। वहाँ जाने पर उसे पता चलता है कि अघोरघण्ट और उसकी शिष्या कपालकुण्डला मालती को चामुण्डा की बलि चढाने का उपक्रम कर रहे हैं। माधव अघोरघण्ट को मारकर मालती को बचा लेता है। राजा के सैनिक ढूंढते हुए श्मशान पहुंचते है और मालती को ले आते हैं। मालती और नन्दन के विवाह की तैयारी की जाती है, परन्तु कामन्दकी (भूरिवसु की शुभ चिन्तिका तापसी) की चतुरता से मकरन्द का विवाह नन्दन से हो जाता है और कामन्दकी शिव मन्दिर में ले जाकर मालती माधव का गन्धर्व विवाह करा देती है। इधर प्रथम मिलन पर मकरन्द नन्दन को पीट देता है। नन्दन वहाँ से चला जाता है। मदयन्तिका अपनी भाभी को समझाने जाती है, पर उसे अपना प्रेमी जानकर उसके साथ भाग जाती है, परन्तु सैनिकों द्वारा मकरन्द पकड़ लिया जाता है। यह सुनकर माधव मालती को छोड़कर अपने मित्र की सहायता करने के लिए चल पड़ता है। इसी बीच अपने गुरु का बदला लेने के लिए कपालकुण्डला मालती को चुराकर श्रीपर्वत पर ले जाती है। उधर सैनिकों और माधव-मकरन्द का भयंकर युद्ध होता है। राजा उनकी वीरता से प्रसन्न होकर उन्हें छोड देता है। माधव मकरन्द के साथ विक्षिप्तावस्था में विन्ध्य पर्वत पर मालती की खोज में घूम रहा है। वहीं कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी बताती है कि मालती इसकी कुटिया में सुरक्षित है। इस समाचार को मकरन्द, भूरिवसु, मदयन्तिका आदि को देता है। बाद में मालती माधव के मिलन के साथ ही मकरन्द मदयन्तिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है। वस्तुयोजना की दृष्टि से मालती माधव की कथा बहुत विशृंखलित है। लम्बे-लम्बे समास और संवाद उसकी नाटकीयता में व्याघात उपस्थित करते है। यह प्रकरण महाकवि भास के 'अविमारक' से प्रभावित प्रतीत होता है।

महावीरचरित—

यह सात अंकों का नाटक है। इसमें श्री रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन है। मालती माधव की अपेक्षा यह नाटक अधिक संगठित है। कवि ने इसमें अनेक कल्पनाएँ की हैं। आरम्भ में ही रावण को सीता विवाह का अभिलाषी चित्रित करके कवि ने नाटक में संघर्ष की अवतारणा कर दी है। रामचन्द्र जी धनुष तोड़कर सीता जी से विवाह करते है। रावण अत्यन्क्रुद्ध होता है, उसका मन्त्री माल्यवान् अपनी कूटनीति का प्रयोग करता है। पहले तो वह परशुराम को राम के विरुद्ध भड़काकर भेजता है पर जब यह युक्ति असफल हो जाती है तब वह सूर्पणखा को मन्थरा वेश में भेजकर कैकयी से राम को वन भेजने का षडयन्त्र करता है। वन में निवास करते समय माल्यवान् ही सीता हरण कराता है और बाली को भड़काता है। बाली राम से युद्ध करने आता है और मारा जाता है। अन्त में राम सुग्रीव की सहायता से लंका पर चढ़ाई करते हैं और रावण वध के अनन्तर पुष्पक विमान से अयोध्या लौट आते हैं।

महावीरचरित, मालतीमाधव से अधिक गठा हुआ होने पर भी वर्णनों की अधिकता, सटीक चरित्र-चित्रण के अभाव एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की न्यूनता के कारण प्रथम श्रेणी का नाटक नहीं कहा जा सकता है।

उत्तररामचरित—

यह भवभूति का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें कवि ने अपनी कल्पना का प्रयोग करके अद्भुत सृष्टि की है। सात अंकों में निबद्ध इस नाटक में रामचन्द्र जी के उत्तररामचरित का वर्णन है। इसे महावीर चरित का उत्तरभाग ही समझा जा सकता है। प्रथम अंक में राम को दुर्मुख नामक दूत से सीतापवाद विषयक सूचना मिलती है और वे प्रजारंजन के लिए उनका त्याग कर देते हैं। इसकी भूमिका बड़े ही कौशल से संयोजित की गई है। चित्रदर्शन के अवसर पर स्वयं सीता जी गंगा जी का दर्शन करने की इच्छा व्यक्त करती हैं और गंगादर्शन के लिए उनका जाना अनजाने में ही राम से बिछुड़ जाना होता है। दूसरे अंक का प्रारम्भ 12 वर्ष के बाद होता हैं आत्रेयी नामक तापसी तथा वासन्ती नामक वनदेवी के सम्भाषण से ज्ञात होता है कि राम ने अश्वमेघ यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है और महर्षि वाल्मीकि किसी देवता के द्वारा सौंपे गये दो प्रखर बुद्धि बालकों का पालन कर रहे हैं। राम दण्डकारण्य में प्रवेश कर शुद्रमुनि शम्बूक का वध करते हैं। तृतीय अंक में तमसा और मुरला दो नदियों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि परित्यक्त होने के अनन्तर सीता जी प्राण-विसर्जन करने के लिए गंगा जी में कूद पडीं और वहीं उन्होंने लव-कुश को जन्म दिया। गंगा जी ने उनके पुत्रों की रक्षा करके वाल्मीकि जी को समर्पित कर दिया है। आज उनकी बारहवीं वर्षगांठ है, इसलिए भगवती भागीरथी ने सीताजी को आज्ञा दी है कि वे अपने कुल के उपास्यदेव भगवान् सूर्य की उपासना करें। उन्हें भागीरथी का वरदान है कि उन्हें पृथ्वी पर देवता भी नहीं देख सकते, पुरुषों की तो बात ही क्या है? गंगा जी को यह बात ज्ञात है कि अगस्त्याश्रम से लौटते समय रामचन्द्र जी पंचवटी के दर्शन अवश्य करेंगे, कहीं ऐसा न हो के पूर्वानुभूत दृश्य का स्मरण कर वे विक्षिप्तचित्त हो जायें। इसलिए उन्होंने सीता जी को राम का दर्शन करने की योजना बनाई है और उनकी देखरेख के लिए उन्होंने (तमसा) को उनके साथ भेजा है। इसके अनन्तर भगवान् रामचन्द्र जी का प्रवेश होता है। वे पंचवटी प्रवेश में वनदेवी वासन्ती के साथ पूर्वानुभूत दृश्यों को देखकर सीता की स्मृति से अत्यन्त व्याकुल होते हैं। सीता अदृश्य रूप में उन्हें स्पर्श करके प्रबुद्ध करती है। छाया नामक तृतीय अंक में सीता के हृदय की शुद्धि हो जाती है। चतुर्थ अंक में वाल्मीकि आश्रम में जनक, कौशल्या, वसिष्ठ आदि का आगमन होता है। कौशल्या और जनक का मिलन होता है। वहीं एक क्षत्रिय बालक (लव) को ये देखते हैं। अन्य ब्रह्मचारियों द्वारा रामचन्द्रजी के यज्ञाश्व की सूचना सुनकर वह भाग जाता है। पांचवे अंक में यज्ञाश्व के रक्षक चन्द्रकेतु से लव का वाद-विवाद होता है और वे युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं, यद्यपि उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम उमड़ता है। छठे अंक में एक विद्याधर युगल के द्वारा दोनों के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है। इसी बीच रामचन्द्र जी के आ जाने से युद्ध रुक जाता है। कुश भी सूचना पाकर आ जाता है। राम के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त प्रेम उमड़ पडता है। परन्तु

उन्हें यह ज्ञात नहीं हो पाता कि ये उन्हीं की सन्तान है। सम्मेलन नामक सातवें अंक में गर्भांक नाटक का प्रयोग होता है। वहीं वाल्मीकि की योजना से सीता-राम का मिलन।

अभ्यास प्रश्न. 4

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

A. महावीरचरित नाटक में कुल कितने अंक है ?
B. भवभूति के प्रकरण ग्रन्थ का नाम क्या है ?
C. उत्तररामचरित में अंकों की संख्या कितनी है ?
D. मालती माधव में कुल कितने अंक हैं ?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

A. पं0 टोडरमल आदि किस नाटक को भवभूति की प्रथम कृति मानते हैं।
B. प्रायः सभी आलोचक किस नाटक को भवभूति की अन्तिम कृति मानते हैं।
C. भूरिवसु और देवरात क्रमशः किन राज्यों के राजमंत्री थे ?
D. नन्दन की वहिन मदयन्तिका किसकी सहेली है?

3- निर्देशानुसार उत्तर दीजिएः

A. महावीर चरित में कहाँ तक की घटनाओं का वर्णन हैं?
B. पुष्पक विमान में विशेषण पद बताइए।
C. महावीर चरित में रावण के मंत्री का नाम क्या है?
D. किस अंक में सीता के हृदय की शुद्धि होती है?

4- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

A. वन में निवास करते समय ..... सीता का हरण कराता है।
B. दुर्मुख नामक दूत से ..... विषयक सूचना मिलती है।
C. राम दण्डकारण्य में प्रवेश कर ..... शम्बूक का वध करते हैं।
D. वाल्मीकि आश्रम में कौशल्या और ..... का मिलन होता है।

5- सत्य/असत्य बताइएः

A. राजा मालती और माधव का विवाह कराने को तैयार हैं।
B. माधव अघोरघण्ट का वध करता है।
C. कपालकुण्डला मालती को चुराकर विन्ध्य पर्वत पर ले जाती है।
D. कामन्दकी मालती-माधव का गन्धर्व विवाह कराती है।

6- सही विकल्प छांटकर लिखिएः उत्तररामचरित के अन्तिम अंक का नाम है-

A. चित्रदर्शन
B. छाया
C. गर्भांक
D. सम्मेलन

2.3.8 अन्य नाट्यकार

भवभूति के अनन्तर शताधिक नाट्यकार हुए जिन्होंने अपनी कृतियों से संस्कृत वाङ्मय का समृद्ध किया। इनमें कई तो विख्यात हैं किन्तु कुछ नाट्यकार अप्रकाशित हैं। नाटकों के अतिरिक्त भी कई उपरूपकों की रचनाएँ हुई हैं जिनमें कुछ का अधिक महत्व है। यहाँ ऐसे कुछ नाट्यकारों एवं नाट्यचनाओं का परिचय यहा दिया जा रहा है।

1. मुरारि—

एकमात्र ' अनर्घराघव' नामक नाटक के लेखक मुरारि मौद्गल्य गौत्र के श्रीवर्धमानभट्ट के पुत्र थे। इनको माता का नाम तन्तुमती था। इन्हें 'महाकवि' तथा ' वाल-वाल्मीकि' कहा जाता को। ये बहुत प्रसिद्ध विद्वान् भी थे इन्होंने गुरुकुल में रहकर क्लेशपूर्वक साधना की थी। मुरारि भवभूति (७५० ई0) से प्रभावित हैं तथा इनका उल्लेख कश्मीरी महाकवि रत्नाकर (८५० ई०) ने अपने 'हरविजय' (३८/६८) में नाटककार के रूप में किया है। अत: इनका काल ८०० ई० के आसपास है।

अनर्घराघव—

अनर्घराघव रामायण की कथा पर आश्रित सात अंकों का नाटक है। विश्वामित्र द्वारा राम- लक्ष्मण को अपने आश्रम मे ले जाने की घटना से लेकर रावण को मारकर लंका से राम के अयोध्या- प्रत्यावर्तन तक की कथा इसमें वर्णित है। महावीरचरित के समान इसमें भी मूलकथा का पर्याप्त परिवर्तन है। मुरारि ने इस नाटक में भाषा और व्याकरण के क्लिष्ट रूपों का प्रदर्शन करके नाटककार भवभूति और महाकवि माघ को पीछे छोड़ने का यथाशक्ति प्रयास किया है। पाण्डित्य-प्रदर्शन का यहाँ पद-पद पर साक्षात्कार होता है। नाट्य-कल्पना को छोड़कर मुरारि काव्य-रचना में संलग्र हो जाते हैं; इसीलिए प्रत्येक अंक में महाकाव्य के सर्गों के समान श्लोक-संख्या है। पूरे नाटक में ५६७ पद्य हैं जो गौडो रोति में निबद्ध हैं। अन्तिम अंक में १५२ पद्य हैं। महाकाव्य और महानाटक को सम्मिलित कल्पना इसमें कवि ने की है। प्रौढ व्याकरण- ज्ञान के प्रदर्शन के कारण इस नाटक बीच बहुत अधिक है। पद-सौष्ठव, भाव के तथा शब्द-चमत्कार की दृष्टि से यह नाटक अद्भुत है।

2. शक्तिभद्र—

ये आदि शंकराचार्य के शिष्य थे। इनके आश्चर्यचूडामणि' की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि यही दक्षिणभारत का प्रथम नाटक था। शक्तिभद्र का समय ८०० से ८५० ई० तक माना जाता है। इनके एक अन्य नाटक 'उन्मादवासवदया। की चर्चा कई ग्रन्थों में हैं किन्तु अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। ओरियंटल रिसर्च इंस्टीच्यूट मद्रास से अपूर्ण 'वीणावासवदत्त' का प्रकाशन हुआ है, इसे भी शक्तिभद्र-कृत कहा जाता है।

आश्चर्यचूडामणि—

आश्चर्यचूडामणि सात अंकों का रामकथाश्रित नाटक है। इसमें लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटी के निर्माण और शूर्पणखा-प्रसंग से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा तक के आश्चर्यजनक वृत्तान्त उपन्यस्त हैं। इसमें चार मुख्य घटनाएँ हैं- शूर्पणखा का विरूपण (अंक २), सीताहरण (अंक ३), हनुमत्सन्देश (अंक ६) तथा सीता की अग्निपरीक्षा (अंक ७)। तृतीय अंक में ऋषिगण लक्ष्मण

के द्वारा दो आभूषण अंगूठी तथा चूडामणि क्रमशः राम और सीता के लिए भेजते हैं जिन्हें धारण करने से कपट-वेष का उद्घाटन होता है। इसी चूडामणि के स्पर्श से सीता रावण को पहचानती है तथा राम अंगूठी के द्वारा सीता के वेष में राम को माया दिखाती हुई शूर्पणखा का रहस्य जान लेते हैं। यह इस नाटक के शीर्षक का रहस्य है। आश्चर्यमयी घटनाओं की प्रस्तुति से पूरा नाटक अद्भुत रस का भाण्डागार है। कवित्व की दृष्टि से यह उत्तररामचरित से अवर है किन्तु नाट्य और अभिनेयता के बल पर रामकथाश्रित सभी नाटकों में यह श्रेष्ठ है। सूच्य और दृश्य कथांशों का औचित्य इसमें आद्यन्त निबाहा गया है। इसमें यद्यपि वोररस की प्रधानता है किन्तु अद्भुतरस का प्राचुर्य मनोरञ्जक है। नायक (राम) प्रतिनायक (रावण) तथा नायिका (सीता)-प्रतिनायिका (शूर्पणखा) के संघर्ष भी इसे उच्चकोटि में स्थापित करते हैं। वैदर्भी रोति का प्रयोग, सहज अलंकारों का निवेश तथा हृदयावर्जक संवाद इसको विशिष्टता है।

3. राजशेखर—

काव्यशास्त्र में कविशिक्षा-विषयक 'काव्यमीमांसा' एवं चार रूपकों के प्रणेता कवि राजशेखर महाराष्ट्र के यायावर वंश में उत्पन्न हुए थे। इस वंश में अनेक कविगण हुए थे। इनके प्रपितामह महाराष्ट्र-चूडामणि अकालजलद थे। इनके पिता का नाम दर्दक और माता का नाम शीलवती था। इन्होंने चौहान (क्षत्रिय) वंश की विदुषी अवन्तिसुन्दरी से विवाह किया था। कान्यकुब्ज-नरेश महेन्द्रपाल (राज्यकाल ८७३-९०७ ई०) के ये गुरु थे। महेन्द्रपाल के आदेश से इन्होंने बालरामायण की रचना की थी, विद्धशालभञ्जिका की रचना के समय ये लाट-नरेश के आश्रय में थे और पुन: लौटकर महेन्द्रपाल के पुत्र महोपाल के सभासद् बनकर रहे; बालभारत की रचना इन्होंने उसी काल में की। इसलिए इनका काल ८८० ई० और ९३० ई० के बीच रखा जा सकता है। इनके चार रूपक इस प्रकार हैं - बालरामायण (१० अंकों का रामकथाश्रित नाटक), बालभारत या प्रचण्डपाण्डव (इसके केवल आरम्भिक दो अंक प्राप्त हैं), विद्धशालभञ्जिका (४ अंकों की नाटिका) तथा कर्पूरमजरी (४ अंकों का प्राकृतभाषामय सट्टक)। काव्यमीमांसा बोस अध्यायों का कविशिक्षा-विषयक ग्रन्थ है। एक ग्रन्थ 'हरविलास' भी राजशेखर ने लिखा था जो अनुपलब्ध है। इस प्रकार इन्होंने छह ग्रन्थ लिखे थे (विद्धि नः षट् प्रबन्धान्- बालरामायण १/१२)।

1. बालरामायण—

बालरामायण रामकथा पर आश्रित दस अंकों का विशाल नाटक है। इसका प्रत्येक अंक एक नाटिका के तुल्य है। पूरे नाटक में ७४१ पद्य है जिनमें शार्दूलविक्रीडित (२०३) तथा स्रग्धरा (८९) जैसे लम्बे छन्दों का भी प्राचुर्य है। अपनी समस्त काव्य-कुशलता तथा पद-विन्यास-प्रवीणता का प्रदर्शन पूरे नाटक में इन्होंने किया है। रावण को एक प्रेमी के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। रावण जनक से सीता का हाथ माँगता है, वह परशुराम से वाद-विवाद करता है, उसके मनोविनोद के लिए तृतीय अंक में' सीता स्वयंवरण' नामक गर्भ-नाटक का अभिनय होता है किन्तु राम-सीता के विवाह को जानकर वह उद्विग्र हो जाता है। पंचम अंक में रावण का विरह-दु:ख प्रकट करते हुए छह ऋतुओं का वर्णन किया गया है। राम-वनवास के निमित्त के रूपमें

कैकेयी का वेश बनाकर शूर्पणखा आती है, मायामय दशरथ का रूप लेता है। शेष घटनाएँ न्यूनाधिक रूप से रामायण की ही हैं। कवि ने भारत के विभिन्न प्रदेशों का वर्णन करने का अवसर निकालकर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। राजशेखर ने इसको प्रस्तावना में अपने को वाल्मीकि और भवभूति का अवतार बताकर (१/१६) इसे सिद्ध भी किया है।

2. बालभारत—

बालभारत के केवल दो अंक मिले हैं जिनमें द्रौपदी-स्वयंवर, द्यूत-क्रोडा तथा चौर-हरण की घटनाएँ उपन्यस्त हैं। इसकी रचना महीपाल के लिए की गयी थी। विद्धशालभञ्जिका नाटिका है, जिसमें राजा के अन्तःपुर की प्रणय-लीला की विचित्रताओं का निरूपण है। नायक अपनी प्रेमिका मृगाङ्कवती को शालभञ्जिका (गुड़िया या पुत्तलिका) के रूप में प्राप्त करता है। नायिका (मृगांकवती) को उसके पिता लाट-नरेश चन्द्रवर्मा ने विद्याधरमल्ल (नायक) के पास अपने पुत्र के वेश में भेजा था। ज्येष्ठा रानी अपने पति का विवाह मृगांकवती तथा कुन्तल-राजकुमारी कुवलयमाला से करा देती है।

3. कर्पूरमञ्जरी—

कर्पूरमञ्जरी पूर्णतः प्राकृत में रचित चार अंकों का सट्टक है। इसमें राजा चन्द्रपाल तथा कुन्तल राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी की प्रणयकथा है। नाटिका के समान यहाँ भी राजा ज्येष्ठा रानी के भय से प्रेमिका से छिपकर मिलता है। राजकुमारी को तान्त्रिक भैरवानन्द खान-क्रीड़ा के समय राजसभा में उपस्थित कर देता है। राजा का प्रेम उसमें निहित हो जाता है, कर्पूरमञ्जरी भी राजा पर मुग्ध हो जाती है। नायिका को रानी कारागार में डालदेती है किन्तु राजा सुरंग द्वारा वहाँ पहुँच कर नायिका से मिलते हैं। रानी को भैरवानन्द समझते हैं कि लाट-राजकुमारी से विवाह हो जाने पर राजा सार्वभौम सम्राट् बन जाएँगे। रानी इसे स्वीकार करके कर्पूरमञ्जरी का हो विवाह राजा से करा देती है - भैरवानन्द की चाल काम करती है। राजशेखर ने इसमें कथानक की वक्रता के साथ काव्य- प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। वसन्त ऋतु का वर्णन, नायिका का विरह-वर्णन आदि उत्कृष्ट प्रसंग हैं। अतिप्राकृत तत्त्व का समावेश अतिरञ्जित है, यथार्थता से दूर है।

राजशेखर के समकालिक क्षेमीश्वर कान्यकुब्ज-नरेश महीपाल के सभाकवि थे। इन्होंने हरिक्षन्द्र की परीक्षा पर आलम्बित 'चण्डकौशिक' नामक नाटक (पाँच अंक) लिखा। यह मार्कण्डेयपुराण पर आश्रित है। इनका दूसरा नाटक नैषधानन्द' (सात अंक) है जो नल और दमयन्ती की प्रसिद्ध महाभारतीय कथा पर आश्रित है।

4. जयदेव—

संस्कृत में रामकथाश्रित प्रसन्नराघव' नामक नाटक के रचयिता जयदेव की ख्याति उनकी शैली के कारण बहुत अधिक है। इस नाटक के अतिरिक्त 'चन्द्रालोक' नामक पद्यात्मक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी इन्होंने लिखा था। गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव तथा मिथिला के वैयायिक जयदेव से ये भिन्न थे। इनके पिता महादेश और माता सुमित्रा थी। इनका गोत्र कोरिय था। शैली में ये महाकवि श्रीहर्ष से प्रभावित थे। इनका मूल स्थान विदर्भ का कुण्डिनकोरिया इनके गोत्रनाम से जुड़ा था। जयदेव के एक पद्य 'कदली कदली करभः करभः (प्रसनराव ६/३७)

को विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (४/३) में संकलित किया है। अत: १३५०-६० (विश्वनाथ का काल) से जयदेव पूर्ववर्ती हैं, १३६३ ई० में संकलित शाई घरपद्धति में भी प्रसजनाक कुछ पद्य आये हैं; शिङ्गभूपाल के रसार्णवसुधाकर (१३३० ई०) में भी इस नाटक के कुछ प्रसङ्ग उद्धृत हैं। दूसरी ओर मम्मट के काव्य-लक्षण पर चन्द्रालोक में उपहास किया गया है। अतः जयदेव का समय ११०० ई० तथा १३०० ई० के बीच होगा। विद्वानों ने श्रीहर्ष की शैली के अनुकरण के आधार पर इनका काल १२०० ई० के आसपास रखा है।

प्रसन्नराघव—

प्रसन्नराघव सात अंकों का रामायणाश्रित नाटक है। इसमें बालकाण्ड की कथा का ही चार अंकों तक विन्यास है। रावण और बाणासुर का परस्पर संघर्ष (अंक १), वाटिका में राम और सीता का परस्पर अवलोकन (अंक २), धनुष टूटने पर राम-सीता का विवाह (अंक ३) तथा परशुराम का प्रसंग (अंक ४)- ये सभी बालकाण्ड से ही सम्बद्ध कथांश हैं। पञ्चम अंक में गङ्गा, यमुना और सरयू नदियों के संवाद के रूप में राम-वनवास तथा दशरथ को मृत्यु का एवं हंस नामक पात्र की सूचना के आधार पर सीता हरण का वर्णन है। इस प्रकार घटनाओं को श्रृंखला का इस अंक में निरूपणि है। षष्ठ अंक में वियोगी रूप में राम का चित्रण है। हनुमान् का लङ्का-गमन तथा सीता को राम की दशा का वर्णन सुनाना इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। राम को ऐन्द्रजालिक लङ्का के दृश्य भी दिखलाता है। सप्तम अंक में विद्याधर-विद्याधरी के संवाद में युद्ध का वर्णन है। रावण-वध हो जाने पर चन्द्रोदय का वर्णन अनेक वीरों के द्वारा किया जाता है जो आवर्जक कवित्व से सम्पन्न है। राम अयोध्या लौट जाते हैं। इस नाटक की प्रस्तावना में ही २३ पद्य हैं, सप्तम अंक में ९५ पद्य हैं। प्रत्येक अंक काव्य के सर्ग जैसा है किन्तु नाट्य-व्यापार का भी अभाव नहीं है। रामकथाश्रित अन्य नाटकों के समान इसमें रामायण की मुख्य घटनाओं को भरने के लिए अनेक अनैसर्गिक प्रविधियों का प्रयोग किया गया है जैसे- नदियों का वार्तालाप, राम को ऐन्द्रजालिक के द्वारा लंका के दृश्यों को (मुख्यत: अशोक वनिका) दिखाया जाना इत्यादि।

2.3.8 आधुनिक संस्कृत नाट्य परम्परा

आधुनिक संस्कृत नाटक परम्परा का मूल आधार प्राचीन संस्कृत नाट्य ही है। आधुनिक नाटक काल का आरम्भ कब से माना जाए यह तथ्य विचारणीय है। और इस तथ्य को लेकर विद्वानों मे मतभेद भी रहा है।

डॉ० राधाबल्लम त्रिपाठी का विचार है कि विश्व और देश में बदलती राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों के बोध के साथ समग्र राष्ट्र के ऐकात्य के प्रति दृष्टि कम से कम एक व्यावर्तक है, जो काल और विषयवस्तु की दृष्टि से आधुनिक साहित्य का उपक्रम करता है।

डॉ० हीरालाल शुक्ल ने 1984 को संस्कृत के नवजागरण के प्रसंग में महत्त्वपूर्ण माना है, क्योंकि सर विलियम जौन्स के प्रयास से कलकत्ता में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना इसी काल में हुयी थी। इसी काल में श्रीमद्भगवद्गीता हितोपदेश और शकुन्तलोपख्यान के अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित हुए। इसी माध्यम से संस्कृत का सम्पूर्ण यूरोप में प्रचार हुआ। इसके

फलस्वरूप संस्कृत के प्रति आकर्षण बढ़ा. इसमें शाकुन्तलम् का (1791) जर्मन में अनुवाद प्रस्तुत हुआ। जिसे देखकर जर्मन के महाकवि गेटे बहुत प्रभावित हुए थे।

डॉ० राजेन्द्र मिश्र ने आधुनिक संस्कृत नाटक परम्परा के काल को पुनर्जागरण काल (1784-1880) स्थापना काल (1884-1950) तथा समृद्धिकाल (1950 से अब तक) के रूप में तीन भागों में विभक्त किया है।

आधुनिक संस्कृत के इतिहास में जो भी परिवर्तन तथा नई विधाओं के लेखन में प्रवर्तन आदि घटित हुए उनमें पत्र-पत्रिकाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी लगभग आधुनिक काल के प्रवर्तित होने के साथ ही आरम्भ हुआ।

आधुनिक संस्कृत नाटक परम्परा में नाट्यशास्त्र में इतिवृत्त भेद, अंक विभाजन, रचनात्त्व, संवाद और नाटक के परिमाण आदि पर अपना नवीन मत दिया है। आचार्य भरतमुनि एवं प्राचीन आचार्यों ने इतिवृत्त के मुख्यतः दो भेद आधिकारिक एवं प्रासहिगक स्वीकार किए हैं। कई आचार्यों ने इन भदों को स्वीकारिता नही दी।

नाटक के परिमाण के सम्बन्ध में अभिनय भरत ने कहते हैं- नाटक सामान्यतः ढाई घण्टे का हो अधिकाधिक चार घण्टे का होना चाहिए। नाटक में पात्रों की संख्या कम हो। दृश्य कम हो तथा वे अत्यधिक व्यय करने वाले न हों।

आधुनिक नाट्यशास्त्रियों की मान्यता है, कि नाट्य में आरम्भ से अन्त तक एक ही भाषा का प्रयोग होना चाहिए। नाटकों में चरित्र अपनी सम्पूर्ण आदर्शों अथवा बुराइयों के साथ उपस्थित होते है, जो दर्शकों के मन पर अक्षुण्ण प्रभाव छोड़ते है। पाश्चात्य विद्वान अरस्तु ने भी अपने काव्यशास्त्र में आदर्श, वास्तविक एवं अधम तीन प्रकार के नायक माने हैं, जो भारतीय नाट्शास्त्र से साम्य रखते हैं।

आधुनिक संस्कृत नाट्यकार—

वीर राघव—

वीर राघव ने वल्लीपरिणयम् नामक नाटक की रचना की है। ये तंजौर नरेश शिवाजी के सभाकवि थे, जिन्होंने 1820-55 ई० तक राज्य किया। वीर राघव का जन्म 1820 ई० और मृत्यु 1882 ई० में हुई। वल्लीपरिणयन नाटक में कुल पाँच अंक है। वल्ली शिवभक्त व्याधराज की कन्या है। नाटककार ने इस प्रेम प्रपच को क्रमश विस्तारित किया है। इसी कवि का रामायण की कथा पर रामराज्यभिषेकम् नाटक भी लिखा है।

सुन्दर राज—

सुन्दर राज दक्षिण भारत के थे। इनका जन्म 1841 ई० में श्री वैष्णव सम्प्रदाय के वैखानस कुल में इलपुर अग्रहार में हुआ मृत्यु 1905 में हुई। ये व्याकरण के पण्डित और कवि थे। इनकी रचनाएँ नाटक और काव्ण दोनों विधाओं में हैं। उनसे इनकी प्रतिमा का प्रमाण मिलता है। उनके रचित चार नाटक है। स्नुषविजय नाटक, हनुमद्विजय नाटक, वैदर्भीवासुदेव नाटक तथा पद्मिनीपरिणय नाटक । इनमें सनुषविजय सामाजिक नाटक है। वैदर्भीवासुदेव नाटक का प्रकाशन

१९८८ ई० में कैलाशपुर तिन्नेवतली से हुआ। इस नाटक में रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की पौराणिक कहानी को एक नए रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आशुकवि शंकरलाल—

इनका जन्म 1842 ई० में और मुत्यु 1918 ई० में हुई। ये गुजरात के भारद्वाज गोत्पन्न ब्राह्मण थे। इन्होंने एक दर्जन नाटकों की रचना की है। इनके रचित नाटकों के नाम सावित्रीचरित, प्रसन्नलोपामुद्र अनसूयाभ्युदय, केशवकृपालेशलहरी, ध्रुवाभ्युदय, गोरखाभ्युदय, भगवतीभाग्योद, महेशप्रणयप्रिय, पांचीजीवरित, अरुन्धतीविजय, कौशयात्रा, भ्रान्तिमाया-भंजन, मेधाप्रार्थना, अमरमार्कण्डेय आदि।

नारायण शास्त्र—

इनका जन्म कुम्मकोणम् में 1860 ई० में हुआ और मृत्यु 1911 ई० में हुई। इनका नाम ग्रन्थ संख्या की दृष्टि से सार्वोपरि है। इन्होंने अपने को 96 रूपकों का रचयिता कहा है। इनके प्रमुख नाटकों के नाम है- शशिशारदीय, शूरमयूर, शार्मिष्टाविजय, महिलाविलास, स्वैराचार, मैथिलीय आदि।

पंचानन तर्करून—

इनका जन्म सन् 1966 ई० में बंगाल के चौबीस परगना जिलान्तर्गत भाटापाड में हुआ। भाटापाड विद्वानों की जन्मभूमि रही है। इन्होंने अमरमंगल एवं कलंकमोचन नामक नाटकों की रचना की है।

हरिदास सिद्धान्तवगीश—

इनका जन्म 1876 ई० में बंगाल के कोटलापाडा अनेशिया ग्राम में हुआ। आप 1961 ई० में इनका स्वर्गवास हो गया। एक दर्जन से अधिक काव्य एवं नाटकों की रचना की है। इनके दो नाटक है मेवाड्गप्रतापम् और शिवाजी रितम्।

मथुराप्रसाद दीक्षित—

इनका जन्म 1878 ई० उत्तरप्रदेश में हरदोई जिले के भगवन्त नगर में हुआ। यह संस्कृत के विद्वान थे। इनकी प्रकाशित प्रमुख रचनाएँ ये है- वीरप्रताप गाँधी, विजयम्, शंकर विजय, भरतविजय, वीरपृथ्वीराज, भक्तसुदर्शन, इनके कुछ नाटक अप्रकाशित भी हैं।

अतः आधुनिक संस्कृत नाट्यपरम्परा में नाटककारों ने पूर्ण योगदान दिया और इस नाट्यपरम्परा को आगे बढ़ाया। इन नाटककारों के अतिरिक्त अन्य बहुत से नाटककार हुए हैं।

2.4 सारांश

इस इकाई में आपने संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रमुख नाटककारों यथा भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, हर्ष, भट्टनारायण तथा भवभूति कवि के जीवन वृत्त एवं नाट्यग्रन्थों के विषय में अध्ययन किया। संस्कृत नाटकों में महाकवि भास के नाटक अत्यधिक प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं । परिष्कृत रूपक रचनाओं में भास के रूपकों को प्राचीन माना जाता है । उन्होनें रामायण, महाभारत, उदयन की कथा को आधार बनाकर अपने नाटकों का प्रणयन किया। उनके नाटकों में

भाषा का सरल और मनोरम प्रयोग देखा जा सकता है। भास के पश्चात् शूद्रक आते हैं। मृच्छकटिकम् के रचयिता शूद्रक हस्तिशास्त्र में परम प्रवीण थें, भगवान शिव के अनुग्रह से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, बड़े ठाट बाट से उन्होने अश्वमेध यज्ञ किया था, अपने पुत्र को राज्य सिहांसन पर बैठा दस दिन तथा सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर अन्त में अग्नि में प्रवेश किया। शूद्रक युद्रप्रेमी थे, प्रमाद रहित थे, तपस्वी तथा वेद जानने वालों में श्रेष्ठ थे। राजा शूद्रक को बड़े हाथियों के साथ बाहुयुद्ध करने का बड़ा शौक था, उनका शरीर बहुत सुन्दर था , उनकी चाल हाथी के समान तथा नेत्र चकोर की तरह एवं मुख चन्द्रमा के समान था। तात्पर्य यह है कि उनका समग्र शरीर सुन्दर था। वे द्विजों में मुख्य थे।

शूद्रक के पश्चात् कालिदास आते हैं। महाकवि कालिदास ने तीन नाटकों का प्रणयन किया जिनमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक विशेष प्रसिद्धि है। 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' इस उक्ति वाक्य से शाकुन्तलम् नाटक की प्रसिद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। इसी क्रम में राजपरिवार से सम्बन्ध रखने वाले विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य का ऐसा नाटक है जो विदूषक एवं नायिका से रहित होने के बाद भी पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका के प्रणेता हर्ष को कौन नहीं जानता ? हर्ष प्रभाकरवर्धन के पुत्र और दानवीर राजा थे। करुण रस के प्रयोग में निष्णात् भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् में राम आरै सीता के उदात्त प्रेम का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में आपने मुरारि विरचित अनर्घराघव, राजशेखर प्रणीत कर्पूरमंजी आदि नाटक एवं नाटककारों के विषय में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई का अध्ययन करने पर पश्चात आप कह सकते हैं कि भास, शूद्रक, कालिदास,अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, विशाखादत्त, मुरारि,शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि ने उच्चकोटि के नाटकों की रचना कर संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि की है।

2.5 शब्दावली

शब्द	**-**	**अर्थ**
मृच्छकटिकम्	-	मिट्टी की गाड़ी
श्लाघनीय	-	प्रशंसनीय
अनुग्रह	-	कृपा
समरव्यसनी	-	युद्धप्रेमी
सुविग्रह:	-	सुन्दर शरीर वाले
ज्ञात्वा	-	जानकर
वीक्ष्य	-	देखकर
शर्वप्रसादात्	-	शंकर की कृपा से
श्रवण	-	सुनना
तटाक	-	तालाब

निर्बाध	-	बाधारहित
उदुम्बर	-	एक ब्राह्मवंश
आहिताग्नि	-	ब्राह्मण, जो यज्ञ की पावन अग्नि को अभिमन्त्रित करते हैं।
श्रीकण्ठ	-	भवभूति कवि का विशेषण
अध्यवसायी	-	दृढ़संकल्प वाला
प्रवर सेन	-	सेतुबन्ध महाकाव्य के रचयिता
दारुण	-	कठोर
पद	-	व्याकरण शास्त्र
वाक्य	-	तर्कशास्त्र
प्रमाण	-	न्यायशास्त्र
धर्मनिष्ठ	-	धार्मिक
उद्भव	-	उत्पत्ति
नाट्य	-	नाटक दिवंगत
मृत	-	(मरे हुए)
परिवर्तन	-	बदलाव
प्रसादगुणोपेत	-	प्रसादगुण से युक्त
कतिपय	-	कुछ

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1—

1. प्रथम 2. विद्योत्तमा 3. महाकाव्य 4. पाँच 5. दुष्यन्त

6. प्रथम 7. गीतिकाव्य 8. छः 9. शकुन्तला 10. सात अंक

अभ्यास प्रश्न 2 —

(1) शूद्रक (2) शूद्रक (3) अलंकारन्यास

(4) हस्तिशास्त्र (5) उज्जयिनी की गणिका (6) राजा का श्यालक ,

अभ्यास प्रश्न 3 —

1-(ग) 2- (ख) 3- (ग) 4- (क) 5- (ग)

अभ्यास प्रश्न 4 —

1. A. सात B. मालती माधव C. सात D. दस

2-

A. पं0 टोडरमल आदि महावीरचरित को भवभूति की प्रथम कृति मानते है।

B. प्रायः सभी आलोचक उत्तररामचरित को भवभूति की अन्तिम कृति मानते है।

C. भूरिवसु और देवरात क्रमशः पावती और विदर्भ के राजमन्त्री थे।

D. नन्दन की वहिन मदयन्तिका मालती की सहेली है।

3-

A. महावीर चरित में श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन है।

B. विशेषण पद पुष्पक है।

C. महावीर चरित में रावण के मन्त्री का नाम माल्यवान् है।

D. छाया नामक तृतीय अंक में सीता के हृदय की शुद्धि होती है।

4-

A. माल्यवान B. सीतापवाद C. शूद्रमुनि D. जनक

4- A. असत्य B. सत्य C. असत्य D. सत्य

6- सम्मेलन

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुभंकर प्रणीत ' संगीत दामोदर'श्री शेषराज शर्मा रेग्मी द्वारा सम्पादित चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

2. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

4. दशरूपक, आचार्य धनंजय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

5. भवभूति, उत्तररामचरितम्, व्याख्या- डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल; (1986-87)

6. साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

7. भवभूति, उत्तररामचरितम्, व्याख्या- आचार्य प्रभुदत्त स्वामी (1988)

8. मृच्छकटिकम् लेखक -शूद्रक, प्रकाशक - चौखभा संस्कृत भारती चौक वाराणसी

2.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

2. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भास के नाट्कों पर प्रकाश डालिये।

2. महावीरचरित की कथावस्तु का विवेचन कीजिए।

3. शूद्रक का जीवन परिचय लिखिए।

4. मालतीमाधव के कथानक का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

5. मृच्छकटिकम् का सारांश लिखिए।

6. शूद्रक की काव्यकला एवं नाट्यकला पर प्रकाश डालिए।

7. भवभूति के नाट्यकला पर प्रकाश डालिए।

8. उत्तररामचरित की कथावस्तु का विश्लेषण कीजिए।

इकाई-3 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का परिचय

इकाई की रूपरेखा
3.1 उद्देश्य
3.3 प्रस्तावना
3.3 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द
3.3.1 नाटक
3.3.2 इतिवृत्त
3.3.3 नायक
3.3.4 नायिका
3.3.5 पूर्वरङ्ग
3.3.6 नान्दी (भरतवाक्यम्)
3.3.7 सूत्रधार
3.3.8 नेपथ्य
3.3.9 प्रस्तावना
3.3.10 कंचुकी
3.3.11 विदूषक
3.3.12 विष्कम्भक
3.3.13 प्रवेशक
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का परिचय से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है । पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि नाटक क्या है इसका उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ तथा संस्कृत नाट्यसाहित्य के प्रमुख नाट्यकार एवं उनके द्वारा रचित प्रमुख रचनाऐं कौन-कौन सी हैं आदि। प्रस्तुत इकाई में आप नाट्यशास्त्रीय विशेषताओं एवं प्रमुख पारिभाषिक शब्दों का अध्ययन करेगें ।

नाट्यशास्त्र भारतीय वाङ्मय का महत्वपूर्ण अंग है। नाटक दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है इसलिए नाटक को दृश्य काव्य कहा जाता है। इसे अभिनय भी कहते हैं। भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' को नाट्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। धनंजय प्रणीत 'दशरूपक' भी नाट्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें रस, भाव तथा अभिनय के साथ-साथ नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का विस्तृत विवेचन किया गया है। नाट्यशास्त्र के उपरान्त अनेक आचार्यों ने इन पारिभाषिक शब्दों का बहुत सुन्दर एवं गम्भीर विवेचन किया है यथा विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में, धनंजय ने दशरूपक में, शारदातनय ने भावप्रकाश में आदि।

आप जानते हैं कि रूपक के दशविध भेद होते हैं, उन भेदों में नाटक के प्रमुख तत्वों के रूप में नाटक, इतिवृत्त, नायक, नायिका, पूर्वरंग, नान्दी, सूत्रधार, नेपथ्य, प्रस्तावना, कंचुकी, विदूषक, अपवारित, आकाशभाषित, जनान्तिक, विष्कम्भक आदि की प्रधानता होती है। प्रस्तुत इकाई में हम उनके लक्षण तथा उदाहरण द्वारा विस्तृत अध्ययन करेंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि नाटक की कथावस्तु का मूल स्रोत क्या है। साथ ही नाटक के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताए इनकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता को भी समझेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- नाटक में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों को जान सकेंगे।
- नायक एवं नायिकादि के स्वरूप के बारे में समझ सकेंगे।
- नाटक के मंचन विधान में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों के बारे में जान सकेंगे।
- नाटक की कथावस्तु का चयन किस किया जाता है, इसके विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नाट्य प्रकृति के स्वरूप और विकास को समझ सकेंगे।
- नाट्य कौशल का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- पूर्वरंग, नान्दी, सूत्रधार, नेपथ्य, प्रस्तावना, विष्कम्भक आदि नाट्यशास्त्रीय शब्दों से परिचित होंगे।

- नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों के मतों को जान सकेंगे।

3.3 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

3.3.1 नाटक —

भरतकृत नाटयशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने चारों वेदों में से क्रमशः ऋग्वेद से पाठ्य = कथावस्तु, सामवेद से सङ्गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस को लेकर पञ्चम नाट्यवेद की रचना की। इसके नाट्य रूप और रूपक = तीन नाम है। इस रूपक के दस भेद हैं। तद्यथा-

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः ।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ॥ दशकरूपक १-८

उपर्युक्त रूपक के दश भेदों में से नाटक एक भेद है। इस नाटक का लक्षण इस प्रकार किया गया है-

'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसन्धिसमन्वितम् ।
पंचाधिका दशपरास्तत्रांकाः परिकीर्तिताः ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ।।
एक एव भवेदंगी श्रंगारो वीर एव वा ।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणऽदभुतः ।।
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्या व्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छात्रसमग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ।।(साहित्यदर्पण ६.७-११)

नाटक की व्युत्पत्ति **नाटयति-विचित्रं रञ्जनानुप्रवेशेन सभ्यानां हृदयं नर्तयतीति नाटकम्।** यद्यपि कथदयोऽपि श्रोतृहृदयं नन्दयन्ति तथा अङ्कोपायदीनां वैचित्र्यहेतूनामभावात् न तथा रञ्जकत्वमिति न ते नाटकम्। यह नाटक रूपक के दस भेदों में से सर्वप्रथम और सर्वोत्कृष्ट प्रकार है।

अर्थात् नाटक प्रसिद्ध कथानक तथा पांचसन्धियों से युक्त होता है । इसमें कम से कम पांच अधिक से अधिक दस अंक होते हैं उसका नायक प्रसिद्ध वंश का धीरोदात्त,प्रतापी,राजर्षि होता है । वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के गुणों से मिश्रित तथा गुणवान् हो । नाटक में श्रंगार या वीर रस में से कोई एक रस मुख्य तथा अन्य रस सहायक होते हैं । नाटक के अन्तिम भाग में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए ।

3.3.2 इतिवृत्त —

कथावस्तु या इतिवृत्त रूपकों का ही कथा, इतिवृत्त, कथावस्तु (Plot) आदि नाम से भी पुकारते हैं। वस्तु दो प्रकार की होती है, एक आधिकारिक, दूसरी प्रासङ्गिक । आधिकारिक कथावस्तु मूल वस्तु, तथा प्रासङ्गिक कथावस्तु गौण होती है। आधिकारिक वस्तु की यह संज्ञा

इस लिए की गई है, कि इसका सम्बन्ध 'अधिकार' नायक के फलस्वामित्व, या फलप्राप्त करने की योग्यता से है। आधिकारिक वस्तु रूपक के नायक के फल की प्राप्ति से सम्बद्ध होती है, वह नायक के जीवन की उस महासरिता से सम्बद्ध है, जो निचित फल की, निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ती है। प्रासङ्गिक वस्तु इसी महासरिता में गिर कर उसके प्रवाह में अपनापन खो देने वाले, किन्तु आधिकारिक वस्तु को गति देने वाले क्षुद्र नदी, नद व नाले हैं। उदाहरण के लिए रामायण की वस्तु में रामचन्द्र की कथा आधिकारिक वस्तु है, सुभीव या शबरी की कथा प्रासङ्गिक ।

प्रासङ्गिक वस्तु के भी दो भेद किए जाते हैं-पताका तथा प्रकरी। जो कथा पताक काव्य या रूपक में बराबर चलती रहती है-सानुबन्ध होती है-उसे पताका कहते है। इस पताका कथा वस्तु का नायक अलग से होता है, जो अधिकारिक वस्तु के नायक का साथी होता है, तथा उससे गुणों में कुछ ही न्यून होता है। इसे 'पताका- नायक' कहते हैं। उदाहरणार्थ, रामायण का सुग्रीव, या मालतीमाधव का मकरन्द पताका नायक है, तथा उनकी कथा पताका । जो कथा काव्य या रूपक में कुछ हो पक काल तक चलकर रुक जाती है, वह 'प्रकरी' नामक प्रासङ्गिक कथा वस्तु होती है । रामायण की शबरी वाली कहानी 'प्रकरी' है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं पताका ब प्रकरी आधिकारिक कथा के प्रवाह में ही योग देती हैं। सुग्रीव व शबरी की कहानी राम-कथा को आगे बढ़ाने में सहकारी सिद्ध होती हैं।

इस इतिवृत्त के मूल तथा प्रकृति के विषय में भी नाव्यशास्त्र के ग्रन्थों में सकेत दिया गया है। इतिवृत्त मूल की दृष्टि से तीन तरह का होता है:- १. प्रख्यात, २. उपाद्य तथा ३. मिश्र । प्रख्यात इतिवृत्त रामायण, महाभारत, पुराण या बृहत्कथादि ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर होता है। इस प्रकार का इतिवृत्त प्रसिद्ध कथा से सम्बद्ध रहता है। उदाहरणार्थ, भवभूति के उत्तरचरित तथा मुरारि के अनर्घराघव की कथा रामायण से ली गई है। कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कथा महाभारत तथा पद्मपुराण से गृहीत है। भास के स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस ऐतिहासिक इतिवृत्त से सम्बद्ध है। इनका मूल गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी है। जैसा कि हम देखेंगे, नाटक के लिए यह परमावश्यक है कि उसका वृत्त प्रख्यात हो । दशरूपककार ने इतिवृत्त के मूल के विषय में लिखते हुए कहा है—

इत्याद्यशेष मिह वस्तुविमेदजातम्, रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथा ञ्च ।
आसूत्रये त्तदनु नेतृरसानुगुण्या, चित्रां कथा मुचितचारुवचःप्रपञ्चः ॥

प्रख्यात इतिवृत्त के निर्वाह में कवि या नाटककार को बढ़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। वह कथा के प्रख्यात इतिवृत्त में अपनी कल्पना के अनुसार हेरफेर करके उसकी बास्तविकता को नहीं बिगाड़ सकता। ऐसा करने से सामाजिकों की वृत्ति को दुःख होता है। उदाहरण के लिए बङ्गाली कवि माइकेल मधुसूदनदत्त के 'मेघनादवध' में मेघनाद का उच्च आदर्श रूप में उपस्थित करना प्रख्यात इतिवृत्त को ठेस पहुँचाता है। इसी तरह का हेरफेर कया के प्रख्यातत्व को क्षुण्ण करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि कवि प्रख्यात इतिवृत्त में कोई हेरफेर कर ही नहीं सकता। यदि प्रख्यात इतिवृत्त की गति कुछ ऐसी हो कि वह नायक के गुणों, उसके धीरोदात्तत्व में बाधक होती हो, तो ऐसी दशा में रस के अनौचित्य दोष को हटाने के लिए कथा के उस अंश

में कवि मजे से परिवर्तन कर सकता है। शकुन्तला नाटक में विवाह के बाद भी शकुन्तला को भूल जाने की दुष्यन्तवाली घटना पद्मपुराण में है। वहाँ दुर्वासाशाप का कोई हवाला नहीं। यह घटना दुष्यन्त के कामुकत्व को स्पष्ट कर उसके चरित्र को नीचा गिरा देती है। कालिदास ने दुष्यन्त के धीरोदात्तत्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए दुर्वासाशाप की कल्पना कर ली है। इसी तरह भवभूति ने भी अपने 'महावीर- चरित' में रामभद्र (रामचन्द्र) के घीरोदात्तत्व की रक्षा के लिए बालिवध की प्रसिद्ध घटना में हेर-फेर कर दिया है। प्रख्यात घटना है कि राम ने बालि का वध छुल से किया था, पर यह रस के ठीक नहीं पड़ता, न राम के उदात्त चरित्र के हो। अतः भवभूति ने यह कल्पना की है कि बालि स्वयं रामचन्द्र से लड़ने आया और मारा गया । उत्पाद्य इतिवृत्त कवि का स्वयं का कल्पित होता है-**उत्पाद्यं कविकल्पितम्** । इस इतिवृत्त का प्रयोग कई प्रकार के रूपकों में देखा जाता है, यथा प्रकरण, भाण, प्रहसन । शुद्रक के मृच्छकटिक, भवभूति के मालतीमाधव आदि की कथा उत्पाय ही है। मिश्र इतिवृत्त की पृष्ठभूमि प्रख्यात होती है, पर उसमें बहुत-सा अंश कल्पित भी होता है। रूपक के समस्त इतिवृत्त को हम कुछ स्थितियों में बाँट लेते हैं। इतिवृत्त को पाँच अर्थप्रकृतियों, पाँच अवस्थाओं तथा पाँच सन्धियों में विभक्त किया जाता है।

अर्थप्रकृतियाँ	**अवस्थाएँ**	**सन्धियाँ**
१. बीज	आरम्भ	मुख
२. बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
३. पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
४. प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
५. कार्य	फलागम	उपसंहृति

इसी प्रकार कथावस्तु के तीन प्रकार हैं -आधिकारिक, पताका एवं प्रकरी। पुनः ये तीनों भेद - प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र से तीन-तीन होते हैं -जो कथावस्तु ऐतिहासिक होती है वह प्रख्यात कहलाती है, जैसे - मुद्राराक्षस की कथावस्तु। जो इतिवृत्त उत्पाद्य होता है अर्थात् नाट्यकार अपनी कल्पना को ग्रहण कर रूपक की रचना करता है वह उत्पाद्य है। जिसमें कुछ अंश इतिहास का आरै कुछ अंश कविकल्पना से मिश्रित हो वह कथावस्तु मिश्र कथावस्तु कहलाती है, जैसे - अभिज्ञानशाकुन्तलम्। उपर्युक्त वर्णित कथावस्तु दिव्य, मर्त्य तथा दिव्यादिव्य भेद से अनेक प्रकार की होती हैं। जिस नाटक में नायक देवता होता है वह दिव्य कथावस्तु होती है जैसे - श्रीकृष्ण। दिव्यादिव्य में नायक देवतावतारी मनुष्य होता है जैसे - श्रीराम। मानव रूप में जो पात्र नाटक रूप में वर्णित होता है वह मर्त्य कोटि की कथावस्तु है, जैसे - दुष्यन्तादि।

3.3.3 नायक —

रूपकों का दूसरा भेदक नेता है। नेता शब्द के साथ नायक का सारा परिकर आा जाता है। नायिका, नायक के साथी, नायिका की सखियाँ आदि, प्रतिनायक और उसके साथी, सभी 'नेता' के अङ्ग माने गये हैं । नाटकादि के इतिवृत्त का नायक वही बन सकता है, जिसमें विनीतत्वादि अनेक गुण' विद्यमान हो।

नायक 'नी' धातु से 'ण्वुल्' प्रत्यय के योग से नायक शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है - नेता, प्रधान आदि। इस व्युत्पत्तिगत अर्थ के आधार पर 'नी' धातु का अर्थ होता है - ले जाना, ले चलना, पहुँचाना इत्यादि। इस प्रकार 'नायक' शब्द का अर्थ हुआ - जो कथावस्तु को फलप्राप्ति की ओर ले जाता है। विभावादि द्वारा सहृदय के हृदय में अभिव्यक्त रत्यादि स्थायीभाव ही रस है। विभाव दो प्रकार के होते हैं - आलम्बन एवं उद्दीपन। आलम्बन विभाव के द्वारा ही रस का संचार होता है, जो नाटक में नायक, नायकादि के माध्यम से होता है। संस्कृत साहित्य में नायक का विवेचन भरत से लेकर विश्वनाथ आदि आचार्यों ने किया है।

कथावस्तु के बाद रूपक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है 'नेता'। नेता का अर्थ यद्यपि नायक से लिया जाता है तथापि नाट्यशास्त्र में 'नेता' तत्त्व के अर्न्तगत सभी प्रकार के नाटकीय पात्र आ जाते हैं। जिसमें नायक पीठमर्द नायक के अर्थ सहायक, दण्ड सहायक, धर्म सहायक विदूषक आदि सभी ग्रही हैं। किन्तु हमें नायक के विषय में ही बताना अभीष्ट है। अतः सर्वप्रथम नायक के सामान्य गुणों के विषय में जानना आवश्यक है। साहित्य दर्पण के अनुसार नायक के सामान्य गुण इस प्रकार हैः-

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता"।।

अर्थात् नेता या नायक त्यागी, कृती (करणीय कर्म को करने वाला), कुलीन, सम्पत्ति तथा शोभा से सम्पन्न, रूप, यौवन और उत्साह से सम्पन्न, दक्ष (कर्म निपुण), लोकप्रिय तेजस्वी, चतुर तथा शीलवान होना चाहिए। दशरूपककार धनंजय ने विस्तापूर्वक नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख किया है-

"नेताविनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः
शूरो दृढ़श्य तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।"

रूपक का नायक विनम्र, मधुर, (सुन्दर),त्यागी, दक्ष (शीघ्रता) से कार्य करने वाला, प्रिय वचन बोलने वाला, लोकप्रिय, शुद्धमन वाला, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, स्थिर चित्त, युवा, बुद्धिमान, उत्साही, स्मृति, प्रज्ञा, कला एवं मान से युक्त, शूरवीर, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होना चाहिए। उपर्युक्त गुण नायक के सामान्य गुण कहे गये हैं। ये गुण यथासंभव सभी प्रकार के नायकों में होने चाहिए।

नायक के भेद—

"भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तेद्धतैरयम्।" नायक की प्रकृति विशेष के आधार पर उसके चार भेद किये गये हैं-ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत। नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण आदि नाट्य सम्बन्धी लक्षण ग्रंथों में उक्त नायक भेदों के पूर्व धीर शब्द जोड़ा गया है। धीर शब्द से तात्पर्य है धैर्य अर्थात धैर्ययुक्त, जो संकट की स्थिति में भी विचलित न हो। धैर्य गुण ऊपर कहे गये चारों प्रकार के नायकों के लिए अनिवार्य है। अतः नायक के चार भेद हुए (1) धीरललित (2)

धीरशान्त (3) धीरोदात्त (4) धीरोद्धत। इनके लक्षण इस प्रकार है- इनके उदाहरण क्रमशः वत्सराज उदयन, चारुदत्त, राम तथा भीमसेन दिए जा सकते हैं।

(1) धीरललित—

"**निश्चिन्तों धीरललितः कलासक्तः सुखी मुदुः**" चिन्ता से मुक्त, नृत्यगीत आदि कलाओं में आसक्त, सुखी एवं सुकोमल प्रकृति का नायक धीर ललित होता है। धीरललित नायक चिन्ता से मुक्त रहता है क्योंकि उसके राज्यादि की चिन्ता उसके मंत्री द्वारा की जाती है। चिन्ता से रहित होने के कारण वह संगीतादि कलाओं में आसक्त तथा भोग विलास में लीन रहता है। उसमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। इसीलिए वह सुकोमल आचरण एवं स्वभाव वाला होता है। जैसे रत्नावली नाटिका का नायक उदयन, राज्य प्रजा आदि की ओर से सर्वथा निश्चित है। अपनी प्रिया वासवदत्ता का समागम उसे प्राप्त है और वह रागरंग में लीन है। अतः उदयन धीर ललित कोटि का नायक है।

(2) धीरप्रशान्त—

"सामान्य गुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः"नायक के विनम्रता, त्याग, माधुर्य, दक्षता आदि गुणों से युक्त ब्राह्मण आदि धीरशान्त नायक कहा जाता है। अर्थात् यह नायक शान्त प्रकृति का होता है। धीरशान्त कोटि का नायक ब्राह्मण, मंत्री या कोई वणिक् होता है। इसमें विनम्रता आदि सामान्य, गुण अन्य नायकों की तरह होते हैं। रूपक के एक भेद प्रकरण का नायक धीरशान्त कोटि का ही होता है। यद्यपि ब्राह्मण, वणिक् और मंत्री में किंचित निश्चिन्तता आदि भी देखी जाती है लेकिन इस आधार पर वे धीर ललित नहीं माने जा सकते। ब्राह्मणादि को शान्त कोटि का ही माना जाना चाहिए क्योंकि वे प्रकृति से ही शान्त होते हैं। जैसे- "मृच्छकटिकम्" का नायक जन्मना ब्राह्मण और कर्मणा वणिक् होने के कारण प्रकृति से ही शान्त है। इसी प्रकार मालतीमाधवम् का नायक माधव जन्म से ब्राह्मण होने के कारण धीरशान्त कोटि का है।

(3) धीरोदात्त—

"महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारों धीरोदात्तो दृढव्रतः।।"

धीरोदात्त नायक महापराक्रमी, अतिगम्भीर प्रकृति का, क्षमाशील, आत्मप्रशंसा न करने वाला, स्थिर स्वभाव का, विनम्रता आदि (श्लाध्य) गुणों से युक्त अहंकार आदि दुर्गुणों को छिपाने वाला तथा अंगीकृत किये हुए कार्य को पूर्ण करने वाला होता है। जैसे- हर्षकृत नागानन्द नाटक का नायक जीमूतवाहन धीरोदत्त कोटि का नायक है। उसी प्रकार राम भी धीरोदात्त कोटि के नायक कहे गये हैं। रूपक के नाटक नामक प्रमुख भेद का नायक सदैव धीरोदात्त कोटि का ही होता है। नायक की धीरोदात्ता को बनाये रखने के लिए प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथानक में कुछ परिवर्तन भी करने पड़ते हैं जैसे कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त को धीरोदात्त बनाये रखने के लिये कालिदास ने दुर्वासा के श्राप की कल्पना की है जो कि मूल कथा में नहीं है।

(4) धीरोद्धत—

"दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।"

अत्यधिक घमण्डी, ईर्ष्याभाव की अधिकता वाला, माया और कपट से युक्त, अहंकारी, चंचल चित्त वाला, क्रोधी तथा स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने वाला धीरोद्धत नायक कहलाता है। धीरोद्धत नायक में घमण्ड तथा ईर्ष्या का आधिक्य होता है। वह अपनी तंत्र शक्ति के द्वारा अविद्यमान (अप्रकटित) वस्तु को भी प्रकाशित कर देता है। वह छल-कपट से युक्त होता है। ऐसा नायक आत्मप्रशंसा करने वाला होता है अर्थात् अपने शक्ति पराक्रम आदि का खुद ही बखान करता है। जैसे परशुराम या भीमसेन और रावण धीरोद्धत कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

रूपक का प्रत्येक नेता इन प्रकारों में से किसी एक प्रकार का होता है। हम आगे बतायेंगे कि किस किस रूपक का नेता किस किस प्रकृति का होता है। नायक का एक दूसरे उम्र का वर्गीकरण भी किया जाता है। यह वर्गीकरण उसके प्रेमव्यापार एवं तत्सम्बन्धी व्यवहार के अनुरूप होता है। प्रेम की अवस्था में नायक के (दक्षिण, शठ, पृष्ट तथा अनुकूल) ४ रूप देखे जा सकते हैं। ये रूप अपनी परिणीता पत्नी के प्रति किये गये उसके व्यवहार में पाये जाते हैं।

1. "दक्षिणोऽस्यां सहृदयः" — दक्षिण नायक एक से अधिक प्रियाओं को एक ही तरह से प्यार करता है। रत्नावली नाटिका का वत्सराज उदयन दक्षिण नायक है।

2. "गूढविप्रियकृच्छठः" — शठ नायक अपनी ज्येष्ठा नायिका के साथ बुरा बर्ताव तो नहीं करता, पर उससे छिप छिप कर दूसरी नायिकाओं से प्रेम करता है।

3. "व्यक्ताङ्गवैकृतौ धृष्टो" — दृष्ट नायक धोखे बाज है, वह ज्येष्ठा नायिका की पर्वाह नहीं करता, कभी २ खुले आम भी दूसरी नायिका-कनिष्ठा से प्रेम करता है। एक ही नायक में भी तीनों अवस्थाएं मिल सकती हैं। रत्नावली का उदयन बैसे कई स्थान पर दक्षिणरूप में, कई स्थान पर शठरूप में तथा कई स्थान पर पृष्टरूप में सामने आता है। फिर भी उसमें प्रधानता दक्षिणत्व की ही है।

4. "अनुकूलस्त्वेकनायिकः" — अनुकूल नायक सदा एक ही नायिका के प्रति आसक्त रहता है। उत्तररामचरित के रामचन्द्र अनुकूल नायक हैं, जो केवल सीता के प्रति आसक्त हैं।

दक्षिण शठ, घृष्ट और अनुकूल ये नायक के भेद न होकर नायक की श्रृंगारिक अवस्थाएँ हैं। अतः पहले बताए गये-धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत इन चारों नायक भेदों में से प्रत्येक की चार-चार अवस्थाएँ होती हैं। अतः नायक सोलह प्रकार का होता है।

जो सोलह प्रकार के नायक ऊपर कहे गये हैं उनमें से प्रत्येक उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन प्रकार का होता है। इस प्रकार धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त, धीरोद्धत (4) दक्षिण, शिठ, धृष्ट, अतुकूल (4) उत्तम, मध्यम, अधम (3) 48 इस प्रकार नायक के भेद प्रभेद माने गये हैं। इन सभी प्रकार के नायकों के पुरूषोचित सात्विक गुण आठ माने गए हैं-1. शोभा 2. विलास 3. माधुर्य 4. गम्भीरता 5. स्थिरता 6. तेजस् 7. ललित 8. औदार्य

अभ्यास प्रश्न—1

बहुविकल्पीय:

1.नायक की प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर नायक के कितने भेद किए गए हैं?

(क) दो (2) तीन

(ग) चार (4) पांच

2.नायकों के पुरूषोचित सात्विक गुण कितने माने गए हैं?

(क) छः (ख) तीन

(ग) आठ (घ) दस

3.नायकों के कुल कितने भेद मान्य हैं?

(क) पैंतालिस (ख) छियालिस

(ग) सैंतालिस (घ) अड़चालिस

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. नाटक का नायक.....कोटि का होता है।
2. विप्र, वणिक् या अमात्य.....के नायक कहे गए हैं।
3. .....धीरललित.....सुखी मृदुः।
4. सामान्यगुणयुक्तस्तु.....द्विजादिक्।

अतिलघु उत्तरीय:

1. "नेता विनीतो मधुरस्त्ययागी दक्षः प्रियंवदः" में प्रियंवद का क्या अर्थ है?
2. 'सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरोशान्तो द्विजादिक्" में द्विजादिक से क्या तात्पर्य है?
3. अनुकूल नायक कौन होता है।

सत्य/असत्य:

1. नायक के विनम्रता आदि सामान्य गुण, धीरललित आदि सभी प्रकार के नायकों में होने चाहिए।
2. प्रकरण में विप्र, वणिक् या अमात्य धीरोदात्त कोटि के नायक होते हैं।
3. धीरललित नायक अपनी ज्येष्ठा और कनिष्ठा दोनों नायिकाओं के प्रति समान प्रेम भाव वाला होता है।

3.3.4 नायिका —

नायिका तदगुणा कही गयी है अर्थात् किसी रूपक की नायिका को भी नायक के समान विनम्रता, माधुर्य, दक्षता, वाक्पटुता, लोकप्रियता, प्रसिद्ध वंश में उत्पत्ति और यौवन आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। नाटकादि रूपक में नायिका का भी ठीक उतना ही महत्त्व है, जितना नायक का, विशेष करके श्रृंङ्गार रस के रूपकों में। नाटिका में तो नायिका का विशेष व्यक्तित्व है। नायिका का वर्गीकरण तीन प्रकार का होता है। पहले ढंग का वर्गीकरण उसके तथा नायक के संबन्ध पर आधृत होता है। दूसरे ढंग का वर्गीकरण एक ओर उसकी उम्र और अवस्था, दूसरी ओर नायक के प्रतिकूलाचरण करने पर उसके प्रति नायिका के व्यवहार के आधार पर किया जाता है। तीसरा वर्गीकरण उसकी प्रेमगत दशा के वर्णन से संबद्ध है। हम यहाँ इन्हीं को क्रमशः लेंगे।

नायिका भेद: —

''स्वान्यासाधारणस्त्रीतिनायिकाविधा''सर्वप्रथम नायिका तीन प्रकार की कही गयी है। (1) स्वकीया नायिका (2) परकीया नायिका (3) सामान्य नायिका या सामान्य स्त्री। इनके लक्षण एवं भेद प्रभेद निम्न प्रकार हैं-

स्वकीया नायिका—

"स्वीया शीलार्जवादियुक्" स्वकीया नायिका शीलवती होती है। शील से अभिप्राय है नायिका का पतिव्रता होना। वह कुटिलता से रहित, सरलता से युक्त तथा पति की सेवा में निपुण होनी चाहिए। इस तरह पतिव्रता, सरल एवं लज्जावती अपनी पत्नी ही स्वकीया नायिका कही जाती है। स्वकीया नायिका के तीन भेद कहे गये हैं। (1) मुग्धा स्वकीया (2) मध्या स्वकीया (3) प्रगल्भा स्वकीया।

मुग्धा स्वकीया नायिका—

"मुग्धा नववयः कामारतौ वामा मृदुः क्रुधि।" मुग्धा स्वकीया नायिका वह होती है जो नवीन यौवनावस्था और नवीन कामभावना वाली हो। यह रति क्रीड़ा में झिझकने वाली और क्रोध करने में कोमल होती है अर्थात इसका प्रणय कोप आसानी से दूर हो जाता है।

मध्या स्वकीया नायिका—

"मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा।।" जिसमें यौवन और कामभाव का प्रादुर्भाव स्पष्ट दिखायी देने लगता है, जो मूर्छा की अवस्था पर्यन्त रति में समर्थ है वह मध्या स्वकीया है। इससे यह स्पष्ट है कि मध्या स्वकीया नायिका पूर्ण यौवन वाली होती है। मध्या स्वकीया नायिका तीन प्रकार की होती है-(1) धीरामध्या (2) अधीरा मध्या (3) धीराधीरा मध्या।

प्रगल्भा स्वकीया नायिका—

"यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्गके"।

विलीय मानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्येचेतना।।" प्रगल्भा अर्थात प्रगाढ़ यौवन वाली नायिका यौवन में अन्धी सी, काम से उन्मत्त सी, प्रिय संयोग तथा काम जनित सुरत के आनन्द के कारण प्रियतम के अंगों में विलीन होती हुयी सी (प्रगाढ़ आलिंगन करने वाली) और रति क्रीड़ा के आरम्भ में ही मूर्छित सी हो जाती है। प्रगल्भा नायिका के भी तीन भेद कहे गये हैं (1) धीरा प्रगल्भा (2) अधीराप्रगल्भा (3) धीराधीरा प्रगल्भा। तीन प्रकार की मध्या और तीन प्रकार की प्रगल्भा नायिकाएं जेष्ठा और कनिष्ठा के भेद से दो-दो प्रकार की होती है। इस तरह मध्या एवं प्रगल्भा 12 भेद हुए और एक प्रकार की मुग्धा नायिका। कुल मिलाकर स्वकीया नायिका तेरह प्रकार की हुयी।

परकीया नायिका—

"अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्"।

"कन्यानुरागामिच्छातः कर्यादगांगिसंश्रयम।।" परकीया नायिका दूसरे की विवाहिता स्त्री या अविवाहिता कन्या होती है। दूसरे की विवाहिता को अन्योढ़ा (परकीया) कहा जाना ठीक है पर कन्या को परकीया इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह विवाह से पूर्व अन्य के

वश में (पिता-भाई आदि के अधीन) होती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्योढ़ा (दूसरे की विवाहिता स्त्री) को कभी भी नाटक में अंगी रस की नायिका नहीं बनाया जा सकता। जो अविवाहिता कन्या होती है उसके प्रति नायक के अनुराग का वर्णन करते हुए नाटककार उसे अंगी रस, अथवा अंग रस की नायिका भी बना सकता है।

सामान्या नायिका—

साधारण स्त्री तो गणिका होती है अर्थात गणिका को सामान्य नायिका कहा जाता है। वह संगीत आदि कलाओं में निपुण तथा प्रगल्भ एवं धूर्त होती है। वह किसी पुरूष के प्रति तभी तक प्रेम दिखाती है जब तक उसके पास धन होता है। जब वह धन रहित हो जाता है तब गणिका उसकी उपेक्षा कर देती है।

3.5.9. नायिकाओं की अवस्थाएँ:

पूर्व में कही गई नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ होती है।

1. **स्वाधीनपतिका: "आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका"** जिस नायिका का पति/प्रियतम उसके पास उसके वश में रहता है वह स्वाधीनपतिका कहलाती है ।

2. **वासकसज्जा: "मुदा वासकसज्जा एवं मंडयत्येष्यति प्रिये"** प्रियतम आने ही वाला है ऐसा जानकर जो नायिका स्वयं को तथा अपने निवास (घर) को सजाती सँवारती है वही वासकसज्जा कहलाती है।

3. **विरहोत्काण्ठिता: "चिरयत्यव्यलीकेतु विरहोत्कंठितोन्मना"** प्रियतम द्वारा कोई अपराध (अन्यासक्ति रूप अपराध) न किए जाने पर भी निर्धारित समय पर उसके आने में देरी होने के कारण प्रियतम के वियोग में उससे मिलन के लिए उत्कंठित नायिका विरहोत्कंठिता कही जाती है।

4. **खण्डिता: "ज्ञातेऽन्यासंगविकृते खंडितेर्ष्याकषायिता"** प्रियतम को अन्या नायिका के सहवास चिह्नों से युक्त देखकर जो नायिका ईर्ष्या से कलुषित हो उठती है, वह खंडिता कहलाती है।

5. कलहान्तरिता: "कलहान्तरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक्"। जो नायिका क्रोध से अपराधी नायक का तिरस्कार करके बाद में पश्चाताप करती है, उसे कलहान्तरिता नायिका कहा जाता है।

6. विप्रलब्धा: "विप्रलब्धोक्तसमयप्राप्तेऽतिविमानिता"। पूर्व निर्धारित समय पर प्रिय के न आने से जो नायिका स्वयं को अपमानित हुआ समझती है, वह विप्रलब्धा कहलाती है।

7. प्रोषिताप्रिया: "दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया"। जिस नायिका का प्रिय किसी कार्य से दूर देश में स्थित होता है, वह प्रोषितप्रिया कहलाती है।

8. अभिसारिका: "कामार्ताऽभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाऽभिसारिका"। काम पीड़ा से व्याकुल होकर जो नायिका स्वयं अपने प्रियतम के पास रमण हेतु जाती है, अथवा प्रिय को अपने पास बुलाती है, वह अभिसारिका कहलाती है।

जिस प्रकार हार केयूर आदि आभूषण नारी के शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार यौवनावस्था में शरीर में प्रकटित होने वाले कुछ विकार (परिवर्तन) शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। अतः उन्हें हार-भुजबन्द आदि के समान अलंकार कहा जाता है। यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले इन सात्विक अलंकारों की संख्या बीस मानी गयी है। इनमें तीन शरीरज अलंकरण हैं- (1) भाव (2) हाव (3) हेला। सात अयत्नज अलंकरण कहे जाते हैं (1) शोभा (2) कांति (3) दीप्ति (4) माधुर्य (5) प्रगल्भता (6) औदार्य (7) धैर्य। इनके अलावा दस स्वभावज अलंकरण कहे गये हैं- (1) लीला (2) विलास (3) विच्छित्त (4) विभ्रम (5) किलकिंचित (6) मोट्टायित (7) कुट्टमित (8) विव्वोक (9) ललित (10) विहृत।

अभ्यास प्रश्न—2

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1.नायिका सर्वप्रथम कितने प्रकार की मानी गई है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

2.स्वकीया नायिका के कितने भेद होते हैं?

(क) तीन (ख) चार

(ग) पाँच (घ) छः

3.सामान्या (साधारण स्त्री) नायिका निम्नलिखित में से कौन होती है?

(क) दूसरे की विवाहिता (ख) अविवाहिता कन्या

(ग) गणिका (वेश्या) (घ) राजकन्या

अति लघु उत्तरीय:

1. परकीया नायिका कौन होती है?
2. मुग्धा नायिका का लक्षण क्या है?
3. नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ कौन-कौन सी है?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. मध्या स्वकीया नायिका के धीरा मध्या, अधीरा मध्या तथा..... तीन भेद कहे गए है।
2. प्रगल्भा स्वकीया नायिका के धीरा मध्या..... तथा धीराधीरा मध्या तीन भेद कहे गए हैं।
3. मुग्धा नववयःकामा .....मृदुः क्रुधि।

सत्य/असत्य:

1. स्त्रियों में यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले विकारों को सात्विक अलंकरण कहाजाता है।
2. मुग्धा नायिका आयु में प्रौढ़ तथा अत्यन्त बढ़े हुए काम भाव वाली होती है।
3. नायिकाओं के स्वभावज अलंकरण दस माने गए हैं।

4. नायिकाओं की पाँच अवस्थाएँ कही गई हैं।

3.3.6 नान्दी —

नान्दी उसे कहते हैं जो नाटक के प्रारम्भ में देवता, ब्राह्मण या राजाओं आदि की आर्शीवाद से युक्त स्तुति करता है। पर्वू रङ्ग के अनेक अङ्गों में से एक अङ्ग का नाम नान्दी भी है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार -

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मातप्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।

नान्दी देव, द्विज, नृप आदि की ऐसी स्तुति है जिसमें सामाजिकों की शुभाशंसा निहित रहती है। भरत के अनुसार – आशीर्नमस्क्रियारूप: श्लोक: काव्यार्थसूचक: नन्दीतिकथ्यते। अर्थात् आर्शीवाद और नमस्कार से युक्त श्लोक नान्दी कहलाता है। उसमें काव्य के कथानक का संकेत भी होता है। ब्राह्मण, देवता राजादिकों की आशीर्वचनयुक्त स्तुति इसमें की जाती है, अतः इसे नान्दी कहते हैं। इसमें मांगल्य वस्तु, शंख, चन्द्र, चक्रवाक और कुमुदादिकों का वर्णन होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी नर्तक बिना किसी विशेष स्वरूप रचना के मिलकर जो मगंलार्थ स्तुति आदि करते हैं, वह नान्दी कही जाती है। नान्दी में आठ, दश या बारह पद होने चाहिए। इसमें आशीर्वाद, नमस्कार या कथावस्तु का निर्देश होना चाहिए। चतुर्थांश को पद मानने पर महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रथम श्लोक को चार पाठ वाली नान्दी के रूप में प्रयोग किया है।

3.3.7 सूत्रधार — सूत्रं-नाटयसूत्रं धारयतीति **सूत्रधार:**

नाटकीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते ।
रङ्गभूमि समाक्रम्य 'सूत्रधार:' स उच्यते ।
नाटयेपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ।
नाट्यप्रयोगनिपुणो नानाशिल्पकलान्वित: ।
छन्दोविधानतत्वज्ञसर्वशास्त्रविचक्षण: ।।
तत्तद्गीतानुगलयकलातालावधारण: ।
अवधाय प्रयोक्ता च योक्तृणामुपदेशक: ।।
एवं गुणगणोपेतस्सूत्रधारोऽभिधीयते ।

सूत्रधार नाटक के सभी सूत्र अपने हाथों में धारण करता है और वही नाटक को प्रारंभ करता है और वही अंत भी करता है। कभी कभी नाटक के बीच में भी उसकी उपस्थिति होती है। कभी कभी वह मंच के पीछे अर्थात नेपथ्य से भी नाटक का संचालन करता है। भारतीय रंगपरंपरा में सूत्रधार को अपने नाम के अनुरूप महत्व प्राप्त है। भारतीय समाज में संसार को रंगमंच, जीवन को नाट्य, मनुष्य या जीव को अभिनेता और ईश्वर को सूत्रधार कहा जाता है।

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम् ।
रंगदेवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरित: ।।

बीजसहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं और जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठातृ देव की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं। (सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति) जो 'सूत' अर्थात् रंगमंच पर घटित होने वाली घटना को नियमित रूप से चलाता है। वह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है। प्रस्तावना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है तथा नाटकीय पात्रों को निर्देश देता है। ''सूत्रधारः पाठेन्नान्दीम्'' अर्थात् नान्दी पाठ सूत्रधार ही करता है। सूत्रधार का अर्थ है सूत्र को धारण करने वाला। रंगमंच पर अभिनेय नाटक के कथासूत्र की अवतारणा करने वाला व्यक्ति ही सूत्रधार कहा जाता है। इसकी अनेक व्याख्यायें आचार्यों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं।

नाट्य के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं और उस सूत्र का धारक तथा मंच के अधिष्ठित देवता का समर्थक ही सूत्रधार होता है। अर्थात् बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठाता देवता की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं, जैसे—अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथमाङ्क में नान्दी पाठ समाप्त होते ही सूत्रधार प्रवेश करता है। संगीतसर्वस्कार ने, कथासूत्र का आदिप्रवर्तक होने के कारण ही व्यक्तिविशेष को सूत्रधार कहा है। नाट्योपकरण आदि ही सूत्र है और उन्हें धारण करने वाला व्यक्ति ही सूत्रधार कहा जाता है।

3.3.8 नेपथ्य —

नेपथ्य —

' कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ' ।

अभिनेतागण जहाँ नाटक के उपयुक्त वेशभूषा धारण करते हैं , उसे नेपथ्य कहते हैं । पर्दा के भीतर बठै हुए पात्रों द्वारा दर्शकों को दी जाने वाली कथावस्तु की सूचना को चूलिका कहते हैं। कुछ विद्वानों ने इसी को नेपथ्य की संज्ञा दी है। नेपथ्य का शाब्दिक अर्थ है— **निन: नेत्रस्य नेपथ्यम्** अर्थात् नेत्रों के लिये पथ्यभूत, सुखदायक। मंच का पिछला भाग जहाँ अभिनेता एवं अभिनेत्रियाँ वेषभूषा धारण करते हैं- नेपथ्यगृह कहा जाता है जो अपनी साजसज्जा तथा रसमयता के कारण सचमुच नेत्राकर्षक होता है। नेपथ्य शब्द के तीन अर्थ हैं- वेष धारण करना, वेष धारण का स्थान तथा पर्दा। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में नेपथ्य के माध्यम से अनेकशः कथावस्तु की सूचना दी गयी है। चतुर्थ अंक में दुर्वासा को ''अनन्यमानसा'' शकुन्तला द्वारा प्रणाम न किए जाने पर दिये गए शाप की सूचना - नेपथ्य के अन्य रमणीय उदाहरण भी अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में प्राप्त होते हैं।

3.3.9 प्रस्तावना—

प्रस्तावना —

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिता: संलापं यत्र कुर्वते ।।
चित्रैर्वाक्यै: स्वकार्योत्थै: प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथ: ।
आमुखतत्तु विज्ञेयं नाम्नाप्रस्तावनापिसा ।।

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार- प्रस्तावना वह आमुख है जिसमें नटी अथवा विदूषक या पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ ऐसा आलाप किया करते हैं जिसमें प्रस्तुत अभिनय का आक्षेप करने वाले चित्र विचित्र वाक्यों का प्रयोग हुआ करता है । अभिनेताओं के संस्कृत प्रचुर वाचिकाभिनयप्रधान भारती नाट्यवृत्ति के चार अङ्ग प्ररोचना, वीथी, प्रहसन, प्रस्तावना होते हैं। प्रस्तावना को ही आमुख कहा जाता है। प्रस्तावना के पाँच भेद (उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवलगित) होते हैं जिनमें से किसी एक का ही प्रयोग रूपक विशेष में किया जाता है। नाट्यदर्पणकार आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में आमुख की व्याख्या की है- ''विदूषक- नटी मार्षैः व्यस्तैस्समस्तैर्वा सह सूत्रधारस्य सूत्रधारगुणानुकारस्य वा नाट्यार्थस्य, स्थापनाकर्त्तुः स्थापकस्य प्रस्तुतस्य काव्यार्थस्याक्षेपि, उपस्थापकं भाषणं वक्रोक्तैः साक्षाद् विवक्षितार्थस्याऽप्रतिपादकैः स्पष्टोक्तैः साक्षाद् विवक्षितार्थप्रतिपादकैश्च यत् स्वस्याभिप्रायोत्कीर्तनं तदामुखम्। ''आङ् मर्यादायाम्'' तेन मुखसन्धिं सम्प्राप्य निवर्तते।'' अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथम अंक में नटी के गायन से प्रस्तावना को देखाजा सकता है।

3.3.10 कञ्चुकी —

'' अन्त:पुर:चरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वित: '।
सर्वकार्यार्थकुशल: कंचुकीत्यभिधीयते ।।

अन्त:पुर में जाने वाले ,वृद्ध , गुणवान, ब्राह्मण को जो सब कार्यों को करने में कुशल होता है उसे कंचुकी कहते हैं । कंचुकी का शाब्दिक तात्पर्य है ''कञ्चुक से युक्त व्यक्तिविशेष (''कञ्चुकमस्यातीति कञ्चुकी)''। राजदरबारों में सेवकों द्वारा पहने जाने वाले एक प्रकार के वस्तु झिंगोले को ही कंचुक कहा जाता है। पारिभाषिक दृष्टि से अन्तःपुर में संचरण करने वाले, गुणसमूह से विभूषित तथा समस्त दायित्वों के निर्वाह में दक्ष बढे ब्राह्मण को कचञ्की कहते हैं। वस्तुतः यह राजा की अन्तःपुर कामिनियों का संरक्षक होता है। ब्राह्मण होने के कारण सात्विक होना तथा वृद्ध होने के कारण कामदोष विवर्जित होना कंचुकी की दो विशेषतायें हैं।

3.3.11 विदूषक —

आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में-

कुसुमवसन्ताद्यभिध: कर्मवपुर्वेषभाषाद्यै: ।
हास्यकर: कलहरतिविदूषक: स्यात् स्वकर्मज्ञ: ।।

जो अपने कार्यों ,शारीरिक चेष्टाओं ,वेशभूषा और बोली आदि के द्वारा लोगो को हँसाता है ,कलह में प्रेम करता है और अपने हास्य के कार्य को ठीक जानता है, उसे विदूषक कहते है । कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम होते हैं ।

'विशेषेण दूषयतीति विदूषकः' जो दूषणकला में दक्ष हो, उसे विदूषक कहते हैं। यह कथानायक का सर्वाकालिक मित्र होता है जो शारीरिक चेष्टाओं तथा बातों से हँसी उत्पन्न करता है। यह अन्तःपुर में लड़ाई लगाने वाला, मुँह देखी बातें करने वाला तथा पेटू होता है। विदूषक में विदूषण सम्बन्धी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं का सामंजस्य होता है।

शरीर से वह प्रायः बौना, दंतैल, कुबड़ा, टेढ़े मुँह वाला, गंजे सिर वाला तथा पीली आँखों वाला होता है।

आचार्य भरत के अनुसार- **वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः। खलति पिंगलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः।।** विदूषक कथानायक का सार्वकालिक मित्र होता है। उसका प्रमुख उद्देश्य अपने कार्यों, वेषभूषाओं, शारीरिक चेष्टाओं तथा बातों से हास्य की सृष्टि करना होता है। अन्तःपुर के वातावरण में वह प्रायः कलह कराने में भी रुचि लेता है। इसी प्रकार पेटूपन, स्वार्थभाव तथा मुँहदेखी बात करना भी विदूषक की विशेषता है।

3.3.12 विष्कम्भक —

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्र प्रयोजितः।।" भूतकाल में घटित हो चुके और भविष्य में घटित होने वाले कथांशों का सूचक विष्कम्भक कहलाता है। यह संक्षिप्त अर्थ वाला होता है। अर्थात् इसमें अति संक्षेप में कथांश को सूचित किया जाता है। यह मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के अन्तर्गत आमात्य सेनापति वणिक पुरोहित आदि संस्कृत बोलने वाले पात्र आते हैं।

यह विष्कम्भक दो प्रकार का होता है। (1) शुद्ध (2) संकीर्ण। "एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः"। जिस विष्कम्भक में एक या अनेक मध्यम कोटि के पात्र होते हैं उसे शुद्ध विष्कम्भक कहा जाता है। जिस विष्कम्भक में मध्यम के साथ-साथ नीच या अधम कोटि के (चोर, शिकारी, सेवक, सेविका, सिपाही आदि प्राकृत भाषी) पात्र भी होते हैं उसे संकीर्ण विष्कम्भक कहा जाता है। संक्षेप में विष्कम्भक की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. विष्कम्भक का वर्ण्य विषय संक्षिप्त होता है।
2. इसमें अतीत की एवं भावी घटनाओं की सूचनाएँ दी जाती है।
3. इसका प्रयोग प्रथम अंक से पहले प्रस्तावना के बाद हो सकता है। दो अंकों के बीच में भी विष्कम्भक का प्रयोग किया जा सकता है।
4. विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के पात्रों का होना आवश्यक है।
5. संकीर्ण विष्कम्भक में भी नीच पात्रों के साथ ही कम से कम एक मध्यम कोटि का पात्र जरूर होना चाहिए।
6. शुद्ध विष्कम्भक की भाषा संस्कृत होनी चाहिए।
7. संकीर्ण विष्कम्भक की भाषा में संस्कृत और प्राकृत का समिश्रण होना चाहिए।

3.3.13 प्रवेशक —

"तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।"

प्रवेशक भी विष्कम्भक की तरह भूत एवं भविष्य के कथांशों का सूचक होता है। यह अधम कोटि के पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा में सम्पादित होता है। अर्थात इसमें निम्न कोटि के पात्र होते हैं जो प्राकृत बोलते हैं। प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के मध्य में ही होता है। अतः स्पष्ट

है कि प्रवेशक कभी भी प्रथम अंक से पहले नहीं हो सकता। प्रवेशक शेष (रंगमंच पर प्रदर्शित न किये जा सकने वाले) अर्थों का सूचक होता है।

संक्षेप में प्रवेशक की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं।

1. प्रवेशक में भूत एवं भविष्य की कथांशों की सूचना दी जाती है।
2. प्रवेशक की वर्ण्य वस्तु संक्षिप्त होती है। इसमें अधम कोटि के पात्र होते हैं।
3. इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होती है।
4. इसमें केवल प्राकृत भाषा और वह भी निम्न श्रेणी की मागधी, शकारी, पैशाची प्राकृत आदि होती है।
5. प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के बीच में ही होता है, नाटक के आदि में कभी नहीं होता।

अभ्यास प्रश्न— 3

1. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का नायक है -
   A. उदयन
   B. चारुदत्त
   C. माधव
   D. दुष्यन्त
2. 'मृच्छकटिक' प्रकरण के नायक की कोटि है -
   A. धीरोदात्त
   B. धीरोद्धत
   C. धीप्रशान्त
   D. दिव्य
3. धीरोद्धत कोटि के नायक का लक्षण है -
   A. मायावी
   B. राजर्षि
   C. मृदु
   D. विनीत
4. 'रत्नावली' नाटिका के नायक की श्रेणी है -
   A. धीरललित
   B. मर्त्य
   C. धीरोदात्त
   D. धीरोद्धत
5. 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण का नायक है -
   A. दुष्यन्त
   B. चारुदत्त

C. उदयन

D. श्रीकृष्ण

6. नाटक में 'नान्दी' का प्रयोग होता है –

A. प्रारम्भ में

B. मध्य में

C. अन्त में

D. इनमें से कोई नहीं

7. अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की नान्दी पदों की है-

A. एक

B. तीन

C. पाँच

D. चार

8. नाटक में नान्दी के प्रयोग का प्रयोजन है-

A. नाटक में बाधा आना

B. नायक का परिचय प्रस्तुत करना

C. नाटक की निर्विघ्न समाप्ति

D. नाटक की समाप्ति की घोषणा

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि रूपक का सम्पूर्ण इतिवृत्त ऐसा नहीं होता जिसे ज्यों का त्यों रंगमंच पर दिखाया जा सके। अतः ऐसे वृत्तान्त की सूचना मात्र दे दी जाती है। सूच्य इतिवृत्त के सूचक उपायों को नाट्यशास्त्रियों ने 'अर्थोपक्षेपक' नाम दिया है। पाँच अर्थोपक्षेपकों के द्वारा कुछ इस प्रकार से सूच्य कथांश को सूचित किया जाता है कि कथा की निरन्तरता भी बाधित नहीं होती और दर्शक उन कथांशों को जान भी लेते हैं जिन्हें रंगमंच पर दिखाना संभव नहीं, किन्तु जानना आवश्यक होता है।

नाट्यकाव्य से तात्पर्य दृश्यकाव्य अथवा रूपक से है जो चक्षु तथा श्रवण दोनों ही इन्द्रियों का विषय होने से श्रव्यकाव्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। नाट्यकाव्य का तात्पर्य उस काव्य से है, जो नेत्रों के माध्यम से हमारे हृदय में प्रवेश करते हुए रस का संचार करके सहृदय दर्शकों को आह्लादित कर देता है। नट के द्वारा नायक (रामसीतादि) की अवस्थाओं का अनुकरण किए जाने के कारण रूपक को 'अभिनय' कहा जाता है। नाटक का मुख्य उद्देश्य होता है अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरजं न करते हुए रसाभिव्यक्ति करना और ''रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्'' का उपदेश देना। नाटक मुख्यरूप से वस्तु, नेता एवं रस पर आश्रित होता है।

प्रस्तुत इकाई में नायक निरूपण करते समय आप देख चुके हैं कि सर्वप्रथम प्रकृति के आधार पर नायक के चार भेद करते हुए उनके श्रृंगारिकता के आधार पर उनके चार-चार भेद किए गए हैं। इस तरह नायक सोलह प्रकार के हो जाते हैं। पुनः ज्येष्ठ, मध्यम और अधम के आधार पर सोलह नायकों के तीन-तीन भेद करने पर नायक के अन्ततः अड़चालिस भेद होते हैं। नायक के पुरूषोचित गुणों से भी आप परिचित चुके हैं। आपने यह भी जाना कि नायक की तरह विनम्रता आदि गुणों से युक्त नायिका सर्वप्रथम स्वकीया, परकीया और सामान्या भेद से तीन प्रकार की होती है। स्वकीया नायिका मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन तरह की होती है। इनमें से मुग्धा तो एक ही तरह की होती है जबकि मध्या एवं प्रगल्भा दोनों तीन-तीन तरह की होती है। मध्या तथा प्रगल्भा के ये छः भेद ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा के आधार पर दो-दो तरह के हो गए हैं। इस तरह छः तरह की मध्या छः तरह की प्रगल्भा तथा एक मुग्धा कुल मिलाकर स्वकीया के तेरह भेद आपने जान लिए हैं। परकीया नायिका परोढ़ा (दूसरे की विवाहिता) और कन्या रूप होती है। सामान्या नायिका तो गणिका या वेश्या होती है। इन सभी प्रकार की नायिकओं की स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाओं तथा उनके शरीरज, अयत्नज एवं स्वभावज कुल मिलाकर बीस सात्विक अलंकरणों के विषय में भी आपको जानकारी प्राप्त हुई।

प्रस्तुत इकाई में नाटक के प्रमुख स्तम्भों पर प्रकाश डाला गया है। नाटक की वस्तु रचना में कथावस्तु के रूप में दो तत्वों, कार्य और चरित्र का समन्वय है। कथावस्तु जहाँ एक ओर जीवन की क्रियाशीलता का रूप है तो दूसरी ओर चरित्र का विकास। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने कथावस्तु, नायक, नायकादि के विषय में अध्ययन किया।

3.5 शब्दावली

शब्द	-	**अर्थ**
अरण्य	-	जंगल
तनया	-	पुत्री
वैक्लव्यं	-	व्याकुलता
इतिवृत्त	-	कथावस्तु
आधिकारिक कथावस्तु	-	मुख्य कथावस्तु
प्रासङ्गि कथावस्तु	-	अमुख्य कथावस्तु
उपकारिका	-	उपकार (भला) करने वाली
अभिव्यक्त	-	प्रकट
परिहास	-	हँसी मजाक
अनिर्वचनीय	-	जिसके बारे में कुछ कहा न जा सके
सिंह शावक	-	शेर का बच्चा
उपालम्भ	-	उलाहना

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास—1

बहुविकल्पीय प्रश्न—

1. ग 2. ग 3. घ

रिक्त स्थान पूर्ति—

1. धीरोदात्त 2. प्रकरण 3. निश्चिन्तो कलासक्त 4. धीरशान्तो

अति लघु उत्तरीय—

1. प्रिय वचन बोलने वाला या मधुर भाषी।
2. ब्राह्मण, वणिक् और अमात्य।
3. जो एक ही नायिका से प्रेम करे।

सत्य/असत्य—

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

अभ्यास—2

बहुविकल्पीय प्रश्न—

1. ख 2. क 3. ग

अतिलघु उत्तरीय—

1.दूसरे की ब्याहता और कन्या।

2. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा क्रुधि मृदुः।

3. स्वाधीनपतिका

रिक्त स्थान की पूर्ति—

1.वासकसज्जा 2.विरहोत्कंठिता 3. खण्डिता

4. कलहान्तरिता 5. विप्रलब्धा 6. प्रोषिताप्रिया 7. अभिसारिका।

सत्य/असत्य—

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य

अभ्यास—3

बहुविकल्पीय प्रश्न—

1. (D) दुष्यन्त 2. (C) धीरप्रशान्त 3. (A) मायावी 4. (A) धीललित 5. (B) चारुदत्त 6. (A) प्रारम्भ में 7. (D) चार 8. (C) नाटक की निर्विघ्न समाप्ति

3.7 सन्दर्भ पुस्तक सूची —

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
2. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तारिणीश झा ,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।
4. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

5. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु0 डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
6. धनंजय, दशरूपकम्, व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, साहित्य भण्डार, मेरठ।
7. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।
8. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत् अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भण्डार, मेरठ।

3.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें —

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
2. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
3. साहित्यदर्पण- विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957
4. दशरूपकम्- डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ-2, 1969।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विष्कम्भक तथा प्रवेशक में क्या क्या समानताएँ तथा क्या क्या विषमताएँ हैं?
2. नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए नायक भेद का निरूपण कीजिए।
3. श्रृंगारिक आधार पर नायक की कितनी अवस्थाएँ होती हैं उनका लक्षण दीजिए।
4. स्वकीया नायिका किसे कहते हैं स्वकीया के भेद बताइए।
5. नायिकाओं की आठ अवस्थाओं का उल्लेख कीजिए।
6. धनंजय के अनुसार चूलिका की परिभाषा लिखिए।
7. आचार्य विश्वनाथ के अनुसार नान्दी की परिभाषा लिखिए।
8. प्रमुख नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का परिचय दीजिए।
9. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए -
    1. नायक
    2. नायिका
    3. पूर्वरंग
    4. नान्दी
    5. अनुकूल नायक
    6. धीरोदात्त नायक
    7. परकीया
    8. सामान्या नायिका

इकाई 4 . प्रमुख नाट्य तत्वों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्रमुख नाट्य तत्व
    4.3.1 कथावस्तु
    4.3.2 चरित्र-चित्रण
    4.3.3 शैली
    4.3.4 संवाद
    4.3.5 अभिनय
    4.3.6 उद्देश्य
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 निबन्धातमक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रथम खण्ड से संबंधित यह चतुर्थ इकाई है। इस इकाई में आप प्रमुख नाट्य तत्वों का परिचय प्राप्त करेंगे। नाटक एक दृश्य काव्य है। यह अभिनेय होता है। अभिनय देखकर जिस काव्य के आनंद का उपयोग किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य की भांति सुने या पढ़े नहीं जा सकते। इनको भी पढ़ या सुन सकते हैं. किन्तु पूर्णानंदानुभूति अभिनय देखकर ही की जा सकती है। नट किसी अन्य व्यक्ति विशेष की विभिन्न अवस्थाओं का अपने अभिनय द्वारा अनुकरण करता है। यह अनुकृति ही नाट्य है और अभिनय कार्य ही नाटक है। नाटक 'नट' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है अवस्कंदन अर्थात् शारीरिक और मानसिक क्रियाओं का परिचालन। यह परिचालनकर्ता नट तथा उसका कार्य नाटक कहलाता है।

आत्माभिव्यक्ति करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, क्योंकि उससे उसे आत्मतुष्टि होती है। अनुकरण वृत्ति भी स्वाभाविक है। मनुष्य जाने अनजाने अनुकरण करता ही रहता है अर्थात् दूसरों की व्यवस्था विशेष का अनुकरण करता है। यही रूप है इसीलिए धनंजय ने दश-रूपक' में अनुकरण को ही नाट्य का मूलाधार माना है। इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि इसी अनुकरण को जब आपसी वार्तालाप संगीत नृत्य वेषभूषा एवं भाव-भंगिमा से समन्वित कर देने पर नाटक हो जाता है। भरतमुनि के अनुसार नाटक के चार तत्त्व है। **1. संवाद 2. संगीत 3. अभिनय 4. रस**

इस इकाई में नाट्य तत्वों का उल्लेख किया गया है। धनंजय को मान्य नाटक आदि की पंच सन्धियों तथा उनके चौसठ अंगों के विषय में प्रस्तुत इकाई में विस्तार से विश्लेषण किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्य तत्वों एवं उसके अंगों के बारे में समझ सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- प्रमुख नाट्य तत्वों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- जान सकेंगे कि सन्धि का स्वरूप क्या होता है ?
- नाट्यगत पंच सन्धियों के विषय में जान सकेंगे।

4.3 प्रमुख नाट्य तत्व

संस्कृत नाट्य परम्परा के अनुसार नाटक में प्रसिद्ध कथावस्तु पंचसंधियाँ, कार्यावस्थाएँ तथा अर्थ प्रकृतियों का यथा संभव यथोचित प्रयोग होना चाहिए तथा उसमें चारों वृत्तियों का समावेश के साथ ही राजपुरुष अथवा दिव्य पुरुष नायक हो और वीर या श्रृंगार रस की प्रधानता हो संपूर्ण नाटक को अंकों में और अंकों को दृश्यों में विभाजित किया गया हो। संस्कृत आचार्यों ने नाटक के तत्त्व कुल पांच माने हैं-कथावस्तु, नेता, रस, अभिनय और वृत्ति। पाश्चात्य समीक्षक

अरस्तु ने नाटक के छः तत्व माने थे—1. कथावस्तु, 2. चरित्र-चित्रण, 3. शैली, 4. संवाद, 5. अभिनय, 6. उद्देश्य

4.3.1 कथावस्तु—

नाटक के कथानक को कथावस्तु कहते हैं। आरम्भ से अन्त तक चलने वाली कथा को आधिकारिक और इस कथा के विकास में सहायक प्रसंगवश चलने वाली कथा को प्रासंगिक कथावस्तु कहते हैं। यह कथानक तीन प्रकार का होता है-प्रख्यात, उत्पाय और मिश्र। पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानक को प्रख्यात, काल्पनिक कथानक को उत्पाय और इन दोनों के मिश्रित रूप को मिश्र कथानक कहते हैं। नाटक के विकास की दृष्टि से उसकी कथावस्तु को दो रूपों में बाँटा जा सकता है- आधिकारिक और प्रासंगिका।

नाटक की कथावस्तु यथा सम्भव यथार्थ, संक्षिप्त और स्पष्ट होनी चाहिए। नाटक कथावस्तु यदि कल्पना से गढ़ी जाए तो भी वह इतनी यथार्थ होनी चाहिए कि पाठक उसको समाज एक घटना के रूप में स्वीकार करे। नाटककार की सफलता इस बात में निहित होती है कि वह कथानक को कम-से-कम विस्तार दे और उसे अधिक से अधिक स्पष्ट करें।

कथानक का वह अंश जो नायक नायिका से संबद्ध होता है, अधिकारिक और वह अंश जो अन्य पात्री से संबंधित होता है, प्रासांगिक कथावस्तु माना जाता है। फलप्राप्ति एवं कार्यव्यापार के आधार पर कथावस्तु पांच प्रकार की मानी जाती है जिन्हें संधि कहते हैं। फल की प्राप्ति के लिए उपाय करना आवश्यक होता है। अतः इन उपायों को भी पांच भागों में विभक्त कर उन्हें पांच अर्थ प्रकृतियों कहा जाता है, जबकि नायक के कार्यव्यापार को कार्यावस्थाएँ कहा जाता है। नीचे सन्धियॉ अर्थ प्रकृतियॉ, कार्यावस्थाएँ के प्रकार बताये गये हैं।

सन्धि का लक्षण—

धनञ्जय के अनुसार सन्धि का लक्षण है-"किसी रूपक में कई कथांश होते हैं। उनके अपने प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न होते हैं। वे इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन के साथ समन्वित होते हैं और किसी अवान्तर प्रयोजन के साथ भी उनका सम्बन्ध होता है। यही सम्बन्ध सन्धि कहलाता है।" सन्धि शब्द का अर्थ है संयोग या जोड़, जो दो या दो से अधिक तत्त्वों के मध्य हो सकता है। रूपक के संदर्भ में इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन के साथ समन्वित होते हुए भी किसी कथांश का अपने अवान्तर प्रयोजन के साथ होने वाले सम्बन्ध को ही सन्धि कहा जाता है। धनञ्जय ने अपने दशरूपकम् में सन्धियों का इस प्रकार नामोल्लेख किया है- "**मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः"** अर्थात् मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण ये पाँच सन्धियाँ होती है।

सन्धियों का स्वरूप—

बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी एवं कार्य ये पाँच नाटक की अर्थ प्रकृतियाँ हैं। ये अर्थप्रकृतियाँ नाटक में प्रयोजन सिद्धि का हेतु कही गई हैं। नाटक में लक्ष्य या फल की प्राप्ति चाहने वाले नायकादि द्वारा इच्छित फल की प्राप्ति के लिए जो कार्य व्यापार किया जाता है उसकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं आरम्भ, यत्न, प्रात्याशा, नियताप्ति एवं फलागम।

सन्धियों के रचनात्मक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए धनंजय कहते हैं- "बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य इन पाँच अर्थप्रकृतियों का क्रमशः आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम"-इन पाँच कार्यावस्थाओं के साथ संयोग (मिलन) होने पर मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श अवमर्श एवं निर्वहण या उपसंहृति नाम की पाँच सन्धियों की रचना होती है।" सन्धियों के इस रचनात्मक स्वरूप को इस प्रकार समझा जा सकता है-बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग से होने वाली सन्धि को मुखसंधि कहते हैं। इसी तरह बिंदु तथा यत्न के संयोग से होने वाली सन्धि प्रतिमुख सन्धि है। पताका तथा प्राप्त्याशा मिलकर गर्भ सन्धि होती है तथा प्रकरी एवं नियताप्ति मिलकर विमर्श अवमर्श संधि होती है। इनमें यह देखने वाली बात यह है कि किसी रूपक की कथा में पताका एवं प्रकरी का होना अनिवार्य नहीं है।

अतः गर्भ एवं विमर्श सन्धि में ये हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकती। किन्तु गर्भ सन्धि में प्राप्त्याशा तथा विमर्श सन्धि में नियताप्ति का होना आवश्यक है। गर्भ सन्धि में नाटक का फल छिपा रहता है इसलिए उसे गर्भ सन्धि कहते है। रूपक के अंत में जहाँ कार्य नामक पाँचवी अर्थ प्रकृति और फलागम रूप पाँचवी कार्यावस्था का संयोग होता है वहाँ उपसंहृति या निर्वहण नामक पाँचवी सन्धि होती है। इन पंचसंधियों का लक्षण तथा इनके अंगों का विवरण निम्न प्रकार है-

1. मुख सन्धि का लक्षण—

"मुखं बीज समुत्पात्तिर्नानार्थरससम्भवाः।
अंगानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।।"

नाटक के प्रारम्भिक भाग में जहाँ पर अनेकानेक प्रयोजनों एवं रसों को निष्पन्न कराने वाली बीजोत्पत्ति दिखाई जाय वहीं पर मुख नामक प्रथम सन्धि होती है। मुख सन्धि में बीज को प्रदर्शित किया जाता है तथा कार्य की आरम्भ नामक कार्यावस्था को विशेष प्रकार से स्पष्ट किया जाता है। नाटक प्रकरणादि रूपकों में धर्म, अर्थ एवं काम रूप त्रिवर्ग की (फल के रूप में) नायक आदि को प्राप्ति होती है जबकि भाण, प्रहसन आदि रूपकों में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति कराना लक्ष्य या फल नहीं होता। वहाँ केवल रस की उत्पत्ति होती है। अतः इन रूपकों में रसोत्पत्ति के हेतु (रस के आलम्बन अथवा समाज के उपहास योग्य पक्ष) को ही बीज माना जाएगा। मुखसन्धि बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग (मिलन) से निष्पन्न होती है। **"अंगानि द्वादशैतस्य"** इस मुख सन्धि के बारह अंग होते हैं। इन सन्ध्यंगों का विवरण निम्नलिखित है-

(1) उपक्षेप (2) परिकर (3) परिन्यास (4) विलोभन (5) युक्ति (6) प्राप्ति
(7) समाधान (8) विधान (9) परिभावना (10) उद्भेद (11) भेद (12) करण

किसी रूपक में यदि समस्त अंगों का विधान करना सम्भव न हो तो भी उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति, उद्भेद एवं समाधान का तो अवश्य ही विधान करना चाहिए अन्यथा अंगहीन पुरूष की तरह रूपक भी शोभा हीन होगा।

2. प्रतिमुख सन्धि—

बीज का कुछ-कुछ दिखायी देना और कुछ-कुछ न दिखायी देना ही प्रतिमुख सन्धि है। इस सन्धि का निर्माण बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से होता है। दशरूपककार धनंजय ने प्रतिमुख सन्धि का लक्षण इस प्रकार दिया है-

"लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।"

मुख सन्धि में बीज स्थापित किया जाता है उसे पोषित होने के लिए समुचित वातावरण मिलता है और प्रतिमुख सन्धि में आकर वह प्रस्फुटित होने लगता है, किन्तु जिस तरह बीज का पहला अंकुर कुछ-कुछ अस्पष्ट सा होता है उसी तरह नाट्य के बीज का यह अंकुर भी कुछ अस्पष्ट रूप में प्रतिमुख सन्धि में प्रकट होता है।

"अंगान्यस्यत्रयोदश" पूर्व में संकेतित बिन्दु रूप अर्थप्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से निष्पन्न प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंग कहे गये है। (1) विलास (2) परिसर्प (3) विधूत (4) शम (5) नर्म (6) नर्मद्युति (7) प्रगमन (8) निरोध (9) पर्युपासन (10) वज्र (11) पुष्प (12) उपन्यास (13) वर्ण संहार। इनमें से परिसर्प, प्रशम, वज्र उपन्यास पुष्प को रूपकों में प्रमुख रूप में नियोजित करना चाहिए। शेष अंगों का आवश्यकतानुसार नियोजन किया जा सकता है।

3. गर्भ सन्धि—

"गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुदुः।
द्वादशाङ्ग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्ति संभवः।"

जो बीज प्रतिमुख सन्धि में कुछ-कुछ प्रकट होने के कारण कभी पनपता कभी मुरझाता (लक्ष्यालक्ष्य रूप में" रहता है वही बीज गर्भ सन्धि में विशेष रूप में उद्भासित होने के कारण विघ्नों से बारम्बार नष्ट होता है। बार-बार उसका अन्वेषण किया जाता है। इस प्रकार प्रकट होने और नष्ट होने की स्थिति इस गर्भ सन्धि में निरन्तर बनी रहती है इसीलिए गर्भ सन्धि में फल प्राप्ति की आशा तो बनी रहती है किन्तु फल-प्राप्ति का दृढ़ निश्चय नहीं हो पाता। सामान्यतः पताका नामक अर्थप्रकृति और प्राप्त्याशा नामक कार्यवस्था के संयोग से गर्भ सन्धि होती है। लेकिन प्रत्येक नाटक में पताका का होना आवश्यक नहीं है इसलिए गर्भ सन्धि में पताका हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती। प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था इसमें अवश्यमेव होनी चाहिए।

भरत, विश्वनाथ की तरह दशरूपककार धनंजय ने भी गर्भ सन्धि के बारह अंग माने हैं उनका नामोल्लेख इस प्रकार है-(1) अभूताहरण (2) मार्ग (3) रूप (4) उदाहरण (5) क्रम (6) संग्रह (7) अनुमान (8) अधिबल (9) तोटक (10) उद्वेग (11) संभ्रम (12) आक्षेप। इनमें से अभूताहरण मार्ग, तोटक, अधिबल एवं आक्षेप प्रमुख हैं। शेष अंगों का यथासम्भव प्रयोग किया जा सकता है।

4. अवमर्श विमर्श सन्धि—

"क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।

गर्भनिर्भिन्न बीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।"

जहाँ क्रोध से व्यसन से या लोभ से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाता है तथा जहाँ गर्भ सन्धि के द्वारा विभिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखाया गया हो वहाँ अवमर्श/विमर्श सन्धि होती है। "जहाँ यह फल होना चाहिए इस प्रकार अवश्यम्भावी फल प्राप्ति का निश्चय कर लिया जाता है वहाँ अवमर्श या विमर्श होता है"।

धनंजय ने गर्भ सन्धि के तेरह अंग कहे हैं। इन अंगों का नामोल्लेख इस प्रकार है- (1) अपवाद (2) संफेट (3) विद्रव (4) द्रव (5) शक्ति (6) द्युति (7) प्रसंग (8) छलन (9) व्यवसाय (10) विरोधन (11) प्ररोचना (12) विचलन (13) आदान। रूपक में इन अंगों का क्रमशः प्रयुक्त होना आवश्यक नहीं है। रूपकों में इनका निबन्धन आगे पीछे भी दिखायी देता है। इनमें से अपवाद, शक्ति, व्यवसाय, प्ररोचना और आदान ये प्रमुख अंग रूपक में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त किये जाने चाहिए।

5. निर्वहण सन्धि—

"बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णायथायथम।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।"

नाटक के अंतिम भाग में नाटक की नाट्य के कथावस्तु के बीज से युक्त मुख, प्रतिमुख, गर्भ एवं विमर्श सन्धियों में नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार यत्र-तत्र फैले हुए प्रारम्भ आदि अर्थों का एक (प्रधान) प्रयोजन के लिए एक साथ संग्रह किया जाता है या उन्हें एक साथ समेटा जाता है। यही निर्वहण सन्धि है। निर्वहण सन्धि के अन्त में अनिवार्य रूप से अद्भुत रस का समावेश किया जाना चाहिए।

धनंजय ने निर्वहण सन्धि के चौदह अंग माने जो इस प्रकार हैं- (1) सन्धि (2) विबोध (3) ग्रथन (4) निर्णय (5) परिभाषण (6) प्रसाद (7) आनन्द (8) समय (9) कृति (10) भाषा (11) उपगूहन (12) पूर्वभाव (13) उपसंहार (14) प्रशस्ति। नाटक में प्रशस्ति नामक अंग की योजना अनिवार्य है। काव्य संहार तथा प्रशस्ति दोनों रूपक के अन्त में इसी क्रम में प्रयोग किये जाने चाहिए। अन्य अंगों का क्रम बदला भी जा सकता है।

4.3.2 चरित्र-चित्रण

नाटक में अनेक पात्र होते हैं। उन्हीं के आधार पर कथावस्तु का विस्तार होता है और उन्हीं के कथोपकथन कथावस्तु को गति प्रदान करते हैं और आगे बढ़ाते हैं। कथावस्तु को गति देकर फल प्राप्ति की ओर ले जाने वाले प्रधान पात्र को नायक कहा जाता है। पहले नायक राजपुत्र या दिव्य पुरुष ही होता था किन्तु अब मान्यताएँ बदल गई है। अतः किसी भी वर्ग का नायक मान्य है फिर भी उसे उच्च प्रतिष्ठित जनप्रिय सत्य परायण रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। अतः नायक चार श्रेणियों के माने जाते हैं- 1. धीर-ललित, 2. धीर-प्रशांत, 3. धीरोदात्त, 4. धीरोद्धत, प्रति नायक (खलनायक) नायक के प्रतिद्वंदी को प्रतिनायक कहते हैं। यह धीरोदात्त होता है किन्तु उसके गुण नायक से विपरीत होते हैं वह लोभी हठी तथा पापाचारी होता है। शेष पात्र नायक अथवा प्रतिनायक के सहायक होते हैं।

नायक की भाँति नायिकाओं के भी कई भेद किए जाते हैं-स्वाधीन पतिका, वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता, बहिता, विप्रलब्धा, प्रोषित पतिका, अभिसारिका एवं कलहांतरिता, आदि। नायक के प्रतिद्वन्त्री पात्र को प्रतिनायक कहा जाता है। प्रासंगिक कथा का नायक पीठ मर्द कहलाता है। नाटक में हास्य रस का सृजन करने वाले नायक को विदूषक की संज्ञा दी जाती है।

नाटक की विशेषता इस बात में होती है कि उसमें कम से कम पात्र हों, उसका कम-से-कम विस्तार हो परन्तु पात्रों का चरित्र उभरकर सामने आए और कथानक अपने में पूर्ण प्रतीत हो। नाटक में पात्रों के चरित्रों की व्याख्या नहीं की जाती। नाटक के किसी भी पात्र के चरित्र का मूल्यांकन उसके कार्यों, कथनों और स्वगत कथनों अथवा उसके बारे में अन्य पात्रों के बीच हुई वार्तालाप के आधार पर ही किया जाता है। नाटककार की सफलता इस बात पर बहुत कुछ आधारित होती है कि वह पात्रों के चरित्र-चित्रण में यथा परिस्थितियों का सृजन किस सीमा तक कर पाता है।

पाश्चात्य समीक्षकों के अनुसार संकलन त्रय का ध्यान रखना आवश्यक तत्व समझा जाता है। इसमें स्थान- संकलन, काल-संकलन और वस्तु-संकलन होता है। नाटक में यदि अनेक स्थानों विभिन्न कालों और विविध वस्तुओं के प्रदर्शन की चेष्टा की जाती है तो अभिनय संतुलित एवं सुविधाजनक नहीं रह पाता। भारतीय चिंतक भी इन बालों से अनभिज नहीं हैं। अंकों और दृश्यों को सीमा निश्चित करने का प्रयास इसका प्रमाण है।

4.3.3 शैली

संस्कृत भाषा के आचार्य नाटक के भाषा तत्व और ऑग्ल भाषा के आचार्य उसके शैली तत्व पर विशेष बल देते हैं। इस सन्दर्भ में हमारा यह निवेदन है कि शैली का मुख्य आधार शब्द होता है। शब्द ही वाक्यों में सार्थक रूप धारण कर भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। तब भाषा-शैली को एक ही तत्त्व के रूप में स्वीकार करना चाहिए। अधिकतर विद्वान इस मत के मानने वाले हैं कि नाटकों में बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु हमें तो प्रसाद के विशुद्ध भाषा में लिखे नाटकों को पढ़ने में सामान्य भाषा में लिखे नाटकों की अपेक्षा अधिक आनन्द आता है।

4.3.4 संवाद

संवाद नाटक के प्राण है। नाटक में कथावस्तु को संवाद शैली में ही प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी कोई बात सबको सुनने के लिए या किसी विशिष्ट व्यक्तियों को सुनाने के लिए कही जाती है तो कभी-कभी किसी को सुनाने के लिए नहीं केवल चिंतन, मनन या संगत ही होती है। इसी आधार पर संवाद तीन प्रकार के होते हैं— 1. सर्व श्रव्य, 2. नियत श्रव्य, 3. अश्रव्य

जिस बात को पात्र सबके सामने कहता है उसे श्राव्य कथन कहते हैं, जो बात वह स्वयं से कहता है उसे अश्राव्य कथन कहते हैं और जो बात कुछ के सुनने योग्य हो और अन्य के नहीं उसे नियतश्राव्य कथन कहते हैं। नाटक की विशेषता इसमें निहित होती है कि उसका प्रत्येक पात्र,

चाहे अपनी बात सबसे कहे, चाहे केवल अपने आप से कहे और चाहे कुछ व्यक्तियों से कहे, परन्तु कम से कम शब्दों में कहे। कथोपकथन उसी स्थिति में प्रभावशाली होता है जब वह बोलचाल की भाषा में प्रवाहपूर्ण ढंग से चलता है। उसका प्रत्येक शब्द संतुलित होना चाहिए, उससे स्थिति का स्पष्ट आभास होना चाहिए और पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन होना चाहिए। उत्तम कथोपकथन की एक कसौटी यह भी होती है कि यह कथानक के विकास में सहायक हो।

4.3.5 अभिनय

अभिनय नाटक का प्रधान तत्त्व है। यदि किसी नाटक को रंगमंच पर अभिनय द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तो फिर उसे नाटक नहीं कहा जा सकता। नाटक गद्य की अन्य विधाओं से इसी अर्थ में भिन्न होता है कि उसे रंगमंच पर उसी रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अतः आवश्यक है। कि नाटकों में दृश्यादि का स्पष्ट वर्णन हो और पात्रों के रंग-रूप और वेश-भूषा आदि का स्पष्ट उल्लेख हो।

यह भी आवश्यक है कि इन दृश्यादि को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सके और उस प्रकार के रंग-रूप के पात्र एवं उनकी वेश-भूषा उपलब्ध हो अथवा उपलब्ध की जा सके। पात्रानुकूल वेश-भूषा, भाषा एवं आचरण से अभिनय सजीव हो जाता है. अतः नाटकों में इन सबका निर्वाह भी होना आवश्यक होता है।

अभिनय प्रदर्शन हेतु विशिष्ट स्थान को आवश्यकता होती है दो भागों में विभक्त किया जाता है- एक वह स्थान है जहाँ पर अभिनय किया जाता है और दूसरा वह जहाँ बैठकर दर्शक अभिनय देखते हैं। उनमें प्रथम को रंगमंच एवं द्वितीय को पेक्षागृह कहते हैं।

4.3.6 उद्देश्य

पाश्चात्य समालोचक नाटक के उद्देश्य तत्त्व पर विशेष बल देते हैं। उनका स्पष्टीकरण है कि नाटककार पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करने के उद्देश्य से नाटक नहीं लिखता अपित उसके माध्यम से वह कुछ मूल्यों एवं आदर्शों को प्रस्तुत करता है। संस्कृताचार्यों का इस सम्बन्ध में अलग ही मत है। उनका कहना है कि नाटक का मूल उद्देश्य पाठक, श्रोता अथवा दर्शक के हृदय में किसी रस विशेष का संचार करना होता है। इसीलिए नाटक के जिस तत्त्व को हम उद्देश्य कहते हैं, उसे वे रस कहते हैं। इस सम्बन्ध में हमें यह कहना है कि नाटक का उद्देश्य चाहे पाठक, श्रोता अथवा दर्शक के हृदय में किसी रस का संचार करना हो, अथवा उनके सामने मूल्य एवं आदर्शों को प्रस्तुत कर उनके आचरण को प्रभावित करना हो अथवा कोई अन्य उद्देश्य हो परन्तु उसकी प्राप्ति में नाटककार को जितनी अधिक सफलता मिलेगी, नाटक उतना ही अधिक सफल माना जाएगा।

4.4 सारांश

नाटक मानव के लिए बड़ी उपयोगी वस्तु है। साहित्य की विधा के रूप में इनका अध्ययन करने में आनन्द प्राप्ति के साथ-साथ मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान होता है और उससे अनायास कुछ शिक्षाएँ भी प्राप्त होती हैं। जब उसका अभिनय रंगमंच पर

किया जाता है तो उसकी यह उपयोगिता और बढ़ जाती है। इससे शिक्षित और अशिक्षित सभी दर्शकों का मनोरंजन होता है। मनोरंजन के साथ-साथ उन्हें हितकारी उपदेश भी मिलते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप भलीभाँति यह जान चुके हैं नाट्य तत्वों का नाटक में क्या स्थान है। नाट्य की कथावस्तु पंच सन्धियों के अर्न्तगत गुँथी हुई होती है। नाटक की रचना करने से पहले ही नाटककार कथा के आदि-अन्त तथा नाट्य के फल का निश्चय करके नाटक की कथा को पाँच सन्धि रूप भागों में विभक्त कर लेता है। प्रत्येक सन्धि में अर्थ प्रकृति तथा कार्यावस्था का संयोग होता है। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श,अवमर्श तथा निर्वहण इन पांच सन्धियों के कुल 64 अंग होते हैं, जिनका नाटककार को यथासाध्य अपने नाटकों में प्रयोग करना चाहिए। इस इकाई के अध्ययन से आप नाट्यसन्धियों द्वारा नाटकीय इतिवृत्त के कलेवर निर्माण की प्रक्रिया को भली प्रकार समझकर अभिव्यक्त कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. बहुविकल्पीय

1. धनंजय के पूर्ववर्ती आचार्यों ने नृत्य के कितने भेद माने हैं ?

(क) आठ (ख) नौ

(ग) छः (घ) सात

2. शास्त्रीय परम्परा पर आधारित नृत्य को क्या कहा जाता है ?

(क) देशी (ख) अपमार्ग

(ग) मार्ग (घ) उन्मार्ग

3. नृत्त किस पर आश्रित होता है ?

(क) रस पर (ख) भाव पर

(ग) ताल एवं लय पर (घ) इनमें से किसी पर नहीं

4. मुख सन्धि के कितने अंग होते हैं ?

(क) दस (ख) ग्यारह

(ग) बारह (घ) तेरह

5. मुख सन्धि में किस अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्था का संयोग होता है ?

(क) बीज एवं आरम्भ (ख) बीज एवं प्रयत्न

(ग) बीज एवं प्राप्त्याशा (घ) बीज एवं नियताप्ति

6.प्रतिमुख सन्धि के कुल कितने अंग कहे गए हैं ?

(क) ग्यारह (ख) बारह

(ग) तेरह (घ) चौदह

7.पताका किस सन्धि में हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती ?

(क) मुख (ख) प्रतिमुख

(ग) निर्वहण (घ) गर्भ

8.निर्वहण सन्धि के कुल कितने अंग होते हैं ?

(क) तेरह (ख) चौदह

(ग) पन्द्रह (घ) सोलह

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. मुख सन्धि का पहला अंग...कहलाता है।
2. नृत्य शब्द की निष्पत्ति...................................धातु से मानी जाती है।
3. नृत्य में .....का अनुकरण किए जाने के कारण इसे मार्ग भी कहा जाता है।
4. ....नृत्यं।
5.ताललयाश्रयं................................
6. प्रतिमुख सन्धि में.......नामक अर्थप्रकृति तथा ....नामक।
7. कार्यावस्था का योग होता है।
8. निर्वहण सन्धि के अन्त में................................रस होना चाहिए।
9. तृतीय सन्धि ....होती है।

3. सत्य/असत्य का चयन कीजिए।

1. नृत्य रस पर आश्रित होता है।
2. नृत्त में ताल एवं लय पर आश्रित अंग विक्षेप होता है।
3. नाटक में आठ सन्धियाँ मानी गई हैं।
4. निर्वहण सन्धि के अंतिम दो अंग काव्यसंहार एवं प्रशस्ति हैं।
5. अवमर्श में नियताप्ति नामक कार्यावस्था होती है।
6. तोटक एवं अधिबल प्रतिमुख सन्धि के अंग हैं।
7. आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम ये पांच कार्यावस्थाएँ होती हैं।
8. अवमर्श सन्धि के ग्यारह अंग कहे गए हैं।

4. अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य किसके भेद हैं ?
2. नृत्त के दो भेद कौन से हैं ?
3. नृत्य और नृत्त में क्या अन्तर है ?
4. नृत्त को क्या कहा जाता है।
5. धनंजय के अनुसार निर्वहण सन्धि में कौन सी अर्थप्रकृति तथा कौन सी कार्यावस्था होनी चाहिए।
6. संस्कृत नाटकों में निर्वहण सन्धि के अन्तिम अंग प्रशस्ति को क्या कहा जाता है।
7. नाटक में पंच सन्धियों के कुल कितने अंग माने गए हैं।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

सन्धि: सन्धि शब्द का अर्थ है संयोग या जोड़। नाट्य के प्रसंग सन्धि को इस तरह समझा जा सकता है- किसी रूपक में कई कथांश होते हैं। उनके अपने भिन्न-भिन्न प्रयोजन होते हैं। वे

काथांश नाटक के प्रमुख प्रयोजन के साथ अन्वित होने के साथ ही किसी अवान्तर प्रयोजन के साथ भी अन्वित होते हें। एक कथांश का प्रमुख प्रयोजन तथा अवान्तर प्रयोजन से एक साथ आन्वित होना ही सन्धि है।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बहुविकल्पीय:

1. ख
2. ग
3. ग
4. ग
5. क
6. ग
7. घ
8. ख

2. रिक्त स्थान पूर्ति:

1. उपक्षेप
2. नृत्
3. शास्त्रीय परम्परा
4. भावाश्रयं
5. नृत्तं
6. बिन्दु, प्रयत्न
7. अद्भुत
8. गर्भ सन्धि

3. सत्य/असत्य:

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. असत्य

4. अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. चौसठ

2. नृत्य के
3. मधुर एवं उद्धत नृत्त
4. नृत्य 'भावाश्रित' तथा नृत्त काललयाश्रित है, यही दोनो में अन्तर है।
5. देशी
6. कार्य, फलागम
7. भरतवाक्य

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी।
2. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, साहित्यभंडार, मेरठ।
3. धनंजय, दशरूपक, व्याख्याकार, डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
4. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु. डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
5. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत् अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भंडार, मेरठ।
6. भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डा0 ब्रजबल्लभ मिश्र, उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद।
7. दशरूपकम्, श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2000।
8. नाट्यशास्त्र, डा0 बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चैखम्भा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी, 1983।

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सन्धि का सामान्य लक्षण देते हुए स्पष्ट कीजिए कि धनंजय ने सन्धियाँ कितनी तथा कौन-कौन सी बताई हैं।
2. सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप क्या है।
3. नाट्य तत्वों का परिचय दिजिए।

इकाई 5. रूपक के भेद

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 रूपक भेद परिचय
5.3.1 नाटक
5.3.2 प्रकरण
5.3.3. भाण
5.3.4 प्रहसन
5.3.5 डिम
5.3.6 व्यायोग
5.3.7 समवकार
5.3.8 वीथि
5.3.9 अंक
5.3.10 ईहामृग
5.4 उपरूपक परिचय
5.5 नाटिका परिचय
5.6 सारांश
5.7 पारिभाषिक शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाट्य साहित्य से सम्बन्धित यह पंचम इकाई है। यह इकाई 'रूपक के भेदों पर आधारित है। इस इकाई में रूपकों के आधारभूत तत्वों के विषय में चर्चा की गई है। 'वस्तु नेता एवं रस' इन तीन भेदक तत्वों के आधार पर संस्कृत के नाट्याचार्यों द्वारा मान्य रूपक के दस भेदों का लक्षण तथा स्वरूप क्या होता है ? एतद्विषयक धनञ्जय के विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्य के दस प्रकारों-नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग समवकार, वीथि, अंक और ईहामृग के साथ-साथ प्रमुख उपरूपक भेद, नाटिका के लक्षणों को भलीभाँति जान सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- रूपक के भेदक तत्त्व कौन-कौन से हैं। रूपक किस पर आश्रित होते हैं तथा कितने प्रकार के हैं ? इनकों जान सकेंगे।
- 'नाटक' की विशेषताओं से परिचित को सकेंगे।
- उपरूपक कौन-कौन से हैं ? इस विषय से अवगत हो सकेंगे।
- 'नाटिका' की क्या विशेषताएँ होती हैं ? इसे जानेंगे।

5.3 रूपक भेद परिचय

रूपक के भेद—

संस्कृत साहित्य में काव्य के दो भेद बताये गए हैं- दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। इनमें से अभिनयपूर्वक रंगमंच पर प्रदर्शित किए जाने से हमारे नेत्रों का विषय बनने वाले नाटकादि दृश्य काव्य कहलाते हैं। इस दृश्य काव्य को नाट्य, रूप एवं रूपक भी कहा जाता है, जो इसकी अलग विशेषताओं पर आधारित भिन्न-भिन्न नाम हैं। **'अवस्थानुकृतिर्नाट्म'** अभिनय करने वाले पात्र (नट आदि) के द्वारा राम, दुष्यन्त आदि नायक तथा सीता, शकुन्तला आदि नायिकाओं की सुख-दुख, हर्ष-शोक आदि अवस्थाओं का, अपने अभिनय कौशल से अनुकरण किया जाना ही नाट्य कहलाता है। नाट्य का अर्थ है अभिनय। अतः अभिनेय होने के कारण नाटकादि को नाट्य कहा जाता है। **'रूपं दृश्यतयोच्यते'** वह नाट्य ही अभिनय द्वारा रंगमंच पर प्रदर्शित होने से हमारे नेत्रों के लिए दर्शनीय होता है। इसीलिए इसी को रूप भी कहा जाता है। जैसे कि प्रकृति में नीला, पीला, लाल, हरा आदि पदार्थ (वस्तुएँ) नेत्रों से देखे जाने के कारण रूप है वैसे ही नाटकादि भी नेत्र ग्राह्य होने के कारण रूप कहलाता है। 'रूपक तत्समारोपात्' रंगमंच पर राम आदि का अभिनय करने वाले पात्र (नट) में सहृदय जन राम आदि का आरोप कर लेते हैं अर्थात् उसे राम आदि ही समझने लगते हैं। नट पर राम आदि का आरोप किए जाने के कारण जो

पहले नाट्य और रूप कहा गया है वही रूपक भी कहलाता है। इस तरह नेत्रों का विषय बनने से जो काव्य दृश्य काव्य रूप है वही अभिनेयता के कारण नाट्य और रूपक भी है।

आपकी जानकारी में होगा कि रूपक अनेक तरह के होते हैं। दशरूपककार धनंजय ने **"वस्तुनेता रसस्तेषां भेदक:"** कहकर वस्तु, नेता एवं रसभेद के आधार पर रूपक के दस भेदों का निरूपण किया है। **'दशधैव रसाश्रयम्'** से धनंजय ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि रूपक रस पर आश्रित होते हैं और इनकी संख्या दस ही है। तात्पर्य यह है कि शुद्ध रूप में दस प्रकार का ही नाट्य होता है जो कि रसाश्रित होता है। जहाँ रसों का संकर होता है वह शुद्ध रूपक न होकर संकीर्ण रूपक या उपरूपक कहलाता है। रस पर आधारित दस रूपक इस प्रकार इंगित किए गए हैं-

नाटकं सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम:।
व्यायोग समवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा: इति।।"

नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथि अंक और ईहामृग ये दस रूपक भेद

कहे गए हैं। इन दश रूपकों का समीक्षात्मक विववरण इस प्रकार है:-

5.3.1 नाटक

नाटक को सभी रूपकों की प्रकृति कहा जाता है। क्योंकि यह सभी रूपकों में प्रमुख है। इसमें रसों की प्रचुरता होती है। रूपक के सभी लक्षण वस्तु नेता, एवं रस सम्बन्धी नाटकों में पाए जाते हैं। नाटक के प्रारम्भ में पूर्वरंग (मंगलाचरण) आदि का विधान किया जाता है। तत्पश्चात् प्रस्तावना के बाद नाटक का अभिनय अंकों के अर्न्तगत किया जाता है। नाटक का कथानक प्रख्यात अर्थात् इतिहास (रामायण, महाभारत, पुराणादि) से उद्धृत होता है। इसका नायक रमणीय गुणों से युक्त तथा प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुआ कोई राजा (राजर्षि) या दिव्य पुरूष होता है। उसे धीरोदात्त पराक्रमी, यश की अभिलाषा करने वाला, उत्साह सम्पन्न कृष्णादि की तरह दिव्य, रामादि की तरह दिव्यादिव्य दुष्यन्तादि की तरह अदिव्य होना चाहिए। नाटक का इतिवृत्त बनने वाली प्रख्यात कथा में यदि कोई अंश नायक की धीरोदात्तता की दृष्टि से या रसानुभूति की दृष्टि से अनुचित हो तो उसे हटा देना चाहिए या उसकी दूसरे प्रकार से कल्पना कर ली जानी चाहिए। नाट्यारम्भ से पूर्व यदि कोई वृतान्त ऐसा हो जिसे रंगमंच पर दिखाना संभव न हो किन्तु दर्शकों के लिए उसे जानना जरूरी हो तो अंकों से पहले विष्कम्भक की योजना करके उसकी सूचना दी जानी चाहिए।

कथानक के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ-बीज बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य तथा पाँच कार्यावस्थाएँ-आरम्भ, प्रयत्न या यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम होने चाहिए।

क्रमशः एक-एक अर्थ प्रकृति के क्रमशः एक एक कार्यावस्था के साथ होने वाले संयोग से पाँच सन्धियाँ मुख (बीज+आरम्भ), प्रतिमुख (बिन्दु+प्रयत्न), गर्भ (पताका+प्राप्त्याशा), विमर्श अथवा अवमर्श (प्रकरी+नियताप्ति) तथा निर्वहन (कार्य+फलागम)

हैं। पताका एवं प्रकरी का नाटक में होना अनिवार्य नहीं है। इसलिए गर्भ एवं विमर्श सन्धि में ये हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती है। नाटक में कभी भी कथा के मुख्य नायक का वध नहीं दिखाया जाना चाहिए। यह तथ्य संस्कृत नाटकों की सुखान्तता को इंगित करता है। नाटक का विभाजन अंकों में होना चाहिए तथा इसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए।

5.3.2 प्रकरण

प्रकरण की कथा ऐतिहासिक न हो कर कवि की कल्पना से निर्मित एवं साधारण जन के जीवन पर आधारित होती है। इसका नायक मन्त्री, ब्राह्मण या वणिक् (वैश्य/व्यापारी) में से कोई एक होता है। वह धीर प्रशान्त कोटि का होता है तथा सदैव धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि के लिए तत्पर रहता है। उसकी कार्यसिद्धि अनेकानेक विघ्नों से बाधित होती है। इस रूपक भेद में श्रंगार अथवा वीर में से कोई एक अंगी रस होता है तथा अन्य रस गौण रूप में होते हैं। इसमें पाँच अर्थ प्रकृतियाँ, पंच कार्यवस्थाएँ, पंच सन्धियाँ तथा अंक संख्या, नाटक की तरह ही होती है। नायिका की दृष्टि से प्रकरण तीन तरह का होता है एक कुलजनिष्ठ, जिसमें केवल कुलजा (कुलीन वंशोत्पन्न) नायिका होती है। दूसरा जिसमें केवल गणिका नायिका होती है और तीसरा जिसमें कुलजा और गणिका दोनों ही नायिकाएँ होती हैं।

5.3.3 भाण

भाण नामक रूपक भेद में कोई चतुर तथा बुद्धिमान (पण्डित) विट अपने या दूसरे के अनुभव के आधार पर किसी धूर्त के चरित्र का वर्णन करता है। भाण में एक ही अंक तथा (विट) एक अकेला पात्र होता है। वह विट आकाश भाषित के द्वारा स्वयं ही सम्बोधन और उत्तर प्रत्युत्तर करते हुए कथा को आगे बढ़ाता है। इस रूपक में शौर्य एवं सौभाग्य (विलासादि) के वर्णन से वीर तथा श्रृंगार रस की सूचना विट के द्वारा दी जाती है। इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होती है। इसकी कथावस्तु कविकल्पित होती है। इसमें मुख तथा निर्वहण ये दो संधियाँ अंगों सहित होती है। साथ ही लास्य के दस अंगों की योजना भी इसमें होती है।

5.3.4 प्रहसन

हास्य रस प्रधान प्रहसन की कथावस्तु कवि कल्पित होती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसमें एक या दो अंक होते हैं। अन्य आचार्य इसे भाण की तरह एकांकी मानते है। प्रहसन तीन प्रकार का होता है शुद्ध, विकृत और संकीर्ण। पाखण्डी कहलाने वाले धूर्त विप्र, एवं धूर्त दास-दासी आदि के चरित्र, वेश तथा भाषादि से युक्त प्रहसन शुद्ध प्रहसन है। कामुक की तरह वेश वाले तथा वैसी ही भाषा बोलने वाले नपुंसक, कंचुकी, तपस्वी आदि पात्रों का समावेश जिस प्रहसन में हो वह विकृत प्रहसन तथा धूर्त पात्रों के चरित्रांकन से युक्त प्रहसन संकीर्ण प्रहसन कहलाता है। यह रूपक हास्य उत्पन्न करने वाले कथनों से परिपूर्ण होता है। इसका नायक बौद्ध भिक्षु, शैव सन्यासी, तपस्वी या गृहस्थ हो सकता है। उसके परिहास पूर्ण संवादों से दर्शकों में हास्य उत्पन्न होता है। प्रहसन में मिथ्या आचरण करने वाले नायक को

सुसंस्कृत भाषा में सभ्य जन की तरह बोलते हुए दिखाया जाता है। यहाँ नाटकीय कथानक के कुछ अंश में विशेष भाव को प्रकट करते हैं तथा शेष अंश में मिथ्याचारी नायक के जीवन के उन अंशों को दिखाया जाता है जिनका उपहास करना यहाँ लक्षित होता है। यह एक अंक वाला रूपक है। इसमें भी मुख तथा निर्वहण दो सन्धियाँ होती है। यहाँ वेशभूषा तथा भाषा की विकृति से हास्य उत्पन्न होता है।

5.3.5 डिम

डिम की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसमें स्त्री पात्रों के अभाव में कैशिकी वृत्ति को छोड़कर सात्त्वती, आरभटी और भारती ये तीन वृत्तियाँ होती हैं। इसके नेता देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस तथा नाग आदि मानवेत्तर योनि के लोग होते हैं अथवा भूत, प्रेत, पिशाच आदि सोलह उद्धत नायक इसमें होते है। इसमें रौद्र रस अंगीरस होता है तथा श्रृंगार एवं हास्य को छोड़कर अन्य रस (करूण, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत) अंग रूप में होते हैं। यह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त (उन्मत्त) आदि की चेष्टाओं तथा सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि के दृश्यों से युक्त होता हैं। इस रूपक में चार अंक होते है। इसमें मुख, प्रतिमुख, गर्भ तथा निर्वहण ये चार संधियाँ होती हैं।

5.3.6 व्यायोग

व्यायोग का इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है। इसका नायक कोई इतिहास प्रसिद्ध उद्धत व्यक्ति होता है। इसमें मुख प्रतिमुख और निर्वहण ये तीन संधियाँ तथा श्रृंगार एवं हास्य के अलावा अन्य छः रस (करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत) दीप्त होते हैं। इसमें ऐसे युद्ध का वर्णन होता है जिसके मूल में कोई स्त्री कारण न हो। जैसे- 'जामदग्न्य जय' नामक व्यायोग में प्रसिद्ध उद्धत नायक परशुराम ने पितृवध के कारण क्रोधित होकर सहस्रबाहु से युद्ध किया है। यह रूपक एक अंक का ही होता है, जिसमें एक ही दिन की कथा वर्णित होती है। कैशिकी वृत्ति को छोड़कर सात्वती, आरभटी और भारती रूप तीन वृत्तियाँ इसमें होती। व्यायोग नामक रूपक भेद में पुरूष पात्रों की ही बहुलता होती है।

5.3.7 समवकार

देवों और असुरों से सम्बद्ध पुराण प्रसिद्ध कथा ही समवकार का इतिवृत्त होता है। इसमें सात्वती, आरभटी, भारती ये तीन वृत्तियाँ होती हैं। कौशिकी वृत्ति इसमें स्वल्प रूप में होती है। इसमें बारह नायक होते हैं जो इतिहास प्रसिद्ध देवता और दावन होते हैं। इन सभी नायकों की फलसिद्धि भी पृथक होती है। ये सभी नायक वीर रस से पूर्ण होते हैं। जैसे समुद्रमन्थन में परिलक्षित होते हैं। समवकार में तीन अंक होते हैं प्रत्येक अंक में क्रमशः तीन प्रकार का कपट (वस्तुकृत, स्वभावकृत और दैवकृत) तीन प्रकार का विद्रव (नगरोपरोध युद्ध तथा वायु, अग्निकृत) तथा तीन प्रकार का श्रृंगार (धर्म, अर्थ एवं काम से युक्त श्रृंगार) होता है। इसमें बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक नही होता।

5.3.8 वीथि

यह रूपक भेद भी एकांकी है। वीथि में कैशिकी वृत्ति होती है। इसमें श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक न होने के कारण वह बहुत से उपायों द्वारा केवल सूच्य मात्र होता है। अन्य रसों का भी स्वल्प मात्रा में स्पर्श किया जाता है अर्थात् अन्य रस भी इसमें सूचित मात्र होते हैं। इसमें मुख एवं निर्वहण नामक दो संधियाँ होती हैं। यह प्रस्तावना के उद्धात्यक आदि अंगों से युक्त होती है। वीथि के 13 अंग होते है। इसमें पात्र संख्या एक या दो ही होती है।

5.3.9 अंक

नाटक के अन्तर्विभाग (अंक) तथा इस रूपक भेद में किसी प्रकार का संशय न हो इसलिए इस रूपक भेद का दूसरा नाम 'उत्सृष्टिकांक' कहा जाता है। उत्सृष्टिकांक की कथावस्तु तो इतिहास प्रसिद्ध होती है किन्तु प्रख्यात कथा को ग्रहण करते हुए भी कवि अपने बुद्धि वैभव से उसमें परिवर्तन कर लेता है। इसका अंगी रस करूण रस है। इसके नायक सामान्य जन होते हैं। इसमें मुख एवं निर्वहण संधि एवं भारती वृत्ति तथा उसके अंगों की योजना की जाती है। इसमें एक ही अंक होता है। करूण रस प्रधान होने के कारण यह रूपक भेद स्त्रियों के विलाप से युक्त होता है। अर्थात् इसमें शोकग्रस्त विह्वल स्त्रियों का विशेष रूप से चित्रण होता है। इसमें वाक् युद्ध तथा मौखिक जय-पराजय का वर्णन किया जाता है। कोई-कोई आचार्य इसमें एक से तीन तक अंको का विधान करते हैं।

5.3.10 ईहामृग

मृग की तरह अलभ्य (अप्राप्य) किसी नायिका की ईहा (अभिलाषा) के वर्णित होने के कारण ही इस रूपक भेद को ईहामृग कहा जाता है। इसका इतिवृत्तइतिहास तथा कवि कल्पना का मिश्रित रूप होता है। इसमें चार अंक तथा मुख, प्रतिमुख, निर्वहण रूप तीन सन्धियाँ होती हैं। इसमें देवता तथा मनुष्य में से कोई एक नायक तथा दूसरा प्रतिनायक होता है। वे धीरोदात्त कोटि के होते हैं। इसमें प्रतिनायक भ्रमात्मक एवं विपरीत बुद्धि के कारण अनुचित कार्य करने वाला होता है। वह किसी दिव्य स्त्री (जो उससे प्रेम नही करती) का अपहरण करना चाहता है। ऐसी स्थिति में कवि उस प्रतिनायक के आश्रय से श्रृंगाराभास का कुछ कुछ वर्णन इस रूपक में करता है। नायक प्रतिनायक का विरोध पूर्णता पर पहुँच कर भी किसी न किसी बहाने से इसमें युद्ध को रोक दिया जाता है। प्रतिनायक के वध की स्थिति आ जाने पर भी उसका वध टाल दिया जाता है। रूपक के मूल कथानक में महापुरूष के वध का वर्णन भले ही अंकित हो, किन्तु रूपक में उसे कदापि प्रदर्शित नही किया जाता है अर्थात् इसके इतिवृत्त में प्रतिनायक का वध नहीं दिखाया जाता।

5.4 उपरूपकों का परिचय

इन दस रूपकों के अलावा नाट्याचार्यो ने अट्ठारह उपरूपक भेद भी बताए हैं जो इस प्रकार हैं - 1. नाटिक 2. त्रोटक 3. गोष्ठी 4. सट्टक 5. नाट्यरासक 6. प्रस्थानक 7. उल्लास्य 8.

काव्य 9. प्रखण 10. रासक 11. संलापक 12. श्रीगदित 13. शिल्पक 14. विलासिका 15. दुर्माल्लिका 16. प्रकरणिका 17. हल्लीश 18. भाणिका इनमें से नाटिका, त्रोटक, सट्टक, रासक एवं भाणिका ही प्रमुख है। दशरूपककार धनंजय ने दशरूपकम मे अन्य संकीर्ण या उपरूपक भेदों का निराकरण करने के लिए केवल नाटिका का लक्षण मात्र दे दिया है जो निम्न प्रकार है-

5.5 नाटिका परिचय

नाटिका की कथावस्तु प्रकरण नामक रूपक भेद के समान अर्थात् कवि कल्पित होती है। इसका नायक नाटक के समान कोई राजा होता है। इस तरह नाटिका में नाटक एवं प्रकरण के लक्षणों का मिश्रण होने से यह संकीर्ण रूपक है। इसे प्रमुख उपरूपक माना गया है। इसका नायक प्रख्यात एवं धीर ललित कोटि का होता है। नाटिका का अंगीरस श्रृंगार होता है। नाटिका में कैशिकी वृत्तितथा स्त्री पात्रों की बहुलता होती है। इसमें चार अंक होते हैं तथा प्रत्येक अंक में कैशिकी वृत्ति के चार अंग नर्म, नर्मस्फिंज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ क्रमशः होते हैं अर्थात् प्रत्येक अंक में क्रमशः एक-एक अंग होता है।

नाटिका में दो नायिकाएँ होती हैं जेष्ठा एवं कनिष्ठा। ज्येष्ठा राजवंश में उत्पन्न हुई, प्रगल्भा, गम्भीरा तथा मानिनी होती है। उसी के अधीन होने के कारण कनिष्ठा नायिका के साथ नायक का मिलन बड़ी कठिनाई से होता है। कनिष्ठा नायिका भी राजवंश में उत्पन्न कोई राजकन्या तथा मुग्धा अर्थात् नवयुवती तथा नवीन कामभाव वाली होती हैं। नायक के अन्तःपुर में वास अथवा संगीत आदि के संबन्ध से वह नायक के निकट होती है। उस नवीन नायिका के विषय में सुनकर अथवा उसे देखकर नायक का उसके प्रति उत्तरोत्तर नवीन अनुराग होता है। इसमें नायक देवी अर्थात् ज्येष्ठा नायिका के भय से शंकापूर्वक नवीन नायिका की ओर प्रवृत्तहोता है। हर्ष द्वारा रचित 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' नाटिका के उदाहरण है ।

5.6 सारांश

दृश्य काव्य वह है जो दर्शनीय हो। कोई काव्य दर्शनीय तभी हो सकता है जबकि उसे रंगमंच पर पात्र (नट) अपने अभिनय द्वारा प्रस्तुत करें। इस तरह अभिनेयता रूप विशेषता के कारण ही दृश्य काव्य को नाट्य, रूप एवं रूपक की संज्ञा भी दी जाती है। रूपक रसाश्रित होते हैं। इनकी संख्या दस मानी गई है। नाटिका आदि की गणना रूपक में न करके उपरूपकों के अन्तर्गत की गई है। नाटक को सभी रूपकों की 'प्रकृति' अर्थात मूल माना जाता है। इसमें नाट्य के सभी प्रमुख तत्वों वस्तु, नेता एवं रस का सांगोपांग निरूपण होता है। नाटक तथा प्रकरण ही मात्र ऐसे रूपक भेद हैं जिनमें कथावस्तु का विकास पंच अर्थ प्रकृतियों पंच कार्यावस्थाओं तथा पंच संन्धियों के आयोजन के साथ होता है। रूपकों के वे भेद, जो एक, दो या तीन अंक वाले होते है अभिनय में सुविधाजनक होते है। इनमें पात्र संख्या कम होती है। अतः इनके आयोजन हेतु अधिक तामझाम की जरूरत नहीं होती। कतिपय रूपक भेद समाज के कुत्सित रूप पर व्यंग्य करने या हास्योत्पादक होने के कारण बेहद लोकप्रिय रहे हैं। 'प्रहसन' तो आज भी 'कॉमेडी' के रूप में रंगमंच की लोकप्रिय विधा है। इसी तरह प्रकरण भी अत्यन्त लोकप्रिय नाट्य विधा है।

शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' पर बनी फिल्म 'उत्सव' प्रकरण नामक रूपक भेद की लोकप्रियता को दर्शाता है। नाटक के विषय में तो कहा ही गया है **"काव्येषु नाटकं रम्यं।"**इनके अलावा नाटिका एक ऐसा उपरूपक भेद है जो नाटककारों को विशेष प्रिय रहा है। अतः दस रूपकों के अर्न्तगत न गिने जाने पर भी हमने उसका लक्षण निरूपण इकाई में किया है।

अभ्यास प्रश्न—

1.बहुविकल्पीय प्रश्न:

प्रश्न 1. दशरूपकम् का विभाजन किसमें है?

(क) सर्ग (ख) उच्छवास

(ग) उल्लास (घ) प्रकाश

प्रश्न 2.दशरूपकम् में कुल कितने विभाग है?

(क) चार (ख) आठ

(ग) बारह (घ) सोलह

प्रश्न 3.धनंजय के अनुसार सर्वप्रमुख रूपक भेद कौन सा है?

(क) प्रकरण (ख) नाटिका

(ग) नाटक (घ) प्रहसन

प्रश्न 4.नाटक का नायक कैसा होना चाहिए?

(क) धीरललति (ख) धीरशान्त

(ग) धीरोदात्त (घ) धीरोद्धत

प्रश्न 5.कुलजनिष्ठ, गणिकानिष्ठ एवं उभयनिष्ठ निम्नलिखित में से क्या होता है?

(क) भाण (ख) प्रकरण

(ख) नाटक (घ) वीथि

प्रश्न 6.शुद्ध, विकृत एवं संकीर्ण किसके भेद हैं?

(क) प्रकरण के (ख) भाण के

(ग) प्रहसन के (घ) डिम के

प्रश्न 7.समवकार का इतिवृत्त कैसा होता है?

(क) प्रख्यात (ख) उत्पाद्य

(ग) मिश्र (घ) दिव्य

प्रश्न 8.प्रहसन का अंगीरस क्या होता है?

(क) श्रृंगार (ख) हास्य

(ग) करूण (घ) अद्भुत

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

प्रश्न 1. .....रस्तेषां भेदकः।

प्रश्न 2.अंक नामक रूपक भेद का दूसरा नाम .....है।

प्रश्न 3.प्रकरण का नायक विप्र .....या आमात्य में से कोई एक होना चाहिए।

प्रश्न 4.दशधैव.....।

प्रश्न.5.....नाट्य।

प्रश्न 6.रूपकं तत्.....।

3.सत्य/असत्य कथन

1. व्यायोग नामक रूपक में स्त्रीहेतुक युद्धवर्णन होता है।
2. नाटक का अंगीरस वीर अथवा श्रृंगार में से कोई एक होता है।
3. नाटक में चार सन्धियाँ होती है।
4. भाण नामक रूपक में एक ही पात्र 'विट' होता है।
5. नाटिका की गणना उपरूपक में की जाती है।
6. नाटक में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए।
7. प्रकरण का नायक कोई राजा या दिव्य पुरूष होता है।
8. डिम नामक रूपक की कथावस्तु प्रसिद्ध (प्रख्यात) होती है।

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

नाट्य: **"अवस्थानुकृतिर्नाट्यं"** काव्य के नायक-नायिका (राम-सीता) आदि की सुखःदुख आदि अवस्थाओं का रंगमंच पर नट के द्वारा किया गया अनुकरण ही नाट्य कहलाता है। इस तरह नाट्य शब्द का तात्पर्य है अभिनय, जो इस कुशलता से किया गया हो कि दर्शक को नट तथा राम आदि नायक में तादात्म्य (एकरूपता) की प्रतीति होने लगे।

रूप: 'रूपं दृश्यतोच्चते' नेत्रेन्द्रिय ग्राह्य होने के कारण नाट्य को 'रूप' कहा जाता है। जैसे नीले पीले आदि रंगों से युक्त लौकिक पदार्थ नेत्रों से देखे जाने के कारण रूप है वैसे ही नाटक आदि भी देखे जाने के कारण रूप है।

रूपक: "रूपकं तत्समारोपात्" नाटक आदि में रंगमंच पर रामादि का अभिनय करने वाले नट या पात्र पर दर्शक राम आदि का आरोप कर लेते हैं। अतः जैसे कि रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्र का आरोप होने से रूपक अलंकार होता है वैसे ही नाट्य में नट पर राम आदि का आरोप होने से उसे रूपक भी कहा जाता है।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. धनंजय, दशरूपकम् व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन वाराणासी
2. भरतमुनि, नाटयशास्त्र, अनु0 डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
3. धनंजय, दशरूपकम्, धनिक कृत अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भण्डार मेरठ
4. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, साहित्य भंडार मेरठ
5. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.बहुविकल्पीय:

1. घ 2.क 3. ग 4. ग 5. ख 6. ग 7. ख 8. ख

2.रिक्त स्थान पूर्ति:

1. वस्तुनेता 2. उत्सृष्टिकांक 3. वणिक् 4. रसाश्रयम्
5. अवस्थानुकृतिः 6. समारोपात् 7. तयोच्यते

3.सत्य/असत्य:

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य
5. असत्य 6. सत्य 7. असत्य 8. सत्य

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाट्य किसे कहते हैं ?
2. दशरूपकों के नाम क्या है ? तथा उनके भेदक तत्व क्या माने गए हैं ?
3. दशरूपकम् के अनुसार नाटक का लक्षण क्या है ?
4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए -
    1. डिम
    2. प्रहसन
    3. भाण

तृतीय सेमेस्टर / SEMESTER-III
खण्ड- दो (Section-B)
अभिज्ञानशाकुन्तलम्
प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय अंक

इकाई-1 महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त एवं उनकी काव्यप्रतिभा

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त
    1.3.1 महाकवि कालिदास की काव्य प्रतिभा
    1.3.2 कालिदास की काव्याकला
    1.3.3 उपमा कालिदासस्य
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाट्य साहित्य के खण्ड द्वितीय से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कृत नाट्य साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में परवर्ती कवियों की गणना श्रृंखला में प्रथम स्थान पर गिने जाने वाले कवि कालिदास का परिचय एवं उनकी कृतियों का वर्णन किया जा रहा है।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये नाटक महाकाव्य तथा ज्योतिष परम्परा में भी निष्णात माने गयें है। इन्होंने कुल सात ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें तीन महाकाव्य, तीन नाटक और एक ऋतुसंहार नाम का ग्रन्थ रचा था। इसके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित ज्योतिविदाभरणम् नाम का इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन रचनाओं में जो वैशिष्ट्य है उसी के कारण वर्तमान में भी कालिदास की उतनी ही प्रतिष्ठा है जितनी पूर्व में थी।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप कालिदास रचित ग्रन्थों के संक्षिप्त वर्णन के आधार पर उनकी नाटकीय तथा अन्य साहित्यिक समस्त शैलियों, वर्णन प्रकारों का समुचित प्रयोजन बता सकेंगे। साथ ही यह भी समझा सकेंगे कि मूल रूप से कालिदास किस रीति के समर्थक कवि थे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- कालिदास का परिचय और समय के विषय में जान सकेंगे।
- कालिदास के ग्रन्थों की विशेषताओं का अध्ययन कर लेने में समझ हो सकेंगे।
- मुख्य रूप से कालिदास को किस राजा से सम्बन्धित माना गया है। इस व्यक्त करने में समर्थ हो सकेंगे।
- कालिदास के महाकाव्यों की क्या विशेषतायें है। यह जान सकेंगे।
- उपमा के लिये कालिदास क्यों प्रसिद्ध है। इससे अवगत हो सकेंगे।

1.3 महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त

कालिदास भारतीय तथा पश्चात्य दृष्टियों में संस्कृत के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। नाट्यकला की सुन्दरता निरखिये, काव्य की वर्णनछटा देखिये, गीतिकाव्य के सरस हृदयोद्गारों को पढिये, कालिदास की प्रतिभा सर्वातिशायिनी है। उनके काव्यों की जितनी ख्याति निश्चित है, उनकी जीवनी तथा काल-निरूपण उतना ही अनिश्चित है। कालिदास की जन्मभूमि के विषय में बंगाल तथा कश्मीर के नाम लिये जाते है परन्तु यह अभी तक अनिर्णीत ही है। कवि ने उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात दिखलाया है, जिससे यही इनकी जन्मभूमि प्रतीत होती है। मेघदूत (1/29) में यक्ष रास्ता टेढा होने पर भी 'श्रीविशाला' विशाला (उज्जयिनी) को देखने के लिये मेघ से आग्रह करता है। उज्जयिनी के विशाल

महलों और रमणियों के कुटिल-कटाक्षों को देखने से यदि वह वन्चित रह गया तो उसका जीवन ही निष्फल है। कालिदास ने अवन्ती प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का सूक्ष्म वर्णन मेघदूत में किया है- वहॉ की छोटी-छोटी नदियों का भी नाम – निर्देश किया है तथा वर्णन दिया है। उज्जयिनी के प्रति उनके विशेष पक्षपात तथा सूक्ष्म भौगोलिक परिचय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास वहीं के रहने वाले थे।

कालिदास नि:सन्देह शैव थे। मेरी दृष्टि में वे उज्जयिनी के विख्यात ज्योतिर्लिङ्ग 'महाकाल' के उपासक थे। मेघदूत में महाकाल की उपासनाके प्रति उनका आग्रह इसका आधार माना जा सकता है। महाकालकी शोभा का वर्णन कर यक्ष मेघ से कहता है कि उज्जयिनी में तुम किसी समय चहुँचों, परन्तु सूर्य के अस्त होने तक तुम्हें वहॉ ठहराना होगा। प्रदोष-पूजा के अवसर पर तुम अपना स्निग्ध गम्भीर घोष करना जो महाकाल की पूजा में नगाड़े का काम करेगाऔर तुम्हें अशेष पुण्यों का भाजन बना देगा (मेघ0 श्लोक 35)। इतनाही नहीं, कालिदास मन्दिर में पूजार्थ नियत की गई देवदासियों से परिचय रखते हें। यह प्रथा दक्षिण के मन्दिरों में आज भी प्रचलित है, यद्यपि उत्तर भारत के मन्दिरों में यह विशेष रूप से नही दीख पड़ती। उज्जयिनी उदयन तथा वासवदत्ता के उदात्त प्रेम की क्रीडास्थली थी। फलत: कालिदास ने इस कथा से सम्बद्ध छोटी-छोटी धटनाओं तथा उनके नियत स्थानों का भी उल्लेख कर नगरी के प्रति पूर्ण पक्षपातप्रदर्शित क्रिया है, जो उसे कवि की जन्मभूमि होने का गौरव प्रदान करने में सचेष्ट है।

कालिदास का स्थितिकाल—

महाकवि कालिदास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत है। इनका स्थितिकाल ईसा की छठी शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक माना जाता है। इसका विवरण निम्नलिखित है —

भारतीय जन-श्रुति के आधारपर कालिदासराजा विक्रमादित्य के नव-रत्नों के मुखिया थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है। विश्वविख्यात शकुन्तला का अभिनय किसी राजा की–सम्भवत: विक्रम कि – 'अभिरूपभुयिष्ठा' परिषद् में ही हुआ था। 'विक्रमोर्वशीय' में पुरूरवा के नामक होने पर भी विक्रम का नामोल्लेख नाटक के नाम में है तथा 'अनुत्सेक: खलु विक्रमालङ्कार' आदि वाक्य इस सिद्धान्त की पुष्टिकर रहे है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। 'रामचरित' महाकाव्य के 'ख्यातिकामपि कालिदासकवयो नीता: शकारतिना' आदि पद्यो से भी इसी सम्बन्ध की पुष्टि हो रही है। अत: एव जब तक इसके विरूद्ध कोई प्रमाण न मिले, तब तक यह मानना अनुचित नहीं होगा कि कालिदास राजा विक्रम की सभा के रत्न थे।

कालिदास ने शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र को अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक का नायक बनाया है। अत: वे उसके (विक्रम-पूर्व द्वितीय शतक के) अनन्तर होगे। इधर सप्तम् शताब्दी में हर्षवर्धन के सभा – कवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में कालिदास की कविता की प्रशस्त प्रशंसाकी है। अत: कवि का समय विक्रमपूर्व द्वितीय शतक से लेकर विक्रम

की सप्तम् शतक के बीच में कहीं होना चाहिए । कालिदास के समय विषय में प्रधानतया तीन मत है-

1. पहला मत- कालिदास को षष्ठ शतक का बतलाता है।
2. दूसरा मत- गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति मानता है।
3. तीसरा मत- विक्रम सं0 के आरम्भ में इनका समय बतलाता है।

षष्ठशतक में कालिदास—

भारतीय इतिहास में विक्रम उपाधिवाले चार राजाओं का उल्लेख पाया जाता है, जिनके समसामयिक होने से कालिदास का भी समय भिन्न-भिन्न सदियों में माना गया है। डॉक्टर हार्नली का मत है कि यशोधर्मन् ने, जिसने कहरूर की लड़ाई में हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकुल को बालादित्य नरसिंह गुप्त की सहायता से परास्त किया था, 'विक्रमादित्य' की उपाधि भी ग्रहण की थी। अपनी इस महत्वपूर्ण विजय के उपलक्ष्य में उसने नवीन संवत् चलाया, जो विक्रम के नाम से व्यवहृत हुआ, परन्तु इसे 600 वर्ष पूर्व, अर्थात् 58 ईस्वी की विजय-घटना की यादगार में उसने अपने नवीन संवत् के 600 वर्ष अर्थात् 58 ईस्वी पूर्व से स्थापित होने की बात प्रचारितकी विक्रम संवत् की यह नवीन कल्पना डॉक्टर फर्गुसन ने की थी। हार्नली ने इसका उपयोग कालिदास के समय-निरूपण के लिए किया। उसने दिखलाया है कि रघु का दिग्विजय यशोधर्मन् की राज्यसीमा से बिल्कुल मिलता-जुलता है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री [2] ने अनेक कौतुकपूर्ण प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास भारवि के अनन्तर छठी सदी में विद्यमान थे।

इस मत का खण्डन–

कालिदास को इतना पीछे मानना उचित नहीं प्रतीत होता है। हूणों को पराजित करने पर भी यशोधर्मन् 'शकाराति' - शकों का शत्रु नही कहा जा सकता। न उसके शिलालेखों से नवीन संवत् के स्थापना की घटना सच्ची प्रतीत होती है। विक्रम संवत् की स्थापना छठी सदी में यशोधर्मन् के द्वारा मानना ज्ञात इतिहास पर घोर अत्याचार करना है; क्योंकि 'मालव संवत्' के नाम से यह संवत् अति प्राचीन काल में भी प्रसिद्ध था। 473 ई0 के कुमारगुप्त की प्रशस्ति के कर्ता वत्सभट्टि कि रचना में ऋतुसंहार के कितने ही पद्यों की झलक दीख पड़ती है। ऐसी दशा में कालिदास को पॉचवीं सदी के अनन्तर मानना अनुचित है। अत: इस मत को प्रामाणिक मानकर कितने ही भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों ने गुप्त नरेशों के उन्नत समय में कालिदास की स्थिति बतलाई है।

गुप्तकाल में कालिदास—

गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति माननेवाले विद्वानों में भी कुछ – कुछ भेद दीख पड़ता है। पूना के प्रोफेसर के0बी0 पाठक की सम्मति में कालिदास स्कन्दगुप्त 'विक्रमादित्य' के समकालीन थे, परन्तु डॉक्टर रामकृष्ण भण्डारक, साहित्याचार्य पं0

रामावतार शर्मा तथा अधिकांश पश्चिमीविद्वान् गुप्तों में सबसे अधिक प्रभावशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदासका आश्रयदाता मानते हैं।

(क) पाठक ने काश्मीरी टीकाकार वल्लभदेव के निम्नलिखित श्लोक के पाठ को प्रामाणिक मानकर पूर्वोक्त सिद्धान्त निश्चित किया (रघु0 4/67)

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेश्टनै:।

दुधुवुर्वाजिन: स्कन्धॉल्लग्नकुङ्कमकेसनान्।।

इस पद्य के 'सिन्धु' शब्द के स्थान पर वल्लभदेव ने 'वंक्ष् पाठ माना है। 'वंक्षू' शब्द पाठक की सम्मति में OXUS (आक्सस) शब्द का संस्कृतीकरण है। अत: इस पाठ को प्रामाणिक मानने से यह कहना पड़ता है कि रघु ने हूंणो को आक्सस नदी (जो पामीर से निकलकर अरब सागर में गिरती है) के किनारे उनके भारत आगमन के पहले ही हराया था। यह घटना 455 ई0 के पूर्व की हो सकती है; क्योंकि उस वर्ष स्कन्दगुप्त के प्रबल प्रताप के सामने हार मान भग्न-मनोरथ होकर हूंणों को लौटना पड़ा था। अत: रघुवंश को कालिदास की प्रथम रचना मानकर पाठक ने उन्हें स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है। विजयचन्द्र मजुमदार ने कुछ अन्य प्रमाण देकर इन्हें कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त दोनों के समय में मानाहै।

(ख) पश्चिमी विद्वान् शकों को भारत से निकाल बाहर करने वाले, विक्रमादित्य उपाधि धारण करने वाले, चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में (जब भारत में चारों ओर शान्ति विराजमान थी और जो भारतीय कलाकौशल के पुनरून्नति का काल माना जाता है) कालिदास को मानते हैं। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु का दिग्विजय समुद्रगुप्त की विजय से सर्वथा मिलता-जुलता है। रघुवंश में वर्णित शान्ति[3] का समुचित काल चन्द्रगुप्त का ही समय था। इसके सिवाय इन्दुमती –स्वयंवर में उपस्थित मगध राजा के लिए जो उपमा या विशेषण प्रयुक्त किये गये है उनसे भी 'चन्द्रगुप्त' नाम की ध्वनि निकलती है, परन्तु गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति बताना ठीक नहीं, क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही प्रथम विक्रमादित्य नहीं थे। जब इनसे भी प्राचीन मालवा में राज्य करने वाले विक्रम का पता इतिहास से चलता है, तब कालिदास गुप्तकाल में कैसे माने जा सकते है ?

प्रथम शती में कालिदास- (क)

ऐतिहासिक खोज से ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों को परास्त करने वाले, विद्वानों को विपुल दान देने वाले उज्जयिनी- नरेश राजा विक्रमादित्य के अस्तित्व का पता चलताहै। राजा हाल की 'गाथासप्तशती' में (रचनाकाल प्रथम शताब्दी) 'विक्रमादित्य' नामक एक प्रतापी तथा उदार शासक का निर्देश है, जिसने शत्रुओं पर विजय पाने के उपलक्ष्य में भृत्यों को लाखों का उपहार दियाथा। जैन ग्रन्थों से इस बात की पर्याप्त पुष्टि होती है। मेरूतुङ्गाचार्य विरचित 'पद्यावली' से पता चलता है कि उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों से उज्जयिनी का राज्य लौटा लिया था। यह घटना

महावीर-निर्वाणके470 वें वर्ष में (527-470=57 ई0 पूर्व) हुई थी। इसकी पुष्टि प्रबन्धकोश तथा शत्रुन्जयमहात्म्य से भी होती है।

प्राचीन काल में 'मालव' नामक गणों का विशेष प्रभुत्व था। ईस्वी पूर्व तृतीय शतक में इसने 'क्षुद्रक' गण के साथ सिकन्दर का सामना कियाथा, पर विशेष सहायता न मिलने से पराजित हो गया था। यही मालव जाति ग्रीक लोगों के सतत आक्रमण से पीडित होकर राजपूताने की ओर आई और मालवा में ईस्वी पूर्व प्रथम द्वितीय शताब्दी में अपना प्रभुत्व जमाया। यह गणराज्य था और विक्रमादित्य इसी गणतन्त्र के मुखिया थे। शकों के आक्रमण को विफल बनाकर विक्रम ने 'शकारि' की उपाधि धारण की और अपने मालवगण को प्रतिष्ठित किया। इसलिए इस संवत् का 'मालवगण-स्थिति' नाम पड़ा था। गणराज्य में व्यक्ति की अपेक्षा समाज का विशेष महत्व होता है। अत: यह संवत् गणमुख्य के नाम पर ही अभिहित न होकर गण के नाम पर 'मालव-संवत्' कहलाता था। अत: ई0 पू0 प्रथम शतक में विक्रम नाम-धारी राजा या गणमुखिया का परिचय इतिहास से भली-भॉति लगता है। इन्हीं की सभा में कालिदास की स्थिति मानना सर्वथा न्यायसंगत है।

निष्कर्ष –

अपने आश्रयदाता 'विक्रम' की सूचना कालिदास ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर दी है। विक्रमोर्वशीय त्रोटक के अभिधान में नायक के स्थान पर 'विक्रम' शब्द का प्रयोग विक्रम के साथ कालिदास का घनिष्ठ सम्बन्ध सूचित करता है। अभिज्ञानप्रस्तावना में रसभाव-विशेष –दीक्षा-गुरू विक्रमादित्य साहसाङ्क नाम्ना निर्दिष्ट किये गये है तथा भरत-वाक्य में 'गणशतपरिवर्तेरेवमन्योन्यकृत्यै:' में राजनीतिक अर्थ में व्यवहृत 'गण' शब्द – गणराष्ट्र' का सूचक स्वीकृत किया गया है। प्राय: अभी तक विक्रमादित्य एकतान्त्रिक राजा ही समझे जाते रहे हैं, परन्तु ऊपर निर्दिष्ट हस्तलेख के प्रामाण्य पर वे गणराष्ट्र (मालव गणराष्ट्र) के गणमुख्य प्रतीत होते हैं। विक्रमादित्य उनका व्यक्तिगत अभिधान था (कथासरित्सागर का पोषक साक्ष्य है) तथा 'साहसाङ्क' उनकी उपाधि थी। उन्होने शकों को उनके प्रथम बढ़ाव में पराजित कर इस क्रान्तिकारी घटनाके उपलक्ष्य में 'मालवगण-स्थिति' नामक संवत् का प्रवर्तन किया, जो आगे चलकर 'विक्रमसंवत्' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गणराष्ट्र में व्यक्तिविशेष का प्राधान्य नहीं रहता। इसीलिए यह गण के नाम से प्रसिद्ध था। चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा समस्त गणराष्ट्र उच्छिन्न कर दिये गये; फलत: अष्टम -नवम शती में सारे देश में निरंकुश एकतन्त्र की स्थापना हो जाने पर गणराष्ट्र की कल्पना ही विलीन हो गई। तभी गणमुख्य का नाम इससे सम्बद्ध कर दिया गया है और यह संवत् 'विक्रम' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। विक्रमादित्य के गुप्त सम्राट् होने के विरूद्ध निम्नलिखित कठोर आपत्तियॉ हैं-

(1) गुप्त सम्राटों का अपना वंशगत संवत् है, उनके किसी उत्कीर्ण लेख में मालव अथवा विक्रम संवत् का उल्लेख नहीं है। जब उन्होने ही विक्रम संवत् का प्रयोग नहीं

किया, तब जनता उनके गौरव के अस्त होने पर उनके नाम से इसे 'विक्रम संवत् ' क्यों कहने लगेगी?

(2) गुप्त सम्राट पाटलिपुत्रनाथ थे, किन्तु विक्रमादित्य उज्जयिनीनाथ थे, अनुश्रुतियों के आधार पर ही नहीं प्रत्युत रघुवंश (6/26) के आधार पर भी। यहाँ इन्दुमती-स्वयंवर में अवन्तिनाथ को 'विक्रमादित्य' होने का गूढ संकेत विद्यमान है।

(3) उज्जयिनी के विक्रम का व्यक्तिगत अभिधान ही 'विक्रमादित्य' था , उपाधि नहीं । कथासरित्सागर में लिखा है कि उनके पिता ने जन्म -दिन को ही शिवजी के आदेशानुसार उनका नाम 'विक्रमादित्य' रखा, अभिषेक के समय की यह उपाधि नहीं है। इसके विरूद्ध किसी गुप्त सम्राट् का नाम विक्रमादित्य नहीं था। चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त के विरूद्ध क्रमश: 'विक्रमादित्य' तथा 'क्रमादित्य' (कहीं-कहीं विक्रमादित्य भी) थे। समुद्रगुप्त की यह उपाधि नहीं थी । कुमारगुप्त की उपाधि थी ' महेन्द्रादित्य', कोई नाम नहीं था । उपाधि होने से पहिले यह आवश्यक है कि उस नाम का कोई पराक्रमी लोकप्रसिद्ध व्यक्ति रहा हो जिसके नाम का अनुकरण पिछले युग के लोग करते है। गुप्त राजाओं की 'विक्रमादित्य' उपाधि अपनी पूर्व किसी लोकख्यात व्यक्ति की सत्ता की परिचायिका है । अत: विक्रमादित्य की स्थिति प्रथम शती में गुप्तों से पूर्व मानना नितान्त समुचित है। इसी विक्रम की सभा के रत्न कालिदास थे ।

(ख) बौद्ध कवि अश्वघोष का समय निश्चित है। कुषाण -नरेश कनिष्क के समकालीन होने से उनका समय ई0 सन् प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनके तथा कालिदास के काव्यों में अत्यधिक साम्य है। कथानक की सृष्टि, वर्णन की शैली, अलंकारों का प्रयोग, छन्दों का चुनाव –आदि अनेक विषयों में कालिदास का प्रभाव अश्वघोष पर पड़ा है । अश्वघोष प्रधानत: सर्वास्तिवादी दार्शनिकथे। काव्य की ओर उनकी अभिरूचि का होना तथा उसे धर्म प्रचार का साधन मानना काव्यकला के उत्कर्ष का द्योतक है (सौन्दर्यनन्द 18/63) । और यह उत्कर्ष कालिदास के प्रभाव का ही फल है । बुद्ध चरित में अश्वघोष में कालिदास के बहुत से श्लोकों का अनुकरण किया है। रघुवंश के सातवें सर्ग में (श्लोक 5-15) कालिदास ने स्वयंवर से लौटने पर अज को देखने के लिए आने वाली उत्सुक स्त्रियोंका बड़ा ही अभिराम वर्णन किया है । अश्वघोष ने बुद्धचरित (तृतीय सर्ग, 13-24 पद्य) में ठीक ऐसे ही प्रसंग का वर्णन किया है । कुमारसम्भव मे भी ये ही पद्य मिलते हैं। यदि कालिदास ने इसे अश्वघोष के अनुकरण पर लिखा होता, तो वे दो बार इसका प्रदर्शन कर अपना ऋण नितान्त अभिव्यक्त नहीं करते, उसे छिपाने का प्रयत्न करते । कालिदास की भाव-सुन्दरता अश्वघोष के द्वारा सुरक्षित न रह सकी । तुलना करने से कालिदास का समय अश्वघोष से प्राचीन प्रतीत होता है। अत: कालिदास का समय ईस्वी पूर्व प्रथम शतक में ही मानना युक्तियुक्त है।

(ग) शाकुन्तल में सूचित सामाजिक तथा आर्थिक दशा का अनुशीलन सूचित करता है कि कालिदास बौद्ध धर्म से प्रभावित उस युग के कवि थे जब हिन्दू देवी -देवताओं के

विषय में श्रद्धाविहीन विचार प्रचलित थे। कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की नान्दी में भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों का वर्णन किया है। इस नान्दी में 'प्रात्यक्षभि:' शब्द का प्रयोग कर कवि ने तत्कालिन देवता –विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयत्न किया है। जिस शिव की अष्टमूर्तियों का हमें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है- जिनका साक्षात्कार हमें अपनी ऑखों से हो रहा है, उन देवता के विषय में अश्रद्धा कैसे टिक सकती है? अविश्वास कैसे रह सकता है? इसी प्रकार षष्ठ अंक में कालिदास ने कर्तव्य-कर्म होने के कारण यज्ञयागादि का विधान ब्राह्मण के लिए आवश्यक बतलाया है। बौद्धों ने हिंसापरक होने के कारण यज्ञो की भरपेट निन्दा की, परन्तु शकुन्तला में एक पात्र कहता है कि क्या यज्ञों में पशु मारने वाले क्षेत्रिय का हृदय दयालु नहीं होता? कुल-परम्परागत धर्म का परित्याग क्या कभी श्लाघनीय है? अतएव यज्ञों का अनुष्ठान सर्वदा श्रेयस्कर है; परन्तु उसके हिंसापरक होने पर भी

याज्ञिक ब्राह्मणों का हृदय कोमल होता है-

सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत् कर्म विवर्जनीयकम्।
पशुमारण-कर्मदारूण: अनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रिय: ।।

यहॉ कवि ने बौद्ध धर्म के कारण यज्ञों के विषय में होने वाली निन्दा या अश्रद्धा को दूर करने का उद्योग किया है। अत: कालिदास का जन्म उस समय में हुआ था, जब बौद्ध धर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ती जा रही थी तथा ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय हो रहा था। यह समय ब्राह्मणवंशी शुंगनरेशो (द्वितीय शतक विक्रम पूर्व) के कुछ ही पीछे होना चाहिये। अत: विक्रम संवत् के प्रथम शतक में कालिदास को मानना सर्वथा न्यायसंगत प्रतीत होता है।

(घ) कालिदास को प्रथम शताब्दी में रखने के लिए अन्य भी प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं-

(1) कालिदास ने रघुवंश के षष्ठ सर्ग (श्लोक 36) में 'अवन्तिनाथ' का वर्णन करते समय 'विक्रमादित्य' विरूद का संकेत किया है। कथासरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य मालवगण के संस्थापक, काव्यकला के प्रेमी, शैव थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी उनके शैव होने का संकेत मिलता है। फलत: उनके विक्रमादित्य के सभापण्डितहोने की अधिक सम्भावना है, न कि वैष्णव मतावलम्बी परमभागवत गुप्तनरेशों की सभा में।

(2) रघुवंश के षष्ठ सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर के प्रसङ्ग में पांडय नरेश का वर्णन किया गया है (श्लोक 59-64)। चतुर्थ शती में पाण्डवों का राज्य समाप्त हो गया था , परन्तु प्रथम शती में उनका राज्य विद्यमान था। कालिदास ने पाण्डव नरेश की 'उरगपुर' राजधानी बतलाया है, जो 'उरियाउर' का संस्कृत नाम है। पाण्डव नरेशों की यही राजधानी थी।

1.3.1 महाकवि कालिदास की काव्य प्रतिभाएँ

काव्यग्रन्थ—

कालिदास की सच्ची रचनाओं का निर्णय करना आलोचकों के लिए एक दुष्कर कार्य है , क्योंकि कालिदास की काव्य-जगत् में ख्याति होने पर अवान्तरकालीन बहुत से कवियों ने 'कालिदास' का प्रसिद्ध अभिधान धारण कर अपने व्यक्तित्व को छिपा रखा। कम से कम राजशेखर (10 शतक) ने तीन कालिदासों की सत्ता का पूर्ण संकेत किया है। एक तो परम्परा की अविच्छिन्नता और दूसरे अनेक कालिदासों की सत्ता- दोनों ने मिलकर इस समस्या को जटिल तथा अमीमांस्य बना रखा है।

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रृंगार है। कालिदास ने दो महाकाव्य , दो गीतिकाव्य तथा तीन नाटकों की रचना की। इस प्रकार इनकी कुल सात रचनाऐं हैं जिसमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् इनका विश्व प्रसिद्ध नाटक है।

महाकाव्य —

कुमारसंभव तथा रघुवंश कालिदास के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। कुमारसंभव में 18 सर्ग हैं किन्तु विद्वान 8 सर्गों को ही कालिदास द्वारा रचित मानते हैं। इसमें पार्वती जन्म, कामदहन , पार्वती तपस्या, शिव विवाह, कार्तिकेय जन्म आदि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। **रघुवंश** महाकाव्य में19 सर्ग हैं। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वर्णन है। यह उनका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

कुमारसम्भव—

कालिदास की सच्ची नि:सन्दिग्ध रचना है। इसमें कवि ने कुमार कार्तिकेय के जन्म के वर्णन का संकल्प किया था, परन्तु यह महाकाव्य अधूरा ही हैं। इसके वर्तमान 17 सर्गो में से आदि के सात सर्ग तो कालिदास की लेखनी के चमत्कार हैं ही। अष्टम सर्ग भी उनका ही नि:संशय निर्माण है। आलङ्कारिकों तथा सुक्तिसंग्रहों ने इन्हीं सर्गो में से पद्यों को उद्धृत किया है। कालिदासीय कविता के प्रवीण पारखी मल्लिनाथ ने इतने ही सर्गो पर अपनी 'संजीवनी' लिखी। इन आदिमअष्ट सर्गो में विषय की दृष्टि से पूर्ण ऐक्य है। कविता का चमत्कार सहृदयों के लिए नितान्त हृदयावर्जक है। 'जगत:पितरौ' शिव-पार्वती जैसे दिव्य दाम्पत्य के रूप तथा स्नेह का वर्णन नितान्त औचित्यपूर्ण तथा ओजस्वी है। केवल अष्टम सर्ग का रतिवर्णन आलङ्कारिकों के तीव्र कटाक्ष का पात्र बना है। पंचम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन जितना ओजपूर्ण, उदात्त तथा संश्लिष्ट है उतना ही तृतीय सर्ग में शिवजी की समाधिका वर्णन भी है। 9से लेकर 17 सर्ग किसी साधारण कवि के द्वारा लिखित प्रक्षेपमात्र है।

रघुवंश-

भारतीय आलोचक रघुवंश को कालिदास का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ मानते है और इसीलिए कालिदास के लिए ही 'रघुकार' (रघुवशं का रचयिता) अभिधान का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न काल में निर्मित 40 टीकाओं के अस्तित्व से भी भली-भाँति मिल सकता है। रघु के जन्म की पूर्व पीठिका से ही इस काव्य का आरम्भ होता है। दिलीप के गोचारण से रघु का जन्म होता है (द्वितीय तथा तृतीय

सर्ग) , जो अपने अदम्य पराक्रम से पूरे भारतवर्ष के ऊपर दिग्विजय करते हैं (चतुर्थ सर्ग) और अपनी अद्भुत दानशीलता दिखलाकर लोगों को चकित कर देते है (पंचम सर्ग)। इसके अनन्तर तीन सर्गो में इन्दुमती का स्वयंवर, अन्य समवेत राजाओं को परास्त कर रघुपत्र अज का इन्दुमती से विवाह तथा कोमल माला के गिरने से इन्दुमती का मरण तथा अज का करूण विलाप क्रमश: वर्णित हैं। दसवें सर्ग से लेकर 15 वें सर्ग तक रामचरित का विस्तृत वर्णन है। यहॉ कालिदास ने जमकर रामचन्द्र के चरित का वैशिष्टय बड़ी ही सुन्दरता से प्रदर्शित किया है। त्रयोदश सर्ग में पुष्पकारूढ राम के द्वारा भारतवर्ष के स्थलों का रूचिर वर्णन कालिदास की प्रतिभा का विलास है। चतुर्दश सर्ग सीता के चरित की सुषमा से आलोकित है। राम के द्वारा पंरित्यक्ता गर्भ- भरालसा जनकनन्दिनी के प्रणय-सन्देह में जो आत्मगौरव, जो स्नेह भरा हुआ है वह पतिव्रताके चरित का उत्कर्ष है। अन्तिम कतिपय सर्गो में कालिदास नाना राजाओं के चरित को सरसरी तौर से निरखते चले गये हैं,परन्तु अन्तिम 19 वें सर्ग में कामुक अग्निवर्ण का चित्रण बड़ी ही मार्मिकता के साथ कवि ने किया है। देखने में रघुवंश अधूरा-सा दीखता है, परन्तु कालिदास ने यहॉ प्रभुशक्ति की कल्पना में अपने विचारों को पुर्णरूपेण अभिव्यक्त कर दिया है। प्रकृति-रंजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृतिहिंसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है- यह उपदेश बड़े ही अच्छे ढंग से रघुवंश के अनुशीलन से प्रकट हो रहा है।

गीतिकाव्य —

ऋतुसंहार तथा मेघदूत कवि के प्रसिद्ध गीतिकाव्य हैं। ऋतुसंहार में षडऋतुओं का छ: सर्गों में अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। प्रत्येक सर्ग में क्रमश: एक—एक ऋतुओं का वर्णन है। मेघदूत कालिदास का प्रसिद्ध गीतिकाव्य है। इसमें कवि ने विरही यक्ष के द्वारा मेघ के माध्यम से अपनी प्रियतमा को भेजे गये सन्देश का वर्णन किया है। भौगोलिक वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण, तथा विरहिणी की मर्म व्यथाओं को देखकर मेघदूत को संस्कृत काव्य जगत का सर्वोत्तम गीतिकाव्य कहा जाता है।

ऋतुसंहार—

'ऋतुसंहार' कालिदास की प्रथम काव्यकृति है। विद्वानों की दृष्टि में बालकवि कालिदास ने काव्यकला का आरम्भ इसी ऋतु-वर्णन-परक लघुकाव्य से किया। छ: सर्गो में विभक्त यह काव्य ग्रीष्म से आरम्भ कर वसन्त तक छहों ऋतुओं का बड़ा ही स्वाभावि, अकृत्रिम तथा सरल वर्णन प्रस्तुत करता है, परन्तु इसे कालिदास की कमनीय शैली या वाग्वैदग्धी का परिचय मिलता है, न इसमें बाल-रचना की पुष्टि में ही कोई प्रमाण मिलता है। भारतीय दृष्टि से ऋतुओं का वर्णन रूढिगत तथा सर्वथा सामान्जस्यपूर्ण है। अलंकार ग्रन्थों में उद्धरण का अभाव भी उक्त सन्देह की पुष्टि-सा करता प्रतीत होता है।

मेघदूत–

यह कालिदास की अनुपम प्रतिभा का विलास है। वियोगविधुरा कान्ता के पास यक्ष का मेघ के द्वारा प्रणय-सन्देश भेजना मौलिक कल्पना है। सम्भव है यह हनुमान् को दूत

बनाकर भेजने की रामायणीय कथा अथवा हंसदूत की महाभारतीय कथा के द्वारा संकेतित किया गया है, परन्तु इसका सांविधानक तथा विषयोपन्यास कवि की मौलिक सूझ के परिणाम हैं। इसकी लोकप्रियता तथा व्यापकता का निदर्शनविपुल टीका-सम्पत्ति (लगभग 50 टीकाओं) से तो लगता ही है; साथ ही साथ तिब्बती तथा सिंघली भाषा में इसके अनुवाद से यह विशेषत: पुष्ट होती है। 'मेघदूत' को आदर्श मानकर संस्कृत में निबद्ध एक विपुल काव्यमाला है, जो 'सन्देश-काव्य' के नाम से विख्यात है। पूर्वमेघ में कवि ने रामगिरि से अलका तक मार्ग के वर्णनावसर पर समस्त भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा का अभिराम उपन्यास किया है। यह बाह्मप्रकृति के सौन्दर्यय तथा कामनीयता का उज्ज्वल प्रदर्शन है तो उत्तरमेघ मानव-हृदय के सौन्दर्य तथा अभिरामता का विमल चित्रण है यक्ष का प्रेम-सन्देश, उस, के कोमल हृदय के स्वाभाविक स्नेह का तथा नैसर्गिक सहानुभूति का एक मनोरम प्रतीक है और इस उदात्त प्रेम का अभिव्यंजक, काव्य सुषमा तथा भावसौष्ठव से मण्डित यह ग्रन्थ रस का अक्षय स्रोत है जिसकी भावधारा सूखने की अपेक्षा प्रतिदिन आनन्दातिरेक से वृद्धिगतही होती जा रही है।

नाटक —

विक्रमोर्वशीयम् , मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास के प्रसिद्ध नाटक हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण , कथोपकथन , नाटकीय सन्धि तथा रसपरिपाक की दृष्टि से कालिदास केनाटकअद्वितीयहैंअभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है। मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का प्रथम नाटक है इसमें अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणय कथा का पाँच अंको में वर्णन है। विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंको का नाटक है। इसमें पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् कवि का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें सात अंक है । इसके सात अंको में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन , वियोग तथा पुर्नमिलन का सुन्दर वर्णन है।

समीक्षण—

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रृंगार है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद की स्निग्धता , पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव , अलंकारों का मंजुल प्रयोग – कमनीय काव्य के समस्त लक्षण कालिदास की कविता में अपना अस्तित्व धारण किये हुए हैं। कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं, जिनके पात्र भारतीयता की भव्य मूर्ति हैं। जीवन की विविध परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में विशेष रूप से होगी, जनता का वही सच्चा रूप उनके काव्यों में झॉकता है तथा उनके नाटकों में अपना अभिनय दिखाता है। कालिदास की कविता का प्रधान गुण है वर्ण्य-विषय तथा वर्णन-प्रकार में मंजुल सामन्जस्य । कालिदास चुने हुए थोड़े शब्दों में जिन भावों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं उन्हें दूसरा कवि विस्तार से लिखकर भी प्रकट नहीं कर सकता। वह जिसे छू देते हैं वह सोना बन जाता है। औचित्य के तो वे प्रवीण मर्मज्ञ हैं। जिन भावों का जिन शब्दों के द्वारा प्रकटन कलात्मक

तथा रूचिर होगा, वे उन भावों को उन्ही शब्दों में प्रकट कर अपनी भावुकता का परिचय देते हैं। कालिदास के काव्यों में हृदय –पक्ष का प्राधान्य है। कवि मानव हृदय की परिवर्तनशील वृत्तियों को समझने तथा उन्हें अभिव्यक्त करने में अद्भुत चातुर्य रखता है। संसार का अनुभव उसे गहरा तथा जर्मन महाकवि गेटे ने एक स्वर से कालिदास के भावों की उदारता तथा महनीयता की प्रशंसा की है। कालिदास प्रतिभासम्पन्न स्वतन्त्र कवि हैं, जिन्होंने अपने

काव्यों की शैली का रूप-निरूपण स्वयं किया। रसमयी पद्धति अथवा 'सुकुमार मार्ग' के कवि ने अपने भावों की तीव्रता तथा उदात्तता के संचार के लिए अलंकारों का भी प्रयोग बड़े ही औचित्य से किया। 'उपमा कालिदासस्य' का भारतीय आभाणक वस्तुत: यथार्थ प्रतीत होता है। उनकी उपमायें लोक तथा प्रकृति के मार्मिक स्थलों से संगृहीत की गयी हैं तथा विषय को उज्जवल करने और काव्यसुषमा की वृद्धि में नितान्त समर्थ हैं। अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् से चुने जाने के कारण इन उपमाओं में एक विलक्षण चमत्कार है।

अभ्यास प्रश्न—1

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. कालिदास किस रीति के प्रयोक्ता है।

क. गौणी ख. पांचाली ग. वैदर्भी घ. लाटी

2. कालिदास ने कितने महाकाव्यों की रचना की।

क. 4 ख. 3 ग. **5** घ. 7

3. कालिदास ने कितने नाटकों की रचना की।

क. **3** ख. 5 ग. **7** घ. 8

4. ऋतुसंहार किसकी रचना है।

क. माघ ख. भास ग. कालिदास घ. भारवि

5. कालिदास का समय प्रथम शताब्दी कौन सा ग्रन्थ प्रमाणित करता है।

क. गाथासप्तशती ख. कथासरित्सागर ग. वृहत्कथामंजरी घ. कोई नहीं

6. कनिष्क किस वंश का शासक था।

क. गुप्त ख. चोल ग. कुषाण घ. भद्र

7. कुमारसम्भव महाकाव्य में कितने सर्ग हैं।

क. 4 ख. 13 ग. 17 घ. 19

8. कालिदास के मेघदूत में किसे दूत बनाया गया है।

क. यक्ष ख. मेघ ग. सेवक घ. कोई नहीं

9. दिलीप की गो सेवा का वर्णन किस ग्रन्थ में है।

क. रघुवंश ख. कुमारसम्भव ग. शाकुन्तलम घ. गीतगोविन्द

10. रघुवंश महाकाव्य में कितने सर्ग है –

क. 17 ख. 18 ग. 19 घ. 20

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. कालिदास का समय ईसा पूर्व ——— शताब्दी है।
2. कालिदास की पत्नी का नाम ——— है।
3. रघुवंश ——— है।
4. विक्रमोर्वशीयम् ——— अंको का नाटक है।
5. अभिज्ञानशाकुन्तल का नायक ——— है।
6. मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का ——— नाटक है।
7. मेघदूत ——— है।
8. ऋतुसंहार में ——— ऋतुओं का वर्णन किया गया है।
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नायिका ——— है।
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ——— अंक है।

1.3.2 कालिदास की काव्यकला

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रंगार है। भाषा, भाव कल्पना तथा वर्णन के क्षेत्र की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में उनके समान कोई कवि दिखाई नहीं देता। संस्कृत साहित्याकाश के वह दैदीप्यमान दिनमणि है। उनकी कविता कामिनी कला तथा भाव दोनों पक्षों से समलंकृत है। महाकवि कालिदास की काव्यकला के सम्बन्ध में आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि ' कालिदास की शैली की एक उत्कृष्ट विशेषता यह है कि इसमें किसी भाव का बहुत लम्बा चौडा वर्णन न करके उसके सूक्ष्म तत्त्व की मार्मिक व्यंजना मात्र कर दी जाती है '।

कालिदास की भाषा शैली—

महाकवि कालिदास की भाषा सरल, सरस तथा प्रसादगुणोपेत है। उन्होंने अपनी भाषा में पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं किया है। उनकी भाषा की यह असाधारण विशेषता है कि वह जिस भाव को व्यक्त करना चाहते हैं भाषा वहां पर तदनुरूप प्रस्तुत हो जाती है। कोमल तथा सुकुमार भावों के चित्रण में वह सिद्ध हस्त हैं। उनकी भाषा पात्र के अनुरूप होती है। शकुन्तला के निष्कलंक सौन्दर्य का वर्णन कवि ने कितनी सुन्दरता के साथ किया है —

'' अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै:
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितासम्।
अखण्डपुण्यानां फलमिव मे तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधि: ।। ''

कालिदास का भाषा में स्थान — स्थान पर मुहावरों के सुन्दर प्रयोग से भाषा अत्यधिक प्रवाहमयी हो जाती है। उदाहरणार्थ जब अनसूया प्रियंवदा से कहती है कि दुर्वासा के शाप का

हृदयविदारक समाचार कोमलहृदय शकुन्तला तक न पहुँच जाये तब प्रियंवदा उत्तर देते हुए कहती है — **' को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति '।**

गुण एवं रीति —

महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्रसादगुण युक्त ललित काव्यशैली एवं वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है। वैदर्भी रीति के वे सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वैदर्भी रीति को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है।

'' माधुर्यव्यंजकैवर्णै: रचना ललितात्मिका
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते ।। ''

अर्थात् माधुर्यव्यंजक वर्णो का प्रयोग, ललित रचना, समासों का अभाव या स्वल्प समासों का प्रयोग वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषतायें हैं। माधुर्य गुण कालिदास की कविता का आभूषण है। जो हृदय में परमानन्द की निर्झरिणी को प्रवाहित करता है । शकुन्तला जैसी अद्वितीय सुन्दरी के द्वारा वृक्ष सिंचन जैसा कठोर कार्य उन्हें किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं है अपने इस विद्रोही भावों को कितने सुमधुर शब्दों में कवि अभिव्यक्त करता है —

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तप: क्षमं साधयितुं य इच्छति
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।।

यद्यपि कालिदास की रचनाओं में प्रसाद एवं माधुर्य गुण की प्रधानता है तथापि ओजगुण भी उनकी रचनाओं में यत्र —तत्र दृष्टिगोचर होता है। दुष्यन्त के सैन्य बल को देखकर भयग्रस्त हाथी के वर्णन में ओजगुण के दर्शन होते हैं —

तीव्राघात प्रतिहततरूस्कन्धलग्नैकदन्त:
पादाकृष्टव्रततिवलयासंग संजातपाश: ।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्न सारंगयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गज: स्यन्दनालोकभीत: ।।

अलंकार—

महाकवि कालिदास ने अपनी कविता वनिता को अवसर के अनुकूल विभिन्न अलंकारों से अलंकृत किया है।कालिदास ने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है । उपमा उनका सर्वप्रिय अलंकार है । कालिदास की उपमाऐं तो जगत प्रसिद्ध है इसीलिए कहा भी गया है — 'उपमा कालिदासस्य' । इसके अतिरिक्त कालिदास ने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

छन्द —

छन्द काव्य का आह्लादक तत्त्व है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में 24 छन्दों का प्रयोग किया है।

रस परिपाक —

कालिदास के काव्यों में सर्वत्र ही रसमयता दर्शनीय है। यद्यपि कालिदास ने अपने काव्यों में सभी रसों का प्रयोग किया है पर मुख्यत: उनकर हृदय श्रंगार रस में ही रमा है। श्रंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का उन्होने अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। मेघदूत में विप्रलम्भ श्रंगार चरम सीमा तक पहुँच गया है। कुमार संभव तथा अभिज्ञानशाकुन्तल में संयोग श्रंगार का सात्विक रूप दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त नाटकों में विदूषक के कथन में हास्य, कुमारसंभव के 'रति विलाप' तथा रघुवंशम् के 'अज विलाप' में करूण , रघु — इन्द्र और राम —रावण के युद्ध में वीर तथा अन्य स्थानों पर विभिन्न रसों का सुन्दर चित्रण दर्शनीय है।

भावाभिव्यंजना —

कालिदास व्यंजना व्यापार के कवि है। उनकी भावाभिव्यंजना अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। इसी व्यंजना व्यापार के द्वारा कवि ने विस्तृत एवं रहस्यात्मक विषयों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रस्तावना के निम्नलिखित श्लोक में व्यंजना व्यापार देखिये —

'' सुभगसलिलावगाहा: पाटलसंसर्गसुरभिवनवाता: ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसा: परिणामरमणीया: ।।''

'दिवसा: परिणामरमणीया:' से यह ध्वनित होता है कि नाटक का अन्त सुखद होगा। इसी प्रकार दुष्यन्त शकुन्तला के परिचय को जान लेने के बाद भी अपने मन के भावों को इस प्रकार व्यक्त करता है —

'' **भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जात:**
आशंकसे यद्ग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नं ।।''

अत: हम कह सकते हैं कि कालिदास की काव्यकला की यह विशेषता है कि वह भाव एवं कला पक्ष से समलंकृत है। भाषा की मधुरता, सरलता , सरसता, और प्रसादमयता में वह अद्वितीय हैं और उसमें व्यंजना शक्ति की प्रधानता है। इसीलिए कालिदास की प्रशंसा में कहा गया है —

'' पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदास: ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।। ''

अभ्यास प्रश्न—2

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

A. नाट्य शास्त्र के रचयिता पिगंल ऋषि है।
B. कालिदास का जन्म ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ था।
C. अष्टाध्यायी महर्षि पाणिनी की रचना है।
D. रघुवंश खण्डकाव्य है।
E. अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक है।

1.3.3 उपमा कालिदासस्य

काव्य में अलंकार-प्रयोग के विषय में ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने एक बड़ी रहस्यमयी उक्ति प्रस्तुत की है-

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शब्दक्रियों भवेत्।

अपृथग्-यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ।।

रस के द्वारा आक्षिप्त होने के कारण जिसका बन्ध या निर्माण शक्य होता है और जिसकी सिद्धि में किसी प्रकार के पृथक् प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती,वही सच्चा अलंकार है- ध्वनिवादियों का यही मत है। प्रथम होती है रस की अनुभूति और तदनन्तर होती है उसकी अलंकृत अभिव्यक्ति। रसानुभूति तथा शब्दाभिव्यक्ति - दोनों एक ही प्रयास के परिणित फल हैं। कोई कलाकार जिस चित्तप्रयास द्वारा रस-विधारण करता है उसी चित्तप्रयास द्वारा अलंकारादि के माध्यम से रसप्रस्फुटन करता है; उसके लिए उसे किसी प्रकार के पृथक् प्रयास करने की जरूरत ही नहीं होती । रससंवेग द्वारा ही अलंकार के स्वतः प्रकाशन का यह सिद्धान्त ध्वनिवादियों को ही मान्य नहीं है, प्रत्युत प्रख्यात आलोचक क्रोचे भी इससे पूर्णतया सहमत हैं । चित्त की सहजानुभूति (इन्टयूशन) एवं अभिव्यन्जना (एक्सद्वप्रेशन)- इन दो वस्तुओं को वे दो प्रक्रियाओं से उत्पन्न नहीं मानते। उनका यह दृढ विश्वास है कि कला की अभिव्यन्जना की सम्भावना बीज-रूप में हृदय की रसानुभूति में ही निहित रहती है; जैसे- एक विराट वृक्ष की शाखा-प्रशाखायें ,किसलय-पल्लव, फूल-फल आदि की रेखाओं की प्रकाशन-संभावना एक छोटे से बीज में। साहित्य के रस एवं साहित्य की भाषा में अद्वय योग रहता है, अभिव्यक्त अलंकार-भाषा का यह समस्त सौन्दर्य-कटककुण्डलावदिवतु कहीं बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता, प्रत्युत् वह काव्यपुरूष का स्वाभाविक देह –धर्म होता है। अभिनव गुप्त ने भी स्पष्ट ही कहा है- 'न तेषां बहिरङ्गत्वं रसाभिव्यक्तौ'। इस विषय में महाकवि कालिदास भी अद्वयवादी थे:-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

वाक् तथा अर्थ का – काव्य की अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यन्जक शब्द का परस्पर नित्य सम्बन्ध है, जैसे विश्वसृष्टि के आदि माता-पिता पार्वती-परमेश्वर का त्रिगुणात्मिका शक्ति ही विशुद्ध चिन्मय शिव की विश्व में अभिव्यक्ति का कारण बनती है। शिव के आश्रयविना शक्ति की लीला नहीं, शक्ति के विना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं; वह शवमात्र होताहै। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर एवं शब्दरूपा पार्वती- दोनों ही एक दूसरे के आश्रित हैं। महाकवि कालिदास की उपमा (या अलंकार) के प्रयोग के अवसर पर इस तथ्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है कि रसानुभति की समग्रता को वर्ण, चित्र तथा संगीत में जो भाषा जितना अधिक मूर्त कर सकेगी, वह भाषा उतनी ही सुन्दर एवं मधुर होगी। कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भूतभावन शंकर की

उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है उसका सौन्दर्य नितान्त अवलोकनीय है (कुमारसम्भव 3/48)-

अवृष्टिसंरभमिवाम्बुवाहम् अपामिवाधारमनुत्तरङ्गम् ।
अन्तश्चराणां मरूतां निरोधाद् निवापनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ।।

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओं को निबद्ध कर पर्यङ्कबन्ध में स्थिर अचंचल भाव से बैठे हैं, जैसे वृष्टि के संरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो (जल को धारण जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरंगहीन अचंचल हो; 'अपामिवाधार' शब्द की यही ध्वनि है) तथा निवातनिष्कम्प प्रदीप हो। यहॉ तीनों प्राकृतिक उपमानों के द्वारा कालिदास योगिराज की अचंचल स्थिरता की अभिव्यन्जना कर उनके गौरव की एक रेखा खींचते हुये प्रतीत होते हैं। रघुवंश (3/2) में कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा का बड़ा सुन्दर चित्र उपमा के द्वारा खींचा है-

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ।।

आसन्नप्रसवा सुदक्षिण मानों प्रभातकल्पा रजनी हो। रजनी दिन को प्रकाश देने वाले सूर्य का प्रसव करती है, वैसे ही रानी वंशकर्ता उज्जवलमूर्ति रघु को प्रसव करने जा रही है। सूर्यरूपी पुत्र को गर्भ में धारण करनेवाली आसन्नप्रसवा विराट् रजनी की महिमामयी मूर्ति होती है, सुदक्षिणा की मूर्ति में भी वह गौरव प्रस्फुटित हो रहा है। शरीर की कृशता के कारण हीरे , जवाहिरों के भूषण स्वयं खिसक पड़े हैं; जैसे रजनी में टिमटिमाते तारे स्वयं खिसक जाते हैं और दो चार ही बचे रहते हैं। लाध्र के समान ईषत्-पीला मुख पीले पड़ जानेवाले चन्द्रमा के समान प्रकाशहीन हो गया है। गर्भिणी के स्वभाविक चित्रण के साथ ही प्रभातप्राय निशा का कितना समुचित वर्णन हमारे नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है।

कालिदास की उपमाओं की रसात्मिकता तथा रसपेशलता नितान्त मर्मस्पर्शी है। औचित्य तथा सन्दर्भ को शोभन बनाने की कला उनमें अपूर्व है। तपस्या के लिए आभूषणों को छोड़कर केवल वल्कल धारण करने वाली पार्वती चन्द्र तथा ताराओं से मण्डित होनेवाली अरूणोदय से युक्त रजनी के समान बतलाई गई है (कुमार0 5/44)। स्तनों के भार से किंचित् झुकी हुई नवीन लाल पल्लवों से मण्डित संचारिणी लता के समान प्रतीत होती है-

पर्याप्त-पुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव।

स्वयंवर में उपस्थित भूपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती है, तब वे राजमार्ग पर दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये महलों के समान प्रतीत होते हैं। यहॉ राजाओं की विषण्णता तथा उदासी की अभिव्यक्ति इस उपमा के द्वाराबड़ी सुन्दरता से की गई है-

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपाल: ।।

इसी उपमा-प्रयोग के सौन्दर्य के कारण यह महाकवि'दीपशिखा कालिदास' नाम से कविगोष्ठी में प्रसिद्ध है। कालिदासीय उपमा की यह भूयसी विशिष्टता है कि वह 'स्थानीयरन्जना' (लोकल कलरिंग) से रंजित है और इससे श्रोता के चक्षु: पटल के सामने समग्र चित्र को प्रस्तुत कर देती है। परास्त किये जाने पर पुन: प्रतिष्ठित किये गये वंगीय नरेश रघु के चरण-कमल के ऊपर नम्र होकर उन्हें फलों से समृद्ध बनाते हैं, जिस प्रकार उस देश के धान के पौधे (रघु0 4/37)। कलिंग-नरेश के मस्तक पर तीक्ष्ण प्रताप के रखने वाले रघु की समता गंभीरवेदी हाथी के मस्तक पर तीक्ष्ण अंकुश रखने वाले महाव्रत से की गई है (रघु04/39) । प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) के नरेश रघु के आगमन पर उसी प्रकार झुक जाते हैं जिस प्रकार हाथियों के बॉधने के कारण कालागुरू के पेड़ झुक जाते हैं (रघु0 4/81) इन समस्त उपमाओं में 'स्थानीय रंजन' का आश्चर्यजनक चमत्कार है ।

प्रकृति से गृहीत उपमाओं में एक विलक्षण आनन्द है । राक्षसके चंगुल से बचने पर बदहोश उर्वशी धीरे-धीरे होश में आ रही है । इसकी समता के लिए कालिदास चन्द्रमा के उदय होने पर अन्धकार से छोड़ी जाती हुई (मुच्यमाना) रजनी,रात्रिकाल में धूमराशि से विरहित होने वाली अग्नि की ज्वाला , बरसात में तट के गिरने के कारण कलुषित होकर धीरे-धीरे प्रसन्न-सलिला होने वाली गंगा के साथ देकर पाठकों के सामने तीन सुन्दर दृश्य को एक साथ उपस्थित कर देते हैं । ये तीनों उपमायें औचित्यमण्डित होने से नितान्त रसाभिव्यन्जक हैं (विक्रमोर्वशीय1/9) –

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि-
नैंशस्यार्चिर्हुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा ।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा
गंगा रोध:पतनकलुषा गृह्णतीव प्रसादम् ।।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि कालिदास अपने पाण्डित्य के कारण ही नहीं बल्कि वर्णन की गम्भीरता के कारण कवियों के बीच में सर्वाधिक प्रतिष्ठित है । परम्परा में यह मान्य है कि महाकवि ने ऋतुसंहार नामक काव्य की रचना सबसे पहले की । इसी में उनका कोमल प्राकृतिक होना प्रतिभासित होता है । इसके बाद ही उन्होंने रघुवंश, कुमारसम्भव एवं मेघदूत की रचना की । जिसमें दो महाकाव्य हैं और एक गीतिकाव्य है । ये वैदर्भी रीति के सफल प्रयोक्ता हैं । उपमा कालिदास के काव्यों एवं नाटकों का मुकुट है वस्तुत: उन्होंने दर्शन से लेकर समस्त बौद्धिक पराकाष्ठाओं के दृष्टि से अपनी रचना में सभी आकर्षण उत्पन्न किया है । फिर भी नितान्त साहित्यिक होकर वे श्रृंगार परक, प्रकृतिपरक और उपमा परक वर्णनों पर अत्यधिक विश्वस्त दिखायी देते है । उन्होंने अभिनेय वस्तु को सजीवता के साथ चित्रित करनें में कोई कोर कसार नहीं रखी है । रसमय और सुकुमार, अलंकारों के सुन्दर प्रयोग, सामासिक पदों में सरसता इत्यादि कालिदास की महनीय विशेषता है । अल्प शब्दों में विहंगम भावों की अभिव्यक्ति इनका प्रधान गुण है । अत: इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कालिदास का परिचय, समय और

इनके समय निर्णय में विविध मतों का अवलोकन करते हुये महाकवि की विविध वर्णन शैली को समझा सकेंगे।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

शब्द	अर्थ
वण	सुनना
उद्भव	उत्पत्ति
नाट्य	नाटक
दिवंगत	मृत (मरे हुए)
परिवर्तन	बदलाव
स्पृहा	इच्छा
विक्रय	बेचना
शैलूष	अभिनेता (नट)
प्रसादगुणोपेत	प्रसादगुण से युक्त

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न— 1

1. ग. वैदर्भी 2. ख.3 3 क. 3 4. ग. कालिदास 5. क. गाथासप्तशती
6. ग. कुषाण 7. ग. 17 8. ख. मेघ 9. क. रघुवंश 10. ग. 19

रिक्त स्थानों के उत्तर।

1. प्रथम 2. विद्योत्तमा 3. महाकाव्य 4. पाँच 5. दुष्यन्त
6. प्रथम 7. गीतिकाव्य 8. छः 9. शकुन्तला 10. सात अंक

अभ्यास प्रश्न— 2

A (नहीं) B (हाँ) C (हाँ) D (नहीं) E (हाँ)

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि कालिदास का जीवन परिचय लिखिये।
2. विभिन्न मतों के अनुसार कालिदास का काल निर्णय कीजिये।
3. कालिदास की रचनाओं पर एक निबन्ध लिखिये।
4. कालिदास के जीवन वृत्त एवं स्थितिकाल पर लेख लिखिये।
5 कालिदास की काव्यकला का वर्णन कीजिये।

इकाई-2 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कथावस्तु एवं पात्रों का चरित्र-चित्रण

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु
  2.3.1 मूलकथा
  2.3.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथासार
2.4 चरित्र-चित्रण
  2.4.1 दुष्यन्त
  2.4.2 शकुन्तला
  2.4.3 कण्व
2.5 ग्रन्थ का नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नोंके उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि नाटक क्या है इसका उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ तथा महाकवि कालिदास की प्रमुख रचनाऐं कौन-कौन सी हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु तथा प्रमुख पात्रों के चरित्र चित्रण का अध्ययन करेगें। इसके साथ ही इस ग्रन्थ की नाट्यशास्त्रीय विशेषताओं का ज्ञान भी प्राप्त करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि इस नाटक की कथावस्तु का मूल स्रोत क्या है। नाटक के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से परिचित होगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

- बता सकेगें कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु कहाँ से ली गयी है।
- नाटक के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को समझा पाएगें।
- नाटक में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को समझा सकेगें।
- नाट्य तत्वों के आधार पर ग्रन्थ की उपादेयता को बता सकेगें।

2.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु

2.3.1 मूलकथा —

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की मूल कथा महाभारत के आदिपर्व में 67 से 74 अध्याय तक प्राप्त होती है। यह कथा अत्यन्त साधारण रूप में प्रस्तुत हुई है। पद्मपुराण के स्वर्ग —खण्ड में भी यह कथा प्राप्त होती है। पद्मपुराण के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि भाषा आदि की दृष्टि से पद्मपुराण की रचना कालिदास के बाद में हुई हो अतएव अभिज्ञानशाकुन्तलम् की मूलकथा का आधार महाभारत ही ठहरता है। महाकवि कालिदास ने अपनी नूतन कल्पनाओं के द्वारा इसमें मौलिकता ला दी है और इसे रम्य रोचक और प्रभावशाली बना दिया है।

2.3.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथासार —

इस सम्पूर्ण नाटक में सात अंक है जिसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है

प्रथम अंक में सर्वप्रथम कवि ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नान्दी पाठ के द्वारा अष्ट मूर्ति भगवान शिव की वन्दना करता है। तत्पश्चात सूत्रधार के द्वारा गीष्म ऋतु का मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। इसके बाद आश्रम के मृग का पीछा करते हुए राजा दुष्यन्त सारथि के साथ महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश करते हैं। जैसे ही राजा मृग को मारना चाहते हैं उसी समय एक तपस्वी प्रवेश करके राजा को बतलाता है कि यह आश्रम का मृग है अत: अवध्य है।

राजा उस तपस्वी की बात को मान लेते हैं इस पर तपस्वी उन्हें आशीर्वाद देता है कि तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति हो साथ ही राजा से आश्रम के आतिथ्य को स्वीकार करने का

आग्रह करता है। राजा रथ को आश्रम के बाहर छोड कर सामान्य वेशभूषा में आश्रम में प्रवेश करते हैं। महर्षि कण्व सोमतीर्थ को गये हुए हैं इसलिए अतिथि सत्कार का भार शकुन्तला पर है। राजा आश्रम में वृक्ष को सींचती हुई अत्यन्त सुन्दर तीन मुनिकन्याओं को देखता है ।शकुन्तला के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर वह उसके प्रति आसक्त हो जाता है। अपने राजकीय स्वरूप को छिपाने वाला दुष्यन्त भ्रमर कार्य्रकलाप से पीडित शकुन्तला की रक्षा का ढोंग करता है। मधुर वार्तालाप से वह शकुन्तला के जन्म का वृतान्त जानकर कि वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है और तात कण्व के योग्य वर से विवाह के संकल्प को जानकर वह उससे विवाह करने का दृढ़संकल्प कर लेता है और विविध मधुर संवादों से शकुन्तला को आकृष्ट करने प्रयत्न करता है। शकुन्तला भी दुष्यन्त से प्रभावित होकर उस पर अनुरक्त हो जाती है। इसी बीच आश्रम में जंगली हाथी का प्रवेश होता है राजा अपने सैनिकों को रोकने के लिए प्रस्थान करता है और शकुन्तला भी अपनी सखियों के साथ से प्रस्थान करती है।

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में विदूषक द्वारा राजा के आखेट समबन्धित सूचना प्राप्त होती है। थकाहारा विदूषक आखेट के कार्यक्रम को रोकने की प्रार्थना करताहै। शकुन्तला के प्रति आकर्षित होने के कारण व्याकुल हृदय दुष्यन्त विदूषक की प्रार्थना को स्वीकार कर लेता है आखेट के कार्यक्रम को निरस्त करने की आज्ञा देता है। इसके पश्चात दुष्यन्त विदूषक से शकुन्तला के मनोहारी सौन्दर्य और रमणीय कार्यकलापों का वर्णनकरता है। राजा विदूषक से आश्रम में प्रवेश हेतु किसी निमित्त को पूछता है। इसी बीच तपोवन में रूकने की इच्छा रखने वाले दुष्यन्त से दो तपस्वी वहाँपर कुछ दिन रहकर आश्रम के निवासियों के यज्ञादि कार्यो में होने वाले विघ्नों को दूर करने की प्रार्थना करते हैं ,राजा इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेता है।इसी बीच राजधानी से माता का सन्देश लेकर दूत आता है और कहता है कि देवी के पारण के दिन आपकी उपस्थिति माताजी के द्वारा वहाँ चाही जा रही हैं। राजा तपोभूमि में अपनी उपस्थिति की अनिवार्यता को विचार कर विदूषक को राजधानीभेज देता है और विदूषक से कहता है कि अभी तक जो शकुन्तला के प्रेम एवं मनोहारिता का वर्णन उसके द्वारा किया गया है वह परिहास ही था यथार्थ नहीं अत: वह इस समबन्ध मेंकिसीसे कुछ न कहें।

तृतीय अंक के प्रारम्भ में दुष्यन्त के प्रति आसक्ति के कारण अस्वस्थ शकुन्तला प्रविष्ट होती है। उधर कामपीडित राजा दुष्यन्त का भी प्रवेश होता है। वृक्षों की झुरमुट में छिपकर राजा शकुन्तला और उसकी सखियों के वार्तालाप को सुनता है ।जिस समय विरह व्यथित शकुन्तला अपनी सखियों के कहने पर दुष्यन्त के लिए कमलपत्र पर अपने नाखूनों से प्रेमपत्र लिखती है उसी समय दुष्यन्त शकुन्तला के समक्ष आकर अपने प्रेम को प्रगट करदेते हैं। दुष्यन्त के आ जाने पर दोनों सखियां वहाँ से चली जाती है। राजा शकुन्तला के समक्ष गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव रखता है परन्तु इससे पहले कि दुष्यन्त अपनी कामतृष्णा को शान्त कर सके सखियाँ चक्रवाकवधू को अपने प्रियतम से विदा लेना का संकेत कर देती हैं। इसी बीच शान्ति जल लेकर गौतमी प्रवेश करती है। राजा दुष्यन्त वृक्ष की ओट में छिप जाता है गौतमी शकुन्तला को लेकर चली जाती हैं। यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षस ही राजा को अपने कर्त्तव्य

की ओर प्रेरित कर पाते हैं और राजा धनुष बाण लेकर अपने श्लाघनीय रक्षा व्रत में रत हो जाता है।

चतुर्थ अंक का प्रारम्भ विष्कम्भक से होता है जिससे यह ज्ञात होता है कि राजा दुष्यन्त का शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह हो गया है। राजा शकुन्तला को कुछ ही दिनों में बुला लेने का आश्वासन देकर राजधानी चला जाता है दुष्यन्त के वियोग में अत्यन्त अधीर होने के कारण शकुन्तला आश्रम में आये हुए दुर्वासा ऋषि को पहचान नहीं पाती है जिससे क्रुद्ध होकर ऋषि उसे श्राप दे देते हैं कि जिसको स्मरण करती हुई आश्रम में आये हुए मुझ जैसे अतिथि की ओर ध्यान नहीं दे पा रही हो वह याद दिलाने पर भी तुझे नहीं पहचान सकेगा 1 प्रियंवदा शीघ्र जाकर दुर्वासा ऋषि से अनुनय विनय करती है फलस्वरूप ऋषि यह कहते हैं कि मेरा शाप अन्यथा तो नही हो सकेगा किन्तु किसी पहचान की वस्तु दिखाये जाने पर वहअवश्य समाप्त हो जायेगा। शकुन्तला के पास दुष्यन्त की नामांकित अंगूठी है अत: वह उसे दिखाये जाने पर अवश्य पहचान लेगा इस आशा से वह इस शाप वृत्तान्त को वे दोनों सखियां किसी को भी नहीं बताती हैं। इसी बीच तीर्थ यात्रा से लौटे हुए महर्षि कण्व को आकाशवाणी के द्वारा शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह और शकुन्तला के गर्भवती होने की सूचना मिलती है। महर्षि कण्व इस विवाह का अनुमोदन करते हैं ओर शकुन्तला को उसके पति के पास भेजने का विचार करते हैं। शकुन्तला की विदाई की तैयारी होने लगती है। वन के वृक्षों द्वारा उसको वस्त्राभूषण प्रदान किये जाते हैं। शकुन्तला अपनी प्रिय सखियों ,लताओं,वृक्षों, वन मृगों आदि से विदाई लेती हैं इसी समय महर्षि कण्व शकुन्तला को पतिगृह के लिए उपयुक्त आदर्श शिक्षा और राजा के लिए सन्देश देते हैं । शकुन्तला आश्रम से विदा होती है उसके साथ गौतमी,शारंगरव और शारद्वत जाते हैं। शकुन्तला को पतिगृह भेजकर महर्षि कण्व परम शान्ति का अनुभव करते हैं।

पंचम अंक में गौतमी,शारंगरव और शारद्वत शकुन्तला के साथ दुष्यन्त के राजदरबार में पँहुचते हैं। अभिज्ञान के खो जाने के कारण राजा दुर्वासा के शाप की अवस्था से मुक्त नहीं हो पाता है अतएव शकुन्तला के साथ विवाह वृत्तान्त को वह मिथ्या बतलाता है। तपस्वियों और राजा के मध्य आवेशपूर्ण बातचीत होती है परन्तु राजा शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता है। अन्ततोगत्वा राजा का पुरोहित कहता है कि आपके विषय में ऐसा कहा गया है कि आपके चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा यदि यह चक्रवर्ती पुत्र को जन्म देती हैं तो इन्हें कर लेना अन्यथा नहीं। तब तक के लिए पुरोहित शकुन्तला को अपने घर में रखने के लिए प्रस्ताव करता है जिसे राजा स्वीकार कर लेता है 1 तपस्वीजन शकुन्तला को छोडकर चले जाते हैं शकुन्तला विलाप करती है उसी समय एक स्त्री के आकार वाली तेजोमयी ज्योति उसे उठाकर ले जाती है सभी लोग आश्चर्य करते हैं और राजा अत्यन्त खिन्न हो जाता है।

षष्ठ अंक में शकुन्तला की खोयी हुई मुद्रिका धीवर को प्राप्त होती है 1 वह उसे बाजार में बेचने के लिए जाता है किन्तु उस पर राजा का नाम अंकित होने के कारण पुलिस उसे चोर समझ कर पकड लेती है तथा निर्णय के लिए राजा के समीप ले आते हैं राजा उस अंगूठी

को लेकर धीवर को पुरस्कृत करते हुए उसे मुक्त कर देते हैं। इस अंगूठी को देखकर राजा को शाप के कारण भूली हुई घटनायें पुन: याद आ जाती हैं। तब राजा को शकुन्तला वियोग से पीडा होती है। तभी मेनका की सखी सानुमती राजा स्थिति ज्ञात करने के लिए प्रच्छन्न रूप से प्रमदवन में प्रकट होती है। वहाँ राजा शकुन्तला के अधूरे चित्र को पूरा करता है। राजा के हृदय में शकुन्तला के प्रति प्रेम को देख कर सानुमती अत्यधिक प्रसन्न होती है। इसके पश्चात प्रतिहारी आकर राजा को मन्त्री का एक पत्र देती है जिसमें लिखा है कि धनमित्र नामक एक व्यापारी समुद्र में डूब गया सन्तानहीन होने के कारण उसकी सम्पत्ति राजकोष में मिला ली जायेगी। इसे पढ कर स्वयं सन्तानहीन होने के कारण राजा अत्यन्त दुखी होता है और मूर्च्छित हो जाता है। इसी बीच इन्द्र का सारथि मातलि का आगमन होता है वह राजा को इन्द्र का सन्देश देता हे कि दैत्यों के संहार हेतु इन्द्र ने उन्हें बुलाया है, राजा इन्द्र के सहायतार्थ स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है।

सप्तम अंक में राजा युद्ध में राक्षसों पर विजय प्राप्त करता है। इन्द्र अत्यन्त आदर के साथ राजा दुष्यन्त को स्वर्ग से विदा करते हें। राजा दुष्यन्त लौटते समय हेमकूट पर्वत पर महर्षि मारीचि के आश्रम को देखते हैं। इसी समय राजा आश्रम में एक होनहार बालक को सिंह के बच्चे के दाँत गिनने का प्रयास करते हुए देखते हैं। राजा उसके पराक्रम को देखकर बहुत प्रभावित होता है और उसे पुत्र के समान प्रेम करने लगता है। राजा को तपस्विनी द्वारा यह ज्ञात होता है कि यह बालक पुरूवंश का है और इसकी माता का नाम शकुन्तला है 1 अपराजिता नामक औषधि के द्वारा दुष्यन्त को यह ज्ञात हो जाता है यह बालक उसका ही पुत्र है।इसी बीच वियोग व्यथित शकुन्तला आकर राजा को प्रणाम करती है। राजा शकुन्तला से क्षमा क्षमा माँगता है 1 राजा दुष्यन्त, शकुन्तला एवं भरत महर्षि मारीचि के दर्शन के लिए जाते हैं। महर्षि मारीचि दुर्वासा श्राप के कारण राजा को निर्दोष बताते हैं तत्पश्चात् वे उन्हें आशीर्वाद देते हैं। राजा शकुन्तला तथा पुत्र भरत के साथ इन्द्र के रथ पर बैठकर राजधानी को प्रस्थान करते हैं। यहीं पर भरतवाक्य के साथ नाटक की सुखद एवं मंगलमयी परिसमाप्ति होती है।

अभ्यास प्रश्न 1. —

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए —

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक का सारांश लिखिए।
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक का सारांश लिखिए।

2.4 चरित्र चित्रण

नाटक में प्रयुक्त पात्रों के विचार कार्यप्रणाली उनके स्वभाव एवं स्वरूप के बारे में वर्णन करना उस पात्र का चरित्र चित्रण कहलाता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के नायक दुष्यन्त , नायिका शकुन्तला एवं महर्षि कण्व का चरित्र चित्रण इस प्रकार है —

2.4.1 दुष्यन्त

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक पुरूवंशोत्पन्न राजा दुष्यन्त है । दुष्यन्त धीरोदात्त नायक है। शरूपककार **आचार्य धनंजय** ने धीरोदात्त का लक्षण इस प्रकार किया है —

महासत्त्वोऽतिगम्भीर: क्षमावानविकत्थन: ।
स्थिरौ निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढवृत: ।।

अत: वह बलिष्ठ, पराक्रमी, मनोहर आकृतिवाला,स्थिर, विवेकी एवं दृढव्रती है।

आदर्श राजा —

दुष्यन्त एक आदर्श, पराक्रमी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ राजा है। वह अपनी प्रजा के साथ—साथ तपोवन की रक्षा में भी तत्पर रहता है। भ्रमर द्वारा पीडित शकुन्तला के सहायतार्थ पुकारे जाने पर वह कहता है कि पुरूवंशीयो के शासक होने पर कौन अविनय का आचरण करता है। राजा दुष्यन्त अपनी प्रजा से उचित कर ही ग्रहण करता है। विदूषक जब उससे तपस्वियों से कर लेने को कहता है तो वह कहता है कि यह तपस्वी तो मुझेविशेष प्रकार का कर देते हैं। सामान्य प्रजा से प्राप्त कर तो नष्ट हो सकता है किन्तु तपस्वी हमें अपनी तपस्या का छठा भाग प्रदान करते हैं जिसका कभी भी विनाश नहीं होता है। दुष्यन्त की वीरता भी प्रशंसनीय है उसकी वीरता के कारण ही इन्द्र भी उसे दानवों से युद्ध करने के लिए बुलाते हैं।

आकर्षक व्यक्तित्व —

दुष्यन्त सुन्दर हृष्ट पुष्ट एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाला युवक है।उसका शारीरिक गठन एवं सौन्दर्य सभी को प्रभावित कर देता है। दुष्यन्त को देखकर ही प्रियंवदा कहने लगती है — **'चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते'।**

आदर्श प्रेमी —

दुष्यन्त एक आदर्श प्रेमी है। मालिनी नदी के किनारे वेतस् कुंजों में शकुन्तला को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है और कहता है कि '**अये लब्धं नेत्र निर्वाणं '।** षष्ठ अंक में मुद्रिका के प्राप्त हो जाने पर वह निरन्तर शकुन्तला को स्मरण करता हुआ पश्चात्ताप की अग्नि में जलता है। नाटक के आरम्भ में दुष्यन्त एक कामुक व्यक्ति के रूप में उपस्थित होता है किन्तु नाटक के अन्त तक उसका प्रेम पवित्रता की चरम सीमा को प्राप्त करता है। शकुन्तला से प्रेम करने के कारण वह मृगों को नही मारता है क्योंकि शकुन्तला को मृग अत्यन्त प्रिय है। उसके क्रोध को शान्त करने के लिए वह उसके पैरों पर गिरता है क्योंकि प्रेम में समर्पण की भावना प्रधान होती है।

चित्रकला प्रेमी —

दुष्यन्त एक अच्छा चित्रकार भी है। उसके द्वारा बनाये गये शकुन्तला के चित्र को देखकर सानुमती मुग्ध हो जाती है ओर कहती है ' **अहो ! एषा राजर्षेनिपुणता** । शकुन्तला और उसकी सखियों के चित्र को बार बार तूलिका से ठीक करते हुए भी वह सन्तुष्ट नहीं होता है।

संगीतज्ञ —

दुष्यन्त संगीत मर्मज्ञ भी है। महारानी हंसपादिका के गीत को सुनकर वह कहने लगता है कि' अहो रागपरिवाहिनी गीति: '। यह सुनकर विदूषक आश्चर्यचकित होता है। राजा हंसकर कहता है कि महारानी हंसपादिका उपालम्भित कर रही हैं।

विनीत एवं मृदुभाषी —

दुष्यन्त अत्यन्त विनम्र एवं मधुरभाषी है। प्रियंवदा उसके मधुर भाषण की भूरि—भूरी प्रशंसा करती है। तपोवन में ऋषियों के द्वारा आखेट के लिए मना किये जाने पर वह उनकी आज्ञा को विनम्रता से स्वीकार कर लेता है।

तपोवन में वह राजसी वेषभूषा में प्रवेश न करके सामान्य जन की तरह प्रवेश करता है यह उसकी विनम्रता का परिचायक है।

वात्सल्य हृदय —

सन्तानहीन होने पर भी मारीचि के आश्रम में सिंह शावक के साथ खेलते हुए बालक को देखकर दुष्यन्त का हृदय पुत्र प्रेम से भर उठता है। राजा को बालक अत्यन्त प्रिय लगता है और वह कहता है कि वह अत्यधिक भाग्यशाली लोग होते हैं जिनकी गोद बालकों के रजकणों से मलिन होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दुष्यन्त एक श्रेष्ठ राजा, आदर्श प्रेमी, ललित कलाओं से युक्त ,विनम्र, मृदुभाषी, पराक्रमी नायक है।

2.4.2 शकुन्तला —

शकुन्तला अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की नायिका है। वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है। उसका पालन पोषण महर्षि कण्व के द्वारा तपोवन के प्राकृतिक वातावरण में किया गया है। अत: काश्यप उसे पुत्री मानते हैं और वह भी काश्यप को ही अपना पिता मानती है। वह अनुपम सुन्दरी है तथा आदर्श गुणों से युक्त है। उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

अप्रतिम सुन्दरी —

शकुन्तला का सौन्दर्य अनिर्वचनीय है। उसके अलौकिक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर दुष्यन्त कहता है कि 'मानषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभव: '। उसका शरीर प्रकृति के समान ही मनोहर है **'इदं किलाव्याजमनोहरं वपु:** 'उसका अंग प्रत्यंग पुष्प के समान सुन्दर है —

'' अधर: किसलयराग: कोमलविटपानुकारिणौ बाहु:
कुसुमिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धं।1

शकुन्तला वल्कल वस्त्रों में भी अत्यधिक सुन्दर प्रतीत होती है सत्य ही कहा गया है सुन्दर वस्तुओं को किसी अलंकरण की आवश्यकता नहीं होती है **' किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिर्नाम '।**

प्रकृति प्रेम —

शकुन्तला और प्रकृति एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं। वह प्रकृति की गोद में पली बढ़ी है। प्रकृति के विभिन्न अंगों के प्रति उसका स्वाभाविक अनुराग है। वह वृक्ष सिंचन से पहले

स्वयं जल नहीं पीती है आभूषण प्रिय होने पर भी वह उनके पत्तों को नहीं तोडती है और पहली बार फूल आने पर वह उसका उत्सव मनाती है। इसी कारण महर्षि कण्व शकुन्तला की विदाई के समय आश्रम के वृक्षों एवं लताओं से कहते हैं कि शकुन्तला अपने पतिगृह जा रही है तुम सब इसको आज्ञा दो।

मुग्धा नायिका —

शकुन्तला मुग्धा नायिका है। राजा दुष्यन्त उसको देखकर कहते हैं कि **'' मुग्धासु तपस्विकन्यासु ''।** दुष्यन्त के प्रति उत्पन्न प्रेम को वह संकोच वश अपनी प्रिय सखियों से भी व्यक्त नहीं कर पाती है। राजा के द्वारा प्रणयानुरोध करने पर भी वह लज्जावश तथा अपने पिता की अनुमति के बिना आत्मसमर्पण करने के लिए उ़द्यत नहीं होती है।

आदर्श सखी —

शकुन्तला का चरित्र एक आदर्श सखी का है। अपनी सखियों के परिहास करने पर वह बुरा नहीं मानती हैं और वह उनसे कोई बात छिपाती नहीं है। अनुसूया और प्रियंवदा से परामर्श करके ही वह कोई कार्य करती है। दुष्यन्त के द्वारा परिणय के लिए आग्रह करने पर वह कहती है कि मुझेसखियों से पूछ लेने दीजिए। शकुन्तला के आश्रम से विदाई के पश्चात् दोनों सखियां व्याकुल हो जाती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वह एक आदर्श सखी है।

पतिव्रता नारी —

शकुन्तला उच्चकोटि की पतिव्रता पत्नी है। दुष्यन्त का वियोग उसके लिए असहनीय है। दुष्यन्त के अपने राज्यवापस चले जाने पर वह सुध बुध खो बैठती है। पंचम अंक में दुष्यन्त के द्वारा ना पहचाने जाने पर भी वह उससे विमुख नहीं होती है। वह दुष्यन्त को दोष न देकर अपने भाग्य को दोष देती है। मारीचि के आश्रम में वह एक तपस्विनी की भांति रह कर अपने चरित की रक्षा करती है। उसकी इस तपस्या के परिणामस्वरूप उसका अपने पति से मिलन होता है और वह पैरों में गिरकर क्षमा मांगता है तथा आदरपूर्वक अपनी राजधानी ले जाता है।

वात्सल्यमयी —

शकुन्तला नारी है उसका हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण है। एक मृगशावक जिसकी माँ जन्म के पश्चात् मर गई उसको शकुन्तला ने सांवा खिलाकर पुत्रवत् पाला है। वह एक आदर्श माँ है उसने एक अत्यन्त पराक्रमी चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शकुन्तला के रूप में कालिदास ने ण्क आदर्श भारतीय नारी का प्रेममय चित्र अंकित किया है और इसमें वह पूर्ण रूप से सफल हुए हैं।

2.43 कण्व

महर्षि कण्व का चरित्र अनुकरणीय एवं आदर्श चरित है। उनको 'काश्यप' नाम से भी जाना जाता है। वह एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा महापुरूष है। उनके चरित्र की निम्नलिखित विशेषतायें हैं —

आश्रम के कुलपति —

मालिनी नदी के तट पर एक विशाल आश्रम है। उसके कुलपति महर्षि कण्व है।

महान तपस्वी —

महर्षि कण्व अग्निहोत्री है । अपनी तपस्या के प्रभाव से ही वह वह शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य को जानकर उसकी शान्ति हेतु सोमतीर्थ जाते है । महर्षि कण्व के आश्रम में यज्ञशाला है वह श्रौतविधि से हवन करने वाले विप्रवर हैं । कण्व ऋषि के तप के प्रभाव से ही पति के घर जाती हुई शकुन्तला को आश्रम के वृक्ष वस्त्र और आभूषणादि प्रदान करते हैं ।

वात्सल्य हृदय —

यद्यपि शकुन्तला कण्व की धर्मसुता है तथापि वह उसे अपनी कन्या से भी अधिक प्रेम करते हैं । तपस्वी होकर भी उनका हृदय वात्सल्य रस से परिपूर्ण है । शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वह एक गृहस्थ से भी अधिक व्याकुल हो कर सामान्य पिता की भांति रूदन करते हैं—

'' यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठतया
कण्ठ: स्तम्भितवाष्पवृतिकलुषाश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकस:
पीड्यन्ते गृहिण: कथं नु तनयाविश्लेषदु:खैर्नवै: ।।

शोकाकुलित होकर वह अनुसूया एवं प्रियंवदा से कहते हैं कि —**'अनुसूये! प्रियंवदे गता वां सहचरी'।**

लौकिक व्यवहार के ज्ञाता —

महर्षि होते हुए भी कण्व सांसारिक व्यवहार को भली भांति जानते हैं । पतिगृह जाती हुई शकुन्तला को **'शुश्रूस्व गुरून्** 'आदि के द्वारा दिया हुआ उपदेश तथा दुष्यन्त के पास भेजा हुआ सन्देश और विशेष रूप से उनका निम्न कथन इसके स्पष्ट प्रमाण हैं — **'भागयायत्तमत: परं न खलु: तद्वाच्यं वधूबन्धुभि:' ।**

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महर्षि कण्व तपस्वी, दयालु,पितृ स्नेह से परिपूर्ण,सवर्ज्ञ एवं लौकिक व्यवहार के ज्ञाता हैं ।

अभ्यास प्रश्न 2. —

निम्नलिखित प्रश्नों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए ।

क. दुर्वासा कौन थे

(1) शकुन्तला के पिता (2) विदूषक
(3) मन्त्री (4) ऋषि

ख. शकुन्तला को शाप किसने दिया

(1) कण्व (2) दुर्वासा
(3) मारीचि (4) शारंगरव

ग. अभिज्ञानशाकुन्तल क्या है

(1) कथा (2) नाटक

(3) चम्पूकाव्य (4) प्रकरण

घ. अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका कौन है

(1) अनुसूया (2) प्रियंवदा

(3) शकुन्तला (4) सानुमती

ङ. अभिज्ञानशाकुन्तल में कितने अंक है

(1) 4 (2) 6

(3) 7 (4) 5

2.5 अभिज्ञानशाकुन्तल का नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में नाटक का लक्षण इस प्रकार दिया है —

' नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसन्धिसमन्वितम् ।
पंचाधिका दशपरास्तत्रांका: परिकीर्तिता: ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्त: प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मत: ।।
एक एव भवेदंगी श्रंगारो वीर एव वा ।
अंगमन्ये रसा: सर्वे कार्यो निर्वहणऽदभुत: ।।

अर्थात् नाटक प्रसिद्ध कथानक तथा पांचसन्धियों से युक्त होता है । इसमें कम से कम पांच अधिक से अधिक दस अंक होते हैं उसका नायक प्रसिद्ध वंश का धीरोदात्त,प्रतापी,राजर्षि होता है । वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनो प्रकार के गुणों से मिश्रित तथा गुणवान् हो । नाटक में श्रंगार या वीर रस में से कोई एक रस मुख्य तथा अन्य रस सहायक होते हैं ।नाटक के अन्तिम भाग में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए ।

अभिज्ञानशाकुन्तल में नाटक के उपरोक्त लक्षण तथा अन्य नाट्यशास्त्रीय नियम घटित होते हैं इसलिए हम इसे नाटक मानतें हैं । जैसे— शाकुन्तल का कथानक प्रख्यात है । यह इतिहास एवं पुराण में प्रसिद्ध है । शाकुन्तल की मूलकथा महाभारत के आदिपर्व तथा पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में प्राप्त होती है । अभिज्ञानशाकुन्तल में सात अंक हैं ।नाट्यलक्षण के अनुसार ही यह अर्थप्रकृति, अवस्था, और पंचसन्धि से युक्त है।पांच अर्थप्रकृति निम्नलिखित है 1 बीज 2 बिन्दु 3 पताका 4 प्रकरी 5 कार्य ।

बीज—

अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में वैखानस ने राजा को आश्रम में जाने के लिए उत्साहित किया और राजा ने उसे स्वीकार किया ये दोनों बातें मिलाकर पूरा बीज है ।

बिन्दु —

शाकुन्तल के द्वितीय अंक में मृगया के वृत्तान्त के कारण मूल कथा विच्छिन्न होने लगती है। तब राजा की सखे माधव्य ! अनवाप्तचक्षु: फलोऽसि । येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम् से

लेकर शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि तक की उक्ति टूटती हुई कथा को एक बार फिर जोड देती है अत: वही नाटक का बिन्दु है।

पताका —

दुर्वासा के शाप की पृष्ठभूमि वाला अंगूठी का वृत्तान्त इस कथा की पताका है क्योंकि अंगूठी मुख्य फल की प्राप्ति कराने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। उसी को देखकर राजा को गान्धर्व विवाह का वृत्तान्त याद आता है और अन्त में शकुन्तला को प्राप्त कर लेता है।

प्रकरी —

शाकुन्तल में मेनका के द्वारा शकुन्तला के वियोग में दुष्यन्त की मानसिक अवस्था को जानने के लिए भेजी गई अप्सरा की कथा तथा इन्द्र के द्वारा दुष्यन्त को लाने के लिए भेजे गये उनके सारथि मातलि का वृत्तान्त इस नाटक की प्रकरी है।

कार्य —

नाटक के सप्तम अंक में दुष्यन्त एवं शकुन्तला का स्थायी मिलन होता है। यह मिलन ही इस नाटक का कार्य है। अवस्थायें पांच है 1 आरम्भ 2 प्रयत्न 3 प्राप्त्याशा 4 नियताप्ति 5 फलागम

आरम्भ —

शाकुन्तल के प्रथम अंक में राजा की 'अपि नाम कुलपते:' इत्यादि उक्ति से राजा की शकुन्तला के प्रति उत्सुकता प्रकट होती है। उसी अंक में आगे ' कथमिमं जनं प्रेक्ष्य: ' इत्यादि उक्ति से राजा के प्रति शकुन्तला की उत्सुकता प्रकट होती है। अत: राजा की उपर्युक्त उक्ति से शकुन्तला की इस उक्ति तक आरम्भ नामक अवस्था है।

प्रयत्न —

द्वितीय अंक में 'तपस्विभि: कश्चित परिज्ञातोऽस्मि' इत्यादि उक्ति से यत्न आरम्भ होता है और वह तृतीय अंक तक चला जाता है। दोनों पक्षों में एक दूसरे की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है। नाटक के इसी अंश को प्रयत्न नामक अवस्था कहा जा सकता है।

प्राप्त्याशा —

नाटक के चतुर्थ एवं पंचम अंक में प्राप्तयाशा नामक अवस्था है। राजा के द्वारा प्रस्थान से पूर्व शकुन्तला को शीघ्र ही राजधानी बुलाने के लिए दूत भेजने का आश्वासन से मिलन की संभावना , दुर्वासा के शाप के कारण मिलन में विघ्न ,अभिज्ञान को दिखाकर शाप के प्रभाव को नष्ट किये जाने के उपाय से मिलन की फिर संभावना,अंगूठी के नदी में गिर जाने तथा राजा के द्वारा शकुन्तला को न पहचानने से विघ्न होते हैं। अत: उपाय और विघ्न के बीच प्राप्तयाशा है।

नियताप्ति —

पंचम अंक के अंकावतार में अंगूठी के मिल जाने पर कार्य सिद्ध के मार्ग की सब बाधायें दूर हो जाती हैं। अत: यह अंक की नियताप्ति अवस्था कही जा सकती है।

फलागम—

सप्तम अंक में दुष्यन्त एवं शकुन्तला के स्थायी मिलन से उद्देश्य की पूर्णतया प्राप्ति हो जाती है इसीलिए फलागम नामक अवस्था है।

सन्धियाँ —

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण सन्धि का प्रयोग हुआ है।

नेता —

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक दुष्यन्त प्रख्यात पुरूवंश उत्पन्न प्रतापी धीरोदात्त राजा है। वह दिव्य गुणों से युक्त है। देवराज इन्द्र भी अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिए उनसे सहायता लेते हैं।

रस —

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अंगी रस (प्रधान रस) श्रंगार है। श्रंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण इसमें किया गया है। वीर, हास्य, करूण, अद्भुत, एवं भयानक आदि रसों को अंग (सहायक) के रूप में सुन्दर प्रयोग किया गया है।

अभ्यास प्रश्न 3. —

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक दुष्यन्त है। ( )
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् का प्रधान रस वीर है। ( )
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक पुरूवंश का है। ( )
4. नाटक में प्रयुक्त होने वाली सन्धियों की संख्या सात होती है। ( )
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथानक प्रख्यात है। ( )

2.6 सारांश

इस इकाई में आपने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का अध्ययन किया और यह जाना कि इसकी मूल कथा महाभारत के आदि पर्व से ली गयी है। शाकुन्तलम् की कथावस्तु से परिचित हुए। नाटक के नायक दुष्यन्त , नायिका शकुन्तला एवं महर्षि कण्व की चारित्रिक विशेषताओं से परिचित हुए। इसके साथ ही नाटक की कसौटी पर यह कितना खरा उतरता है इसका ज्ञान भी प्राप्त किया। नाटक में प्रयुक्त होने वाली पारिभाषिक शब्दावली का भी अध्ययन किया।

2.7 शब्दावली

अरण्य	जंगल
तनया	पुत्री
वैक्लव्यं	व्याकुलता
परिहास	हँसी मजाक

अनिर्वचनीय	जिसके बारे में कुछ कहा न जा सके
सिंह शावक	शेर का बच्चा
उपालम्भ	उलाहना
तूलिका	कूँची
मृग	हिरण
मुद्रिका	अंगूठी

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर —

अभ्यास प्रश्न 1 —

1. पृष्ठ संख्या 3 पर देंखें।
2. पृष्ठ संख्या 5 पर देंखें।

अभ्यास प्रश्न 2 —

क (4) ख (2) ग (2) घ (3) ङ (3)

अभ्यास प्रश्न 3 —

1. हाँ 2. नहीं 3. हाँ 4. नहीं 5. हाँ

2.9 सन्दर्भ पुस्तक सूची —

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
2. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तारिणीश झा ,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डा0 शिवबालक द्विवेदी , ग्रन्थम प्रकाशन।

2.10 सहायक व उपयोगी पुस्तकें —

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
2. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तारिणीश झा ,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डा0 शिवबालक द्विवेदी , ग्रन्थम प्रकाशन।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न —

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथासार लिखिये।
2. दुष्यन्त का चरित्र चित्रण कीजिये।
3. शकुन्तला का चरित्र चित्रण कीजिये।
4. कण्व का चरित्र चित्रण कीजिये।
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन कीजिये।

इकाई .3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक श्लोक संख्या 1 से 15 तक
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
3.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक श्लोक संख्या 16 से 30 तक
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

नाट्यशास्त्र के इतिहास में अभिज्ञान शाकुन्तलम् एक अनुपम रचना है। इसके पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि नाटक क्या है, इसका उद्भव एवं विकास कैसे हुआ ? नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार द्वारा बड़े ही कलात्मक ढंग से राजा दुष्यन्त को रंग मंच पर लाकर प्रवेश कराया गया है,जहा तपस्वी कन्या शकुन्तला को देखकर राजा उसके प्रति आकर्षित होता है तथा उसके सम्बन्ध मे सत्य का अन्वेषण करता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से इन सब बातों का विश्लेषण प्रस्तुत है

उस इकाई के अध्यनोपरान्त आप जान सकेगें कि कालिदास शैव धर्म के थे साथ ही अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रथम अंक की विशेषतावों, कालिदास की नाट्य शैली आदि के सम्बन्ध मे बतला सकेगें।

3.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बतला सकेंगे कि—

- इस नाटक का मंगलाचरण किस कोटि का है।
- संवादो के अध्ययन से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- इस नाटक के अध्ययन से काव्य से प्रायोजनों की प्राप्ति कर सकेंगे।
- अभिज्ञान शाकुन्तलम् प्रथम अंक में किस छन्द की बहुलता है।
- अभिज्ञान शाकुन्तलम् प्रथम अंक में किन-किन रसों का प्रयोग है।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक की क्या विशेषता है।

3.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : प्रथम अंक श्लोक संख्या 1 से 15 तक

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या बहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विद्यतः श्रृतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्रणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ।1।

अन्वय- या स्त्रष्टुः आद्या सृष्टिः,या विधि हुतं हविः वहति,या च होत्री, ये द्वे कालं विद्यत्तः याश्रृतिविषयगुणा विश्वं व्याप्यस्थिता, यां सर्वबीजप्रकृतिः इति आहुः यया प्राणिनः प्राणवन्तः,ताभिःप्रत्यक्षाभिः अष्टाभिः तनुभिः प्रपन्नः ईशः वः अवतु ।।1।।

अर्थ - जो ब्रहमा की प्रथम रचना है, (अर्थात् जल रूपी मूर्ति) जो नियमोक्त प्रकार से दृव्य पदार्थो को ढोने वाली है, (अर्थात् अग्नि रूपी मूर्ति) जो दोनो काल (समय) को विभाजित करते है, (अर्थात् सूर्य और चन्द्र रूपी मूर्ति) जो श्रवण का विषय (शब्द तथा शब्द का गुण आकाश) पूरे विश्व को आच्छादित किया है, (अर्थात् आकाश रूपी मूर्ति) जिसको सभी प्रकार के बीजो का उद्गम माना गया है, (अर्थात् पृथ्वी रूपी मूर्ति)और जिसके द्वारा सभी प्राणी जीवन धारण

करते है (अर्थात् वायु रूपी मूर्ति) उन प्रत्यक्ष अष्ट मूर्तियों से परिपूर्ण भगवान शिव आप सभी दर्शको एवं सामाजिको की रक्षा करें।

व्याख्या – महाकवि कालिदास परम्परानुसार ग्रन्थारम्भ को प्रथमतः भगवान शिव की आठ मूर्तियेां को बतलाते हुऐ त्रिविध मंगलाचरणों में आर्शीवादात्मक मंगलाचरण का पाठ किया है जिसको नान्दी पाठ भी कहते है।इन आठ मूर्तियों का वर्णन विष्णु पुराण तथा वायु पुराण मे भी प्राप्त होता है। जो निम्न है।

1 - सूर्यो जलं महि वहिर्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राहमणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः ।। विष्णु पुराण

2 - भूमिरापोऽनलो वायुरात्मा व्याम रविः शशिः इत्यष्टों सर्वलोकाना प्रत्यक्षा हर मूर्तयः ।। वायुपुराण

प्रस्तुत श्लोक में "या" पद सर्वनाम है जो भगवान शंकर के लिए आया है। स्त्रष्टुः-ब्रहमा की , आद्या सृष्टि - पहली सृष्टि। ब्रहमा की पहली रचना जल है, जिसका वर्णन मनुस्मृति और तैतिरीय ब्रहमण में भी प्राप्त होता है। विधि हुतं हवि वहति - विधि पूर्वक किये गये दृव्य पदार्थो को ढोने वाली अर्थात् अग्नि देवों के पास हवन की गयी सामग्री को पहुचाने का कार्य करता है। या च होत्री-और भगवान शिव की यजमान रूपी मूर्ति। ये द्वे कालं विधन्तः- ये दो मूर्तिया जो काल का विभाजन कर दिन और रात्रि का निर्माण करते है अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र रूपी मूर्ति । श्रुति विषयगुणा या विश्वं व्याप्य स्थिता - श्रुति का विषय शब्द तथा शब्द का गुण आकाश जो विश्व को परिव्याप्त का स्थित है, अर्थात् आकाश रूपी मूर्ति याम् सर्वबीजप्रकृतिः इति आहुः जिसको लोग सभी प्रकार के बीजो का मूल कारण मानते है अर्थात् पृथ्वी रूपी मर्ति।यया प्राणिनः प्राणवन्तः- जिसके द्वारा जीव अपना जीवन धारण करते है अर्थात् वायु रूपी मूर्ति। ताभि उन, प्रत्यक्षाभिः प्रत्यक्ष प्रमाणों से ज्ञेय, अष्टामिः तनुभिः- आठ मूर्तियों से, प्रपन्नः संयुक्त, ईशः- भगवान शिव,व अवतु आप लोगों (समायिको) की रक्षा करे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:- सृष्टा= सृज+तृच+कर्तरि । आद्या= आदौ भावा आद्या आदि =यत्+टाप । विधिना हुतम्(तृ0त.) हु+क्त=हुतम् । होत्री =हु+तृच्+ङीप=श्रुति श्रूयते अनया इति श्रुति श्रु+क्हिन्। प्राणिनः = प्राणाः सन्ति एषाम् इति प्राण +इति।प्राणवन्तः प्राण+मतुप्। प्रपन्नः=प्र+पद्+क.। अवत्=अव्+लोट्+तु। (नान्द्यन्ते) -नान्दी पाठ (मंगलाचार)के पश्चात्।

सूत्रधार:-(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये,यदि नेपथ्यविद्यानमवसितम् इतस्तावदागम्यताम् ।

सूत्रधार.- (नेपथ्य की ओर देखकर)आर्ये यदि वेश धारण करने का कार्य पूर्ण हो गया हो तो यहॉ आओ।

नटी:- (प्रविष्य) आर्य पुत्र,इयमास्मि नटी (प्रवेश कर) आर्य पुत्रायह मैं (उपस्थित) हूँ।

सूत्रधार:-आर्ये अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्।अथ खलु कालिदासग्रथित् वस्तुनाभिज्ञानशाकुन्तलनाम द्येयेन नवेन नाटकेनोप स्थात व्यमस्याभिः।तन्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः।

सूत्रधार- आर्ये। यह विद्वानों से भरी हुयी सभा है ।आज हमे कालिदास द्वारा विरचित कथावस्तु वाला अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामक नवीन नाटक के साथ हमे उपस्थित होना है ।इसलिए प्रत्येक पात्र के अभिनय कला के सफलता के विषय में सावधान रहना है ।

नटी:-सुविहित प्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते ।

नटी- आपके सम्यक् रूप से की गयी व्यवस्था के कारण कोई त्रुटि नही हो सकती ।

सूत्रधार:- आर्ये! कथयामि ते भूतार्थम्-

सूत्रधार- आर्ये मैं तुमसे यथार्थ ही कहता हूँ ।

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।

बलवदपि शिक्षितानांमात्मन्यप्रत्ययं चेत: ।। 2

अर्थ- विद्वानों को जब तक सन्तोष न हो जाये तब तक मैं अभिनय कला को कृतार्थ नहीं मानता। सबलता से भी शिक्षितो का अन्त:करण अपने (विषय)में विश्वासरहित होता है **। 2।।**

तदिदमेव तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम्।सम्प्रतिः हि आर्ये ।

इस (विक्रमादित्य की)सभा के श्रवण को सुख पहुचाने के अलावा क्या कार्य है? तो शीघ्र आये हुये इस उपयोग करने योग्य ग्रीष्म ऋतु को ही आधार बनाकर गीत सुनाओ। क्योंकि इस समय-

सुभगसलिलावगाहाः पाटल संन्सर्ग सुरभिवनवाताः।

प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।3।।

अन्वय:- सुभगसलिलावगाहाः, पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः, प्रच्छायसुलभनिद्राः, दिवसा: परिणाम रमणीया: ।

अर्थ:-जल मे स्नान करना सुन्दर लगता है। पाटल (गुलाब) पुष्पो के सन्सर्ग से बहने वाला वायु मनोहर है। घनी छाया में निद्रा सरलता से आ जाती है । ऐसे दिन की संध्या अत्यधिक सुन्दर लगती है।

व्याख्या:-सुभग-मनोहर,सुन्दर।सतिला बहागाः =जल मे स्नान करने योग्य, पाटल संसर्ग= पाटल (गुलाब) के संसर्ग से सुरभिवनवाहा =सुगन्धित वायु वाला, प्रचछाय =घनी छाया में सुलभ निद्रा =नीद आ जाने वाल, दिवसा =दिन, परिणामरमणीयाः संध्या का समय सुन्दर लगता है । आर्या छन्द है । परिकर,स्वभावोक्ति एवं अनुप्रास अलंकार है ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:- सुभगसलिलावगाहाः = सुभगः सलिले अवगाहः येषु ते। अव+गह+घ´ =अवगाहः । पाटलसंसर्गसुरभि वनवाता =पाटलस्य संसर्गः तेन सुरभयः पाटल संसर्ग सुरभयः बनवाता येषु ते पाटल संसर्ग सुरभि बनवाता । रमणीया रम् + णिच् +अनीयर ।

नटी:- तथा (इतिगायति)

नटी- ठीक है (गीत गाती है)

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरै: सुकुमारकेसरशिखानि ।

अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ।।4।।

अन्वय:- दयमानाः प्रमदा भ्रमरै: ईषत् ईषत् चुम्बितानि सुकुमारकेसरशिखानि शिरीषकुसुमानि अवतंसयन्ति।

अर्थः-मतवाली युवतियॉ दया करती हुई भ्रमरों के द्वारा थोडा-थोडा चुभो गये कोमल केसरो के अग्रभाग वाले शिरीष के पुष्पों को कान का आभूषण बना रही है।

व्याख्याः- दयमाना: कृपा करती हुयी , दयामयी ,प्रमदा = रूप एवं यौवन के कारण मतवाली बनी हुयी स्त्रियॉ। भ्रमरे =भौरों द्वारा, ईषत् = ईषत् कुछ-कुछ, चुम्बितानि =चुने गये । सुकुमार केसर शिखानि = कोमल केसर के अग्रभाग वाले । शिरीषकुसुमानि = शिरीष के पुष्पो को । अवतंसयान्ति= कानो का आभूषण बना रही हे। इसमे नारी सुलभ कोमलता का वर्णन है इसमें उद्गाथा छन्द है तथा काव्यलिंग नामक अलंकार है।

व्याकरणात्क टिप्पणी:-

(सुकुमारकेसरशिखानि = सुकुमाराः केसराणां शिखाः येषां तानि तत्पुरूष बहुब्रीहि (समास)अवतंसयन्ति= अवतंस+णिच्+लट् ।

सूत्रधारः- आर्ये,साधु मीतम्।अहो रागबद्वचित्तवृत्तिरा लिखित इव सर्वतो रंगः।तदिदानीं कतमत्प्रकरणमाश्रित्यैनमारवयामः?

सूत्रधार- आर्ये!अच्छा गीत सुनाया अहा!तुम्हारे गीत के स्वरके प्रभाव से यह रंगशाला चारो ओर चित्रलिखित सी प्रतीत हो रही है।सम्प्रति किस कथा के प्रकरण को लेकर इस सभा को सन्तुष्ट करे ।

नटी- (नन्वार्यमिश्रै:प्रथममेवाज्ञत्रमाभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्व नाटकं प्रयोगेद्वधिक्रियतामिति ।

नटी - आपने प्रारम्भ में ही कहा था कि अभिज्ञानशाकुन्तलम नाम का अपूर्व नाटक खेला जाय ।

सूत्रधार -आर्ये!सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन्क्षणे विस्मतं खलु मया।कुतः।

सूत्रधार आर्ये ठीक स्मरण कराया । मै तो इस समय भूल गया था । क्योंकि -

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः

एष राजेव दुष्यन्तः सारंगेणातिरंहसा ।।5।।

अन्वयः- तव हारिणा गीतरागेण अतिरंहसा सारंगेण एष राजा दुष्यन्त इव प्रसभं हृतः अस्मि।

अर्थः- मैं तुम्हारे गीत के सुन्दर राग के कारण मै वैसे ही बल पूर्वक खीच लिया गया हू, जैसे (बल पूर्वक)दुतगामी मृग के द्वारा राजा दुष्यन्त(खीच लिये गये है)

व्याख्याः- हरिणा के दो अर्थ है- 1. गीत राग के पक्ष में 2. मृग के पक्ष में

1. सम्यक रूप से मन को आकृष्ट करने वाला

2. दुष्यन्त को सेना से दूर ले जाने वाला। प्रभसं हृतः के भी दो अर्थ है 1.अत्यन्त आकृष्ट किया गया 2.बल पूर्वक सेना से ले जाया गया । इस श्लोक में काव्यलिंग तथा उपमा अलंकार है। अनुष्टुप छन्द है ।

(इति निष्क्रान्तौ) दोनो रंग मंच से चले जाते है ।

(प्रस्तावना) - (प्रस्तावना की समाप्ति)

ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन सूतश्च

तदन्तर रथपर आरूढ़ हाथ मे धनुष और बाण लिए हिरण का पीछा करता हुआ राजा सारथि के साथ रंग मंच पर प्रवेश करता है ।

सूत - (राजानं मृग च अवलोक्य) आयुष्मन्।

(सारथि) (राजा और मृग को देखकर)आयुष्मन्-

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।

मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्।। 6।।

अन्वय - कृष्णसारे अधिस्यकार्मुके त्वयि च चक्षुः ददत् मृगानुसारिणं साक्षातपिनाकिनम् पश्यामि इव।

अर्थ - (इस) कृष्णसार (मृग) और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाये हुए आप पर एक साथ दृष्टिपात करता हूँ तो मानो मृग (रूपधारी यज्ञ) का पीछा करते हुए साक्षात् पिनाकधारी भगवान शंकर को देख रहा हूँ।

व्याख्या - कृष्णसारे = कृष्णसार नामक मृग (जो काला और चितकवरा होता है) अधिन्यकार्मुके = चढ़े डोरी वाले धनुष लिए। त्वयी च = आप पर चक्षुः ददत् = दृष्टिडालता हूँ। मृगानुसरिण = मृगा का पीछा करने वाले। साक्षात् पिनाकिनम् = साक्षात पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले अर्थात् भगवान शिव को पश्यामि इव = देखा रहा हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - कृरूणसारः = कृष्णश्च सार: शबलश्च। अधिज्यकार्मुके =अधिगता ज्या इति अधिज्यम्, अधिज्यकार्मुक यस्त से तस्मिन्। ददत् =दा धातु शत् प्रत्यय। (पिनाक भगवान शिव के धनुष का नाम था) प्रस्तुत राजा की अप्रस्तुत शिव से एकत्व की सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। दृष्टी एक है परन्तु दो स्थानो पर उसका सम्बन्ध दिखाये जाने के कारण विषयालंकार भी है। इसमें अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया गया है।

राजा - सूतः दूरममुता सारंगेण वयम् आकृष्टा। अयं पुनरिदानीमपि

राजा सारथि! यह हिरण तो हम लोगो को दूर तक खीच लाया। यह इस समय भी-

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः

पश्चार्धेन प्रविष्ट: शरपतनभयाद भूयसा पूर्वकायम्।

दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्या

पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्या प्रयति ।7।।

अन्वय - पश्य , अनुपतति स्यन्दने मुहुः ग्रीवाभङ्गाभिरामं बद्धदृतिः शरपतन भयात् भूयसा पश्चार्धेन पूर्णकायं प्रतिष्टःश्रमविपृतमुखभ्रांशरभिः अर्थावलीढै: दर्भै: कीर्णवर्त्या उदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरं उर्व्या स्तोक प्रयाति।

अर्थ - देखो पीछे दौड़ते हुए रथ पर बारबार ग्रीवा को मोड़कर मनोहर दृष्टी से देखता हुआ , वाण गिरने के भय से शरीर के पिछले हिस्से में समेटता हुआ, और (दौड़ने) के परिश्रम के कारण खुले मुख से गिरने वाले आधे चबाये गये कुशो से मार्ग को व्याप्र करता हुआ , ऊँचे छलांग लगाने के कारण आकाश मे ज्यादा तथा पृथ्वी पर कम चल रहा है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे भयातुर मृग के स्वाभाविक भावों का वर्णन करते हुए राजा के मुख से कवि कहलवाता है कि (सारथि) पश्य = देखो अनुपतति = पीछे आते हुए, स्यन्दने = रथ पर, मृहुः =बारबार, ग्रीवाभंगामिरामं = गर्दन को मोड़कर सुन्दर ढंग से, दत्तदृष्टि: = एकटक दृष्टि से,

शरपतन भयात् = शरीर के पिछले हिस्से को,पूर्वकायं = अगले शरीर के हिस्से में प्रविष्ट: प्रवेश किया हुआ अर्थात् समेटता हुआ , श्रमवितृतमुखभ्रशिनि: = दौड ने के श्रम के कारण खुले मुख से गिरे हुए, अर्धावलीढै:= आदी चवाये गये , दर्भैः = कुशों को कीर्णवर्त्मा = मार्ग मे व्याप्त काता हुआ, उदग्रप्लुतत्वात् = ऊँचे छलांग लगाने के कारण, वियति = आकाश मे, बहुतर = अत्यतिक, उर्त्या = पृथ्वी पर,स्लोक कम प्रयाति = चल रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अनुपतति = अनु पत् लट् लकार शतृ प्रत्यय = अनुपतन्, तस्मिन। स्यन्दने = स्यन्द् धातु ल्यु कर्तरि । ग्रीवाभंगाभिरामं = ग्रीवायाः भंग (ष.त.) तेन अभिराम साधु इस श्लोक में भयानक रस का वर्णन है तथा स्वाभावोक्ति, गूढोत्प्रेक्षा तथा रसनाकाव्यलिंग अलंकार है। यहाँ स्रग्धरा छन्द हो

तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः सुवृतः। (आश्यर्च पूर्वक) तब यह कैसे मेरे पीछे आते रहने पर भी अत्यन्त प्रयत्न से दिखई पड़ रहा है।

सूत - आयुष्मन! डदधातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो बेगः। तेन मृगएष विप्रकृष्टान्तरः संवृतः। संप्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरास दो भविष्यति ।

सारथि - चिरंजीव ! ऊँची-नीची भूमि के कारण मैने रस्सी खीचकर रथ की तीव्रता को कम कर दी थी। इसी कारण यह हिरण दूर चला गया। अब आप का रथ समतल भूमि पर है अब यह आप के लिए दूर नही होगा।

राजा- तेन हि मुच्चतामभीषवः।

राजा- तो रस्सी ढीली कर दो ।

सूत - यदाज्ञापयत्यायुष्मान् (रथवेगं निरूप्य आयुष्मन! पश्य-पश्य) चिरंजीव देखे-देखे -

मुक्तेषु रश्मिषु निरायत पूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः।।8।।

अन्वय - रश्मिषु मुक्तेषु अमी रथ्याःनिरायतपूर्वकायाः निष्कम्पचामरशिखाः निभृतोर्ध्वकर्णाः आत्मोद्धतैः अपि रजोभिः अलङ्घनीयाः मृगजवाक्षमयाइव धावन्ति।

अर्थ - रस्सी को ढीली कर देने पर ये घोड़े जिनके शरीर का अगला भाग अधिक फैला हुआ हैं चामर (कलेगी) का अगला निश्चल है और कान उपर के तरफ खड़े है अपने ही खुरों द्वारा उडाइ गयी धूल उनपर नही पड पा रही है मानो मृग के गति को न सहन करते हुये दौड़ रहे है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में सारथि दौड़ते हुये घोड़ो की स्वाभाविक अवस्था का चित्रण हुआ है- रश्मिषु = रस्सियों को मुक्तेषु =ढीली किये जाने पर, अमी = यह, रथ्या = रथ के अश्व निरायतपूर्वकायाः = फैले हुये अग्र भाग वाले , निष्कम्पचामरशिखा = निश्चल चामर शिखा वाले, निभृतोर्ध्वकर्णाः = सीधे खडे हये कानो वाले, आत्मोद्धतैः= अपने द्वारा उड़ायी गई, अपि = भी रजोभिः = धूल, अलङ्घनीया = न लांधने योग्य, मृगजवाक्षमयाइव = माना दिरण के तीव्रगतिको न सहते हुये, धावन्ति = दौड़ रहे है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - मुक्तेषुः = मुच्+क्त प्रत्यय। निरायतपूर्वकाया कायस्य पूर्वम् पूर्वकायः, नितरां आयतः पूर्वकरसः येषा ते (बहुबीहि सु0) यहाँ घोड़ो के दौड़ने का स्वाभाविकः वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकर तथा अक्षमया इव मे हेतुत्प्रेक्षा है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग है।

राजा - सत्पमृ अतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः। तथा हि-

राजा - अवश्य, सूर्य और इन्द्र के घोड़ो से भी बढकर ये घोडे है। क्योकि -

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यर्द्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिवतत्।
प्रकृत्या यदवक्रंतदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किन्चित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् ।।9।।

अन्वय - रथजवात् यद आलोके सूक्ष्मम् तत् सहसा विपुलतां व्रजति, यत् अर्द्धे विच्छिन्नं कृतसन्धानम इव भवति, यत् प्रकृत्या वक्रम् तत अपि नयनयोः समरेखं क्षणम् अपि किंचित् न मे दूरे, न पार्श्वे (अस्ति)।

अर्थ - रथ की तीव्रता के कारण जो वस्तु देखने में छोटी होती थी वह एकाएक बड़ी हो जा रही है, जो आधे से कटी दिखाई देती थी वह जुड़ी हुयी दिखाई पड़ रही है ; जो स्वाभाविक रूप से टेढी है वह नेत्रों के सामने सीधी दिखाई पड़ रही है; क्षण भाग के लिए भी कोई (वस्तु) न मुझसे दूर रह पाती है और न ही पास।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में रथ के गति की तीव्रता के कारण वस्तुये कैसी दिखलाइ दे रही है। इसका वर्णन किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - रथजवात् = रथस्य जवः रथजवः तस्मात् (ष.त) आलोके = आ+ लोक्+ध´ भावे। विच्छित्न = वि छिद+क्त। प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा और यथासंख्य अलंकारहै। शिखरिणी छन्द हैं।

सूत पश्यैन व्यापाद्यमानम् (इति शरसन्धानं नाटयति)।

सारथि ! देखो इसको मार रहा हूँ। (बाण चलाने का नाटक करता है)।

(नेपथ्ये) - (नेपथ्य से)

भो भो राजन् ! आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्यो न हन्तवयः। हे राजन्! यह मृग आश्रम का है। इसे न मारिए न मारिए।

सूत - (आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्। अस्य खलु ते वाणपातवर्तिनः कुष्णसारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः।

सारथि - (सुनकर और देखकर) चिरंजीव! आपके वाण लगने के लक्ष्य बने हुए इस कुष्णसार मृग के मध्य दो तपंस्वी (विघ्न के रूप मे) उपस्थित हो गये।

राजा - (ससंभ्रमम्) तेन हि प्रगृहचन्तां वाजिनः ।

राजा: (घबराहट के साथ) तो घोड़ो के लगाम खीचों ।

सूत - तथां। (इति रथं स्थापयति) ठीक है।

सारथि - (रथ को रोक देता है) (ततः प्रविशत्यात्मनातृतीयो वैखानसः) तब (रंगमंच पर) दो शिष्यों के साथ एक तपस्वी प्रवेश करता है ।

वैखानसः - (हस्तमुहाभ्य) राजन् ! आश्रममृगोडयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

तपस्वी - (हाथ उठाकर) राजन! यह मृग आश्रम का है। इसे न मारिए न मारिए।

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।

आर्तत्राणाय वः शस्त्रं प्रहर्तुमनागसि ।।10।।

अन्वय - तत् साधुकृतसन्धानं सायकं प्रतिसंहर। वः शस्त्र आर्तत्राणाय, अनागसि प्रहर्तुम् न।

अर्थ - इसलिए भली प्रकार से लक्ष्य पर साधे गये वाण को उतार लीजिए। (क्योकि) आपके शस्त्र कष्ट मे पड़े हुए लोगो की रक्षा के लिए है; (किसी) अपराध हीन पर प्रहार करने के लिए नही।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा के कर्तव्य का बोध कवि ने तपस्वी के माध्यम से कराते हुए कहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - साधुकृतसन्धानं = साधुनां कृतं सन्धानं यस्त संः (बहु. स.) तम्। सायकः = सो + ण्वुल्+ अक। इस पद्य में उतरार्थ पूर्वार्द्ध का कारण है अतः काव्यलिंग अलंकार है। अनुष्टुप छन्द है।

राजा - एष प्रतिसंहृतः। (इति यथोक्तं करोति)

राजा - यह उतर गया । (वाण उतारने का अभिनय करता है)।

बैखानस - सदृशमेतत्पुरूवंशप्रदीपस्य भवतः ।

तपस्वी - पुरूवंश के दीपक आपके अनुरूप है।

जन्म यस्य पुरोर्वशे युक्तरूपमिदं तव।

पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि।। 11 ।।

अन्वय - यस्य पुरोवंशे में जन्मतव इदं युक्त रूपम्। एवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनं पुत्रम् आप्नुहि।

अर्थ - जो पुरूवंश में जन्म लिया है, यह आपके लिए उचित ही है। ऐसे ही गुणसम्पन्न चक्रवर्ती पुत्र आपको प्राप्त हो।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में तपस्वी राजा को आशीर्वाद देता है और कहता है कि आपको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो। इस पद्य में काव्यलिग अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है ।

इतरौ - (बाहू उद्यम्य) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि ।

अन्य तपस्वी - (हाथ उठाकर) सर्वथा सम्राट पुत्र को प्राप्त करें ।

राजा - (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतम्।

राजा - (प्रणाम् करता हुआ) तपस्वियो का आशीर्वाद ग्रहण किया ।

वैखानस- राजन्! समिदाहरणाय प्रस्थितावयम् । एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते । न वेदन्यकार्यातिपातः, प्रविश्य प्रतिगृहातरमातिथेयः सत्कारः। अपि च -

तपस्वी- राजन! समिधा प्राप्त करने के लिए हम सब निकले है। यह मालिनी नदी के तट पर कुलपति कण्व का आश्रम दिखाई दे रहा है। यदि किसी अन्य कार्य में अवरोध न हो आश्रम में प्रवेश कर आतिथेय स्वीकार करे। साथ ही -

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य ।
ज्ञायसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ।।12।।

अन्वय - तपोधनानां प्रतिहतविघ नाः रम्याः क्रियाः समवलोक्य मौर्वीकिणांकः मे भुजः कियद् रक्षति इति ज्ञास्यसि ।

अर्थ- तपस्वियों की मनोहर तथा निर्विघ्न क्रियाओं को भली प्रकार से देखकर आप जान पायेगे कि प्रत्यंचा के आघात से युक्त चिन्ह वाले मेरी भुजा कितनी रक्षा कर रही है।

व्याख्या- प्रस्तुत श्लोक में तपस्वियों द्वारा आश्रम में प्रवेश का दूसरा कारण बताता है कि तपस्वियों की क्रिया निर्विध्न चल रही है इस भी जानकारी आप को हो सकेगी ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तपोधनानां = तपः एव धनं येषां ते (व.स.) प्रतिहतविघ्ना = प्रतिहताः विघ्ना: येषां ते (व.स.) । इस पद्य में काव्यलिंग, वृत्यानुप्रास, नामक अलंकार है। आर्या छन्द है ।

राजा- अपि संनिहिताडत्र कुलपतिः ?

राजा- क्या कुलपति कण्व (आश्रम में) उपस्थित है ।

वैखानस - इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितु सोमतीर्य गतः।

तपस्वी- शीघ्र ही अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि सत्कार हेतु नियुक्त कर, उसके विपरीत भाग्य के शमन के लिए सोमतीर्थ गये है ।

राजा- भवतु । तां द्रक्ष्यामि। सा खलु विदितभक्ति मां महर्षेः कथयिष्यति ।

राजा- अच्छा ।उसी के दर्शान करूगाँ। वह निश्चय ही मेरी भक्ति को जानकर महर्षि से निवेदन कर देगी ।

वैखानस - साघयामस्तावत्। (इति सशित्यो निष्क्रान्तः)

तपस्वी - तो हम सब चलो है। (इस प्रकार शिष्यों के साथ रंग मंच से चले जाते है)

राजा - सूत! नोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।

राजा - सारंथि ! घोड़ो को हाको । पवित्र आश्रम का दर्शन कर अपने को हम पवित्र करे। गिरने

राजा - भवतु । ता द्रक्ष्यामि। सा खलु विदितभक्ति मां महर्षेः कथयिष्यति।

राजा - अच्छा ।उसी के दर्शान करूगाँ। वह निश्चय ही मेरी भक्ति को जानकर महर्षि से निवेदन कर देगी ।

वैखानस - साघयामस्तावत्। (इति सशित्यो नियक्रान्तः)

तपस्वी - तो हम सब चलो है। (इस प्रकार शिष्यों के साथ रंग मंच से चले जाते है)

राजा - सूत! नोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे ।

राजा - सारंथि ! घोड़ो को हाको। पवित्र आश्रम का दर्शन कर अपने को हम पवित्र करे। गिरने वाले जलविन्दूवों से रेखांकित है।

सूत्र:- यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति भूयो रथवेगं निरूप्याति)

सारथी:-चिरंजीव की जैसी आज्ञा। (इस प्रकार रथ तीव्र गति से चलाने का अभिनय करता है)

राजा:-(चारो ओर देखकर) सारथि। बिना सूचित किये भी यह मालूम पड रहा है कि यह आश्रम का प्रान्त भाग है।

सूत्र:- कथमिव।

सारथि:- कैसे?

राजा:- किं न पश्यति भवान् ? इह हि -

राजा:- क्या आप देख नही रहे है ? यहाँ पर -

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः

प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुंदी फलमिदः सूच्यन्त एवोपलाः।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा -

स्तोयाधारपयाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाऽ.किंता ।।3।।

अन्वय:- तरूणां अद्यः शुकगर्भकोतर मुखभ्रष्टाः नीवाराः , (दृश्यन्ते)क्वचितं इंगुदीफलमिदः प्रस्निग्धाः उपला सूच्यन्ते एव। (क्वचित् च)तोयाधारपथाः वल्कलशिखानिष्यन्द रेखांकताः (दृश्यन्ते)

अर्थ:- (कही) वृक्षों के निचे शुको के घोंसलो मे वैठे उनके बच्चो के मुख से गिरे हुए नीवार नामक धान (दिखाई दे रहे है), कही इंगुदी नामक फलो को तोड़ने वाले सुन्दर पत्थर दिखाई पड़ रहे है कही अत्यधिक विश्वास होने के कारण अपने स्वाभाविक गति का त्याग करते हुए हिरण रथ के शब्द को सहन कर रहे है, और की तालाब के मार्ग वस्त्रों के छोर से गिरने वाले जल विन्दुआो से रेखांकित है।

व्याख्या:- प्रस्तुत श्लोक मे आश्रम के मध्य भाग का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इस आश्रम के मध्य भाग मे नीवार के धान, इंगुदी फल को तोड़ने से चिकने पत्थर, विश्वासयुक्त मृग एवं तालाब के मार्ग वस्त्रों के छोर से गिरने वाले जल विन्दुआो से रेखांकित है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टा = शुका गर्भेमध्ये येषां तानि च कोटराणि, शुकगर्भकोटराणि, तेषां मुखानि = शुकगर्भको रमुखानि तेभ्यो भ्रष्टाः (बहु.स.)। इस श्लोक में स्वाभावोक्ति, काव्यलिंग , वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास नामक अलंकार हैतथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

सूत - सर्वमुपपनम्।

सारथि - सब कुछ ऐसा ही है।

राजा - (स्तोकमन्तर गत्वा) तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत। एतोवत्येव रथं स्थापय यसवदवतरामि।

राजा - (थोड़ी दूर जाकर) तपस्वियों को को विघ्न न हो। इसलिए ही यही रथ को रोको जिससे मैं उतरता हूँ।

सूत - धृता प्रग्रहाः, अपतरत्वायुष्मन्।

सारथि - रस्सी खीच लिये है। चिरंजीव आप उतरे।

राजा - (अवतीर्थ) सूत! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तवाद् गृह्यताम। (इति सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीर्यापयति) क्रियन्तां वाजिनः।

राजा - (उतरकर) सारथि! तपोवन में सादे वेष में जाना चाहिए। इसलिए यह आभूषण तथा धनुष आदि रखो। (इस प्रकार सारथि को आभूषण तथा धनुष व वाण दे देते है) सारथि! जबतक आश्रम वासियों का दर्शन कर लौटता हूँ तब तक घोड़ो को स्नान करा दो।

सूत - तथा (इति निष्क्रान्तः)

सारथि - ठीक है (इस प्रकार चला जाता है)।

राजा - (परिक्रम्यावलोकय च) इदं आश्रमद्वारम्। यावद् प्रविशामि । (प्रविश्य, निमित्तं सूचयन्)

राजा - (घूम कर तथा देखकर) यह आश्रम का मुख्य द्वार है। तो अन्दर चलता हूँ। (प्रवेश करते समय शुभ शकुन सूचित करते हुए)।

शान्तमिदमाश्रमपंद स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।।14।।

अन्वय -इदं आश्रमपदं शान्तम्, बाहुः च स्फुरति इह अस्य फलं कुतः? अथवा भवितव्यानां सर्वत्र द्वाराणि भवन्ति।

अर्थ - यह आश्रम स्थान शान्त है और (मेरी दाहिनी) भुजा फड़क रही है। यहाँ इसका (भुजा स्फुरण का) फल कैसे सम्भव है?

व्याख्या:- प्रस्तुत श्लोक में आश्रम में प्रवेश करते समय राजा की दाहिनी भुजा फड़कती है, और दाहिनी भुजा फड़कने का फल बिरांगना प्राप्ति है। राजा विचार करता है कि यह फल यहॉ केसे सम्भव है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:- शान्तम् = सम्+णिच्+क्त। इस पद्य में विशेष कथन का सामान्य कथन के द्वारा समर्थन किये जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है तथा आर्या नामक छन्द है।

(नेपथ्ये) - इतः इतः संख्यौ। इधर आओं इध र।

राजा:- (कर्णं दत्वा) अये। दक्षिणेन बृक्षवाटिका मालाप इव श्रुयते। यावदत्र गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) अयेः !एवास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनधतैर्बालपादपेभ्यः प्रयोदातुमित एवांभिणर्तन्तों (निपुणं निरूप्य) अघे! मघुरमासां दर्शनम्राजाः- (सुनकर) अरे। वृक्षो की वाटिका में दाहिनी ओर से कुछ वार्तालाप सुनाई पड़ रही है। तो मैं उधर ही चलता हू। (रंगमंच पर घूमकर तथा देखकर) अरे। ये तो तपस्वियों की कन्याये है जो अपने शक्ति के अनुरूप पौधौ को जल देने वाले घड़ो के साथ इधर ही आ रही है। (घ्यान से देखकर) आहा। इनका रूप बड़ा ही सुन्दर है।

शुद्वान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनों यदि जनस्यः ।
दूरीकृताः खलु गुणैरूद्यानलता वनलताभिः ।।15।।

अभ्यास प्रश्न 1 -

क. आश्रम में प्रवेश करते समय राजा दुष्यन्त का कौन सा अंग फड़कता है ?

1. बाहु 2. दाहिनी भुजा
3 पैर 4. ऑख

ख. राजा के अनुसार नीलकमल के पंखुड़ी के धार से किस लता को काटने की बात कही गयी है?

1. आम 2. इमली
3 शमी 4. सोमलता

4- सहकार ..... वृक्ष के लिए आया है ?

5-शकुन्तला को कौन परेशान कर रहा है ?

1- भौरा 2. मृग
3 - राजा 4. सखियॉ

6-. शकुन्तला के माता-पिता का क्या नाम था ?

1 अन्द्र-उर्वसी 2 मेनका-विश्वामित्र
3 रति-कामदेव 4. शिव-पार्वती

अन्वयः-शुद्वान्तदुर्लभं इदं वपुः यदि आश्रमवासिनः जनस्यखलु उद्यानलताः वनलताभिः गुणैः दूरीकृताः।

अर्थः- आश्रम में निवास करने वाले व्यक्तियों का यदि सौन्दर्य यदि इस तरह का है जो अन्तःपुर (की रानियों) में दुर्लभ है । तो निश्चित ही वन की लताओं ने अपने गुणो के द्वारा उद्यान की लताओं को तिरस्कृत कर दिया है।

व्याख्याः- प्रस्तुत श्लोक में राजा इन तपस्वी कन्याओं के अनुपम सौन्दर्य पर आश्चर्य करता हुआ कहता है कि वन में निवास करने वालों का इतना अलौकिक सौन्दर्य है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - असंशय = अविद्यमानः संशयः यस्मिन् ततो (बहु0 स0)। अभिलाषि = अभि+लष+णिनि। संदेह = सम् +दिह्+ध´ । करणम् = कृ+ल्युट। इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अंलकार है। वंशस्थ द्वन्द है।

3.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : प्रथम अंक श्लोक संख्या 16 से 30 तक

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्याति ।। 16

अन्वय – यः ऋषि अव्याजमनोहरं इदं वपुः किल तपः क्षमं साधयितुम् इच्छति सध्रुवं नीलोत्पलधारया शमीलतां छेत्तुं व्यवस्यति।

अर्थ- जो मुनि प्रकृति से ही सुन्दर शरीर को तपस्या में लगाना चाह रहे हैं वे सचमुच नीले कमल की कोमल पंखुड़ी की धार से शमी का कठोर वृक्ष काटने पर तत्पर हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तपः - तपसः क्षमम् तपः क्षमम् (तत्पु0) । निदर्शनालंकार,उत्प्रेक्षा ,विभावना अलंकार है तथा वंशस्थ छन्द है।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी ,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिनाम् ।। 17 ।।

अन्वय – शैवलेन अपि अनुविद्धं सरसिजं रम्यम्(वर्तते) मलिनमपि हिमांशौ लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति, वल्कलेनपि इये तन्वी अधिकमनोज्ञा (विद्यते) मधुराणां आकृतिनाम किमिव हि मण्डनं न भवति।

अर्थ- जैसे शैवाल से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर होता है और चन्द्रमा में दिखाई देने वाला कलंक भी उसकी शोभा को ही बढ़ाता है वैसे ही यह सुन्दरी भी वल्कल वस्त्रों को धारण करके भी अत्यन्त सुन्दर लग रही है। यह सत्य है कि मनोहर शरीर के लिए क्या वस्तु अलंकरण नहीं है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अलंकारः -अलं क्रियते अनेन इति अलंकारः , तस्य श्रियम् (तत्पु0)।

अर्थान्तरन्यास एवं प्रतिवस्तूपमा अलंकार एवं मालिनी छन्द है।

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुमिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धम् ।। 18। ।

अर्थ – अधरोष्ठ नवपल्लव के तुल्य लाल हैं , दोनों हाथ मृदु शाखाओं की भांति हैं, अवयवों में पुष्प के सदृश रमणीय तारूण्य प्रकट है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – यौवनम् – युवन्+अण्। अनुकारिन् – अनु+कृ+णिनि। इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं आर्या छन्द है।

राजा- तथापि तत्तवतः एवैनामुपलप्स्ये।

तब भी यथार्थ रूप् से इसका पता लगाऊँगा।

शकुन्तला - (ससंभ्रमम्) अम्मो ! सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते।

शकुन्तला - (घबराकर) अरी माँ। जल के सींचनें से उड़ा हुआ भ्रमर इस नवमालिका लता को छोड़कर मेरे मुख की ओर आ रहा है।

राजा -(सस्पृहं विलोक्य) (ईर्ष्या के साथ देखता हुआ)-

चलापांग दृष्टीं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव् स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलुकृती।। 19 ।।

अन्वय -मधुकर ! चलापांगा वेवथुमती दृष्टि; स्पृशसि, रहस्याख्यायीव कर्णान्तिकचरः मृदुः स्वनसि, करौ व्याधुन्वत्या रतिसर्वस्वं अधरं पिवति वयं तत्वान्वेषात् हता, त्वं खलु कृती।

अर्थ - हे भ्रमर ! तुम चंचल प्रांत वाले तथा काँपते हुए नेत्र का बारंबार स्पर्श (चुंबन) कर रहे हो, गोपनीय बात बताने वाले के समान कानों के नजदीक जाकर मधुर गुंजन कर रहे हो, (दोनो) हाथो को हिलाती हुई इसके रति क्रीड़ा का पान कर रहे हो, हम तो सत्य की खोज में ही मारे गये, और तुम निश्चय ही सफल हो गये।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शकुन्तला के मुख मण्डल पर मण्डराते हुए भौरों को राजा ईष्या पूर्वक देखता हुआ कहता है तुम निश्चय ही सफल हो गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी -चलापांगा = चलौ अपांगौ यस्या तामसी वपथुमती= वेपथु + मतुप् +ङीप्। कर्णान्तिकचरः = कर्णयोः अतिकू कर्णान्तिकम् तत्र चरतीति, चर् + त = चरः। व्याधुन्वत्या =वि आ धु+शतृ+ङीप्।

इस श्लोक में भ्रान्तिमान, समासोक्ति , व्यतिरके, काव्यलिंग अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

शकुन्तला - न दुष्टो विरमति। अन्यतो गमिस्यामि । (पादान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम) कथभिताडप्यागच्छति ? हला, परिभयेथ मामनेन दुर्विनीतेन दुष्टमधुकरेण परिभूययानाग्र।

शकुन्तला - यह धृष्ट रूक नहीं रहा है।अतः अन्य स्थान पर चलती हूँ (कुछ पग चलकर पुनः दृष्टि पात करती हुयी) क्या यह उधर भी आ रहा है ? सखि! इस दुष्ट भ्रमर के द्वारा मे सतायी जा रही हूँ, तुम दोनो मेरी संहायता करो।

उभे -(सस्मितम्) के आवां परित्रातुम् ? दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।

दोनो सखियाँ - (मुस्कुराकर) हम लोग तुम्हारी सहायता करने वाली कौन है? राजा दुष्यन्त को बुलावों। राजा को ही तपोवन की रक्षा करनी चाहिए।

राजा- अवसराऽयमात्मानं प्रकाशयितुग्। न भेत्वयं । इत्यर्धोक्ते स्वगतम् राजभावस्त्वभिज्ञातो भवते्। भवतु। एवं तावदभिधास्ये।

राजा- स्वयं को प्रकट करने के लिये यह सुअवसर है। न डरो न डरो (इतना आधा वाक्य कहकर मन में) ऐसे राजा होना प्रकट हो जायेगा। अच्छा तो इस प्रकार कहूँगा।

अनुसूया - आर्य। न खलु किमप्यत्याहितम् इयं नो प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरी भूता। (इति शकुन्तला दर्शयति)

अनुसूया- आर्य! कोई भय की बात नहीं है। यह हमारी सखि भौरों से तंग होकर डर गयी है। (इस प्रकार शकुन्तला की और इंगित करती है)

राजा - (शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा) अपि तपो वर्धते ? राजा- (शकुन्तला की तरफ होकर) तपस्या तो पढ रही है ? (शकुन्तला सरध्सादवचनातिष्ठति) (शकुन्तला चुप होकर खड़ी रहती है)।

अनुसूया - इदानींमतिथिविशेषलाभेन। हत्याशकुन्तले , गच्छोटजम्, फलमिश्रमर्धमुपहर। । अद्र पादोदकं भविष्यति।

अनुसूया - अतिथि विशेष के आने से बढ़ रहर है। सखि शकुन्तला कुटी में जावो। फल आदि अर्ध का पात्र लावों। यह (जल) पैर प्रक्षालन के लिए हो जायेगा।

राजा - भवतीनां सूतृतयेव गिरा कृतमातिथ्यम।

राजा - आप लोंगो के सत्य और मधुर बातों से ही अतिथिसतकार हो गया।

प्रियंवदा - तेन हचस्यां प्रच्छायश्रीतलायां सप्रपर्णवेदिकायां मुहुर्त्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वसर्यः।

प्रियंवदा -तो आप इस धनी छाया के कारण शीतल वने हुए सप्रपर्ण वृक्ष के नीचे वेदी पर कुछ क्षण बैठकर मिटायें।

राजा - नूनं यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः।

राजा - निश्चय ही आप लोग इस (वृक्षसिंचन) कार्य से थकी होगी।

अनुंसूया - हया शकुन्तलो, उचित न प्र्युपासनमतिथिानाम्। अत्रोपविशाम: (इति सर्वा उपविशान्ति)।

अनुंसूया - सखि शकुन्तला। अतिथि विशेष के समीप बैठना र्सवथा उचित है। यहॉ हमस ब बैठे। (इस प्रकार सब बैठती है)

शकुन्तला (आत्मगतम) किं नु खात्विगं प्रेक्ष्य तपोवन विरोधिनों विकास्य गमनीयास्मि संवृत्ता?

शकुन्तला - (अपने मन में) क्यों इस व्यक्ति को देखकर मुझसे तपोवंन के विरोधी व्यापार उत्पन्न होने लगे है।

राजा - (सर्वा विलोक्य) अहो! स्मवयोहपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम्।

राजा - (सबको दखकर) आहा! आप सब की मित्रता एक समान आयु ओर रूप के होने के कारण सुन्दर है।

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) अनुंसूये! को नु खल्वेस चतुरगम्भीराकृतिश्चतुरं प्रियमालपन प्रभाववानिव लक्ष्यते?

प्रियंवदा - (हाथ की ओट कर् के) अनुसूया। यह सुन्दर और गम्भीर रूप वाला है जो मधुर वार्तालाप करता हुआ प्रभावशाली के समान लग रहा है।

अनुंसूया - सखि ममारयस्ति कौतूहलम् । पृच्छायि तावदेनम्। (प्रकाशम्) आर्यस्थ मधुयामापजनिताक विश्रम्भों मां मन्त्रयते कतम आर्येण राजषेर्वशोऽलंक्रियते ? कतमो वा पिरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः कि निमित्तं वा -सुकुमारतराऽवि तपोवनयमनपरिश्रमस्यात्यामपदमुपनीत:?

शकुन्तला - सखि मेरे भीतर भी यह उत्सुकता है। तब इससे पूछती हूँ। (प्रकट रूप से) आर्य के मधुर वार्तालाप से जनित विश्वास यह जानने के लिए प्रेरणा दे रहा है कि किस राजर्षिवंश् को आप अलंकृत किये है ? किस देश के लोगों को अपने वियोग में व्याकुल बना देखा है ? आथंक किस कारण से उतने सुकोयल होने पर भी तपोवन मे आने का परिश्रम करके अपने आप को कष्ट दिया ?

शकुन्तला (आत्मगतम) हृदयामोताय। एषा त्वया चिन्तितान्यनसूया यन्त्रयते।

शकुन्तला (मन मे) हे हृदय उतावला न बनो। यह जो तूम्हारी इच्छा है उसे वह अनुंसूया पूछ रही हैं।

राजा - (आत्मगतम) कथमिदानीमाम्मानं निवेदसामि ?कथ वात्मावहारं कारेमि ? भवतु, एवं मपवदेनां वक्ष्ये । (प्रकाशम्) भवति! य: पौरवेण राश्रा धर्माधिकोर नियुक्त: सोऽहमविध्नक्रिष्योपनम्भाय ध्मारण्यमिदभायात:।

राजा - (मन मे) कैसे अपने बारे मे बताऊँ और कैसे अपने आप को दिपाऊँ ? ठीक है उनसे इास प्रकार कहता हूँ। (प्रकट रूप मे) भदे ! पुरूवंशी राजा ने सिे धर्माधिकारी के पद पर नियुक्त किया है वह में तपोवन में निर्विध्व क्रिया चल रही है यह जानने आया हूँ।

अनुंसूया - सनाथा इदानी धर्मचरिण: ।

अनुंसूया - तपोवन वासी आज सनाथ हो गये। (शकुन्तला श्रृंगारलज्जां रूपयति) (शकुन्तला काम जनित लज्जा का अभिनय करती हैं)।

सख्यौ - (उभयोराकारमं विदित्वा जनान्तिकम्) हल शकुन्तला ! यद्यत्राद्य तातः सन्त्रिहितो भवेत्।

दोनों सखियॉ - (दोनो गनोभावो को जानकर हाथ की ओट से) सखि शकुन्तला ! सदि आज पिता (कण्व) समीप रहते।

शकुन्तला - (सरोषमिव) ततः कि भवेत् ? (रोषता पूर्वक) तो क्या होता।

सख्यौ - इदं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेष कृतार्थ करिष्यति।

दोनों सख्यिॉ - अपने जीवन के सर्वस्व को देकर कृतार्थ हो जाते।

शकुन्तला – युवामपेतम्। किमपि हृदय कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवायोर्वचनं श्रोष्यायि

शकुन्तला - तुम दोनो जाओ। कुछ हृदय में रखकर बोल रही हो। तुम दोनो की बात मैं नही सुनूगी।

राजा - वयमपि तावछ भवत्योः सखिगतं किमषि पृच्छामः ।

राजा ' मै भी आप की सखि के सम्बन्ध में कुछ पुछॅना चाहता हूँ।

सख्यौ - आर्य, अनुग्रह अवेयमभ्यर्यना।

दोनो सख्यिॉ - आर्य! आपकी प्रार्थना हमारे उपर कृपा के समान हैं।

राजा - भगवान्काश्ययः शाश्वते ब्रहमणि स्थितः अति प्रकाशः। अयं चवः सखि तदात्मनेति कथम् एतत्।

राजा - भगवन कथ शाश्वत ब्रम्हचारी है ये सब जानते है। आप लोगो की सखि उनकी (कज्ण)की पुत्री कैसे हुयी ?

अनुसूया - शृणोत्वार्थ:। अस्ति कोडपि कौशिक इति गौत्रणामधेयौ महाप्रभावो राजर्षि।

अनुसूया - आर्य सुनिए। कोई कौशिक नामक गोत्र में उत्पन्न महाप्रभावशाली राजर्षि है।

राजा - अस्ति श्रूयते।

राजा - सुन रहा हूँ।

अनुसूया - तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छः। अम्झितायाः शरीर संवर्धनादिक्षिस्तात काश्ययोऽस्या पिता।

अनुसूया - उन्ही राजर्षि को इसका जन्मदाता समझिये। उनेक द्वारा छोड़ दिये जाने पर शरीर का लालन-पालन करने के कारण पिता काश्यप इसके पिता हुए।

राजा - 'अश्रित' शब्देन जनितं में कौतूहलय्। आमूलाच्छोतुमिच्क्षयि

राजा - 'छोडे गये'' इस शब्द से मेरे अन्दर उत्सुकता हो रही है। प्रारम्भ से सुनना चाहिता हूँ।

अनुसूया - शृणोत्वाग्र: गौतमीतीरे पुरा किय तस्य राजर्षेरूग्रे तपसि र्वतयानस्य किमपि जातश्ङफैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियम विघ नकारिणी ।

अनुसूया - आर्य सुने गौतमी नदी के तट पर वह राजर्षि कठिन तपस्या कर रहे थे। उस समय देवो मे कुछ शंका के कारण उनके पास तप मे विघ्न उत्पन्न करने के लिए मेनका नामक अप्सरा को भेजा।

राजा - अस्त्येतदन्यसमाधिभीरूत्धं देवानां।

राजा - देवताओं को दूसरे की तपस्या से डरने की प्रवृत होती है।

अनुसूया - ततो वसन्तोदाररमणीये समये तस्या उन्मादपितृ रूपं प्रेक्षय- (इत्यर्धेभ्ते लज्जया विरमहि)

अनुसूया - उस समय वसन्त ऋतु के मनोहर काल में उसके उन्माद उत्पन्न करने वाले रूप को देखकर - (आधे में ही लज्जा के कारण चुप हो जाती हैं)

राजा - परस्तान्ज्ञायत एव। सर्वथाप्सरः सम्भर्वेषा।

राजा- आगे की बात मालूम हो जाता है। वस्तुतः यह अप्सरा के ही जनित मालूम पड़ रही है।

अनुसूया - और क्या ?

राजा - उपपद्यते ।

राजा - ठीक ही है -

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।

न प्रभातरलं ज्योतिरूदेति वसुधातलात् ।। २२ ।।

अन्वय - मानुषीषु अस्य रूपस्य संभवः कथं व स्यात् ? प्रभातरलं ज्योति: वसुधातलात् न उदेति।

अर्थ - मानव जाति की स्त्रियॉ में इस प्रकार का सौन्दर्य कैसे सम्भव हो सकता है? कान्ति से प्रकाशित ज्योति पृथ्वीतल से उत्पन्न नहीं होती।

व्यांख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा शकुन्तला को निश्चय रूप से अप्सरा से ही उत्पन्न होना मानता है ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - मानुषीषु = मनोः अपत्यं पुमान् मानुषः तस्य सत्री मानुषी। । प्रभातरलं = प्रभातरला यस्य तत् (ब.स) इस श्लोक मं अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रतिवस्तुपमा तथा दृष्टान्त अलंकार है ।

(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति) (शकुन्तला लज्जा वश नीचे मुख किये रहती है)

राजा - (आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः । किन्तु सख्या: परिहासोदाहता वर प्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधी भावकातरं में मनः।

राजा - (मन मे) मेरे मनोरथ को अवकाश प्राप्त हुआ। फिर भी सखियों द्वारा मजाक में की गयी पर प्रार्थना को सुनकर मेरा मन दुविधा में पड़ गया है।

प्रियंवदा - (सस्मित शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा) पुनरपि वक्तकाय इवार्यः ।

प्रियंवदा - (मुस्कुराकर शकुन्तला को देखकर नायक की ओर मुखकर)आर्य पुनः कुछ कहना चाहते है। (शकुन्तला सखिमङ्गुल्या र्तजयति)

(शकुन्तला सखियों को अंगुली दिखाती है)

राजा - सम्यगुपलसिंत भवत्या। अस्ति नः सच्चारितश्रवणलोभादन्यदपि प्रजृव्यम् ।

राजा - आपने ठीक जाना । अच्छे चरित्र के विषय में जानने की इच्छा से कुछ और पूछना चाहताहूँ।

प्रियंवदा - अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयागस्तपस्विजनो नाम ।

प्रियंवदा - सोचिए न । तपस्वी लोग से नि: संकोच प्रश्न किया जा सकता है ।

राजा - इति सखी ते ज्ञातुमिच्छामि

राजा - आपकी सखि के सम्बन्ध में जानने की इच्छा है -

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद
व्यापाररोधिमदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव सदृशेक्षणवल्लभाभि -
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभि: ।।२३।।

अन्वय - किम् अनया मदनस्य व्यापाररोधि वैखानसं व्रतं आप्रदानात् निषेवितत्यम् , आहो, मदिरेक्षणवल्लाभाभि: हरिणांगनाभिः समय् अत्यन्तमेव निवत्स्यति ।

अर्थ - क्या यह काम के व्यापारको रोकने वाले ब्रहमचर्य व्रत को विवाह पर्यन्त ही सेवन करेगी अथवा मदिर नयनो के कारण प्रिय हरिणियो के साथ आजीवन (तपोवन मे ही) निवास करेगी?

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे राजा यह जानने का प्रयास कर रहा है हे शकुन्तला का तपक ◌ा व्रत विवाह पर्यन्त ही रहेगा या किसी तपस्वी से विवाह कर आजीवन तपोवन मे ही रहने की इच्छाहै

व्याकरणात्मक टिप्पणी - व्यापाररोधि = वि आ पृ+धन् = व्यापार तं रोद्धुशीलमस्य अति व्यापार रूध्+णिनि कर्ता । निसेवितव्यम् = नि + सेव् +तव्यत्। इस श्लोक में वृत्यानुप्रास अलंकार है। वसन्ततिलका छन्द है ।

प्रियंवदा - आर्य धर्मचरणेडपि परवशोडयं जन:। गुरोः पुनरस्या अनुरूप वर प्रदान सङकल्प+। इसे तो पिता का योग्य वर देने का संकल्प हैं ।

राजा - (आत्मगतम्) न दुरवापेय खलु प्रार्थना ।

राजा - (मन मे) निश्चित हद मेरी प्रार्थना अवश्य नही है ।

भव हृदय सभिलाषं संप्रति संदेहनिर्णयो जातः ।
आशङ्कशे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।।24।।

अन्वय - हृदय सभिलाष भव, संप्रति संदेह निर्णय: जातः । यत् अग्निं आशंकसे तत् इदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।

अर्थ - हृदय ! अव तुम (शकुन्तला के प्रति) अभिलाषा से युक्त होवों । अब संदेह का निराकरण हो गया। तू जिसको अग्नि समझ रहा था वह तो स्पर्श करने योग्य रत्न निकला ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे राजा यह पूर्णविश्वस्तता क साथ शकुन्तला की प्राप्ति के सम्बन्ध मे कहता है - हृदय = हे हृदय, सभिलाषं भव = अभिलाषा से युक्त होवा, संप्रति =अब, संदेह = शका निर्णय: जातः = निराकरण हो गया । यत् = जिसे, अग्नि आशंकसे = आगम होने की शंका कर रहे थै तत् = वह इदं = यह स्पर्शक्षमं = स्पर्श करने योग्य रत्नम् = रत्न निकला ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - सभिलाषः = अभि लष्+ध´ भावे । तेन सह (व.स) इस पद्य में काव्यलिंग, व्यस्तरूपक तथा वृत्यानुप्रास अलंकार है। आर्या छन्द है।

शकुन्तला - (सरोषमिवं) अनुसूये, गमिस्याम्यहम् ।

शकुन्तला - (क्रोध पुर्वकं) अनुसूया मैं जा रही हूँ ।

अनुसूया - कि निमित्तं ।

अनुसूया - किस कारण से।

शकुन्तला - इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयिसयामि ।

शकुन्तला - इस अनावश्यक प्रलाप करने वाली प्रियंवदा के सम्बन्ध मे आर्या गौतमी से शिकायत करूँगी ।

अनुसूया - सखि ! न युक्त तेडकृतसत्कारमतिथि विशेषं विसृक्ष्म स्वच्छन्दतो गमनया्

अनुसूया - सखि! इस अतिथि विशेष का विना सत्कार किसे सवतन्त्रता पूर्वक छोड़कर जाना उचित नहीं है। (शकुन्तला न किंचिदुक्त्वा प्रस्थितैव) (शकुन्तला विना कुछ कहे चल देती है) ।

राजा - (ग्रहीतुमिच्छन्निगृहचात्यानम् आत्मगतम्) अहो! चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्ति: । अहं हि -

राजा -(उसे पकडने की इच्छा लेकर पुनः इच्छा को रोककर मन मे) अरे ! काम से मुक्त व्यक्ति की वृत्ति भी उसमे शारीरिक चेष्टावो के अनुरूप ही होती है क्योकि-

अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ।।२5।।

अन्वय - मुनितनयां सहसा अनुयास्यन् विनयेन् वारितप्रसरः स्थानात् अनुच्चलन् अपि, गत्वा पुनः प्रतिनिवृत्तः इवं

अर्थ - सहसा मुनि कन्या(शकुन्तला) के पीछे जाने के लिये उद्यत होता हुआ, विनय के कारण रूक जाता गया । (इस प्रकार) अपने स्थान से न उठो हुए भी मानो जाकर पुनः लौट आया हूँ ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा अपनी मनोदशा का वर्णन करता है ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अनुयास्यन =अनु +या+लृट+शतृ। अनुच्चलन् =नम् उत्चल-शत् प्रत्यय। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, काव्यलिंग तथा अनुप्रास अलंकार है। आर्या छन्द है।

प्रियंवदा- (शकुन्तला निरुध्य) हला, न ते युक्तं गन्तुम् ।

प्रियंवदा - (शकुन्तला को रोककर) सखि तुम्हारा जाना युक्त संगत नही है।

शकुन्तला- (सभ्रूभंगम) किं निमिन्तं ?

शकुन्तला- (भौहे टेढ़ी कर) क्या कारण है ?

प्रियंवाद - वृक्ष सेचने द्वेधारयसि में। (रहि तावत् आत्मानं मोर्चायत्वा ततेे गमिस्यामि।

प्रियंवाद - दो वृक्ष सिंचन का ऋृण तुम्हारे ऊपर है। इस कारण अपने आप को ऋृण मुक्त कर के जावां। (इतिवलदिनां निवर्तयति) (इस पकार बल पूर्वक लोटती है)।

राजा - भद्रे वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा हि अस्या।

राजा - भद्रे! वृक्षो की सिंचन कार्य से ही आपकी सखि थकी जस पड़ती है। क्योकि इसमे -

स्रंस्तांसावतिमात्रलोहिलतलौ वाहू घटोत्क्षेपणा -

दद्यपि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।

बद्धं कर्णशिरीषरोधिवदने धर्माम्भसां जालकं

बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः।।२६।।

अन्वय - घटोत्क्षेपणात् बाहू सस्तांसौ अतिमात्रलोहिततलौ। प्रमाणधिकः श्वासः अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति। वदने कार्ध शिरीषरोधि धर्माम्भसां जालकं स्रस्तम्। बन्धे संसिनि मूर्धजाः च एक हस्तयमिताः पर्याकुला ।

अर्थ - हाथों के उठाने से दोनो भुजाओं के कन्धे झुके हुए तथा हथेलियाँ अतिलाल हो गयी है। मात्रा से अधिक श्वास् चलने के कारण स्तनों में अब भी कम्पन हो रहा है। मुख पर कानो मे (धारण किये) शिरीष के पुष्पों को अवरूद्ध करने वाला पसीनों का समूह व्यात है, और बन्धन खुल जाने से एक हाथ से लपेटे एए केश बिखर गये है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा शकुन्तला के परिश्रम से थकने का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अतिमात्रलोहिततलौ = अतिमात्रंलोहितंतलो ययोः तौ (बहु0)। इस श्लोक मे स्वाभावोक्ति काव्यलिंग, समुच्चय तथा अलंकार है ताथ शार्दूलविक्रीडित छन्द है। तदहमेनामनृणां करोमि। (इति अंगुलीयं दातुमिच्छाति) तब मै इनको ऋण मुक्त बना देता हूँ। (इसप्रकार अंगूठी देना वाहता है) (उभे नममद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परभवलोकयतः) दोनो सखियॉ अंक्ति अक्षर को बाचकर परस्परी देखती है)

प्रियंवदा - तेन हि नार्हत्येतंदगुलीयकमङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचने नानृणेदालीमेषा। (किंचिद्धिहस्य) हला शकुन्तले मोचितास्यानुकम्पिनायेण, अव्यपा महाराजेन, गच्छेदालीग्र।

प्रियंवदा - तो यह अंगूठी अंगुली से अलग करने योग्य नही है। आर्य के वचन मात्र से ही यह अकृण हो गयी। (कुछ हसकर) सखि शकुन्तला, तुम्हे कृपालु आर्य अथवा महराज ने मुंक्म कर दिया। अब तुम जा सकती हों।

शकुन्तला - (आत्मगतम्) यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। (प्रकाशम्) का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा?

शकुन्तला - (मन में) यदि मेरा अपने उपर नियन्त्रयण हो तव तो। (प्रत्यक्ष रूप मे) तुम मुझें भेजने वाली अव्यवा रोकने वाली कौन होती हो।

राजा - (शकुन्तलां विलोक्य आत्मगतम्) किंनु खलुयथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान्प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा में प्रार्थना। कुतः-

राजा - (शकुन्तला को देखते हुवे मन में) क्या जैसा मैं इसके प्रति अनुरक्त हुँ वैसा ही ये मेरे प्रति अनुरक्त है ? अथवा मेरे मनोरथ को अवसर मिल गया ।

क्योंकि –

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यभिमुखं मयिभाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।। 27

अन्वय - यद्यपि मदवचोभिः वाचं न मिश्रयति मयिभाषमाणे अभिमुखं कर्ण ददाति। कामं मदाननसंमुखीनां न तिष्ठति, अस्या दृष्टिःतु भूयिष्ठम् अन्य विषया न।

अनुवाद - यद्यपि मेरे बोलने से अपनी बोली नही मिलाती फिर भी मेरे बोलते रहने पर मेरी तरफ ही अपने कानो को लगाये रहती है। भले ही मेरे मुख की तरफ मुख करके नही बैठती, फिर भी इसका ध्यान अत्यधिक दूसरी तरफ नही जाता।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे राजा शकुन्तला के प्रेमा भिव्यं´जक चेष्टाओं का वर्णन करता है जिसके आधार पर अपने प्रति शकुन्तला के प्रेम भाव की अभिव्यक्ति सूचित करता हुआ कहता है ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - मिश्रयति = मिश्र+णिच्, अन्य विषय = अन्यः विषय यस्या सा। भूयिष्ठम् = वह इष्ठन् यहॉं बहु् को भू आदेश तथा इकार को यि आदेश, इस श्लोक मे समुच्चयालंकार, छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास अलंकारहै ।

(नेपथ्ये) (नेपथ्य से)

भो!भोः तपस्विनः सन्निदितास्तपोवनसत्वरक्षाये भवतः । प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः। ओ! तपस्विवो तपोवन के समीप रहने वाले जीवों के रक्षाणार्थ आप सब तैयार हो जाइये। शिकार काता हुआ राजा दुष्यन्त यहाँ आ पहुँचा है ।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषक्तजलार्द्र वल्कलेषु।
पतति परिणतारूणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु।।28।।

अन्वय -तथाहि तुरगखुरहतः परिणतारूणप्रकाशः रेणुः शलभसमूह इव वित्पविषक्त जलार्द्रवल्कलेषु आश्रमद्रुमकेषु पतति।

अनुवाद - क्योकि घोड़ो के खुरो से उठाई हुयी सायंकालीन सूर्य के प्रकाश के समान लाल वर्ण की धूल पतंगो के झुण्ड के समान शाखाओं से बॅधे गीले वल्कलों वाले आश्रम के वृक्षों पर पड़ रही है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में आश्रम मे आये दुष्यन्त के घोड़ो के खुर से उड़ती हुयी धूलका वर्णन है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तुरगखुरहत: = तुरेण वेगेन तुरं त्वरित या गच्छति इति तुरगः तुरगाणा खुरे: हतः (तत्पुरूष) विटपविषक्त जलार्द्रवल्क्लेषु = विटपेषु विषक्तानि जलार्द्राणि वल्कलानि येषा तेषु (बहुव्रीहि)। इस श्लोक में उपमा वृत्यानुप्रास अप्रस्ततुप्रशंसा अलंकार है।

अपि च - और भी-

तीव्राघातप्रतिहततरू: स्कन्धलग्नैक दन्त:
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाश:।।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गज: स्यन्दनालोकभीत:।।29।।

अन्वय - सस्यन्दनालोकभीतः तीव्राघातप्रतिहततरू: स्कन्धलग्नैकदन्तः पादाकृष्टव्रततिवलयासड़ग संजातपाशः भिन्नसारंगयूथ: गजः न तपसः मूर्तः विघ्न: इव धर्मारण्यं प्रविशति।

अनुवाद - रथ को देखने से डरा हुआ हाथी जिसने कठोर प्रहार से वृक्ष को गिरा दिया और जिसका एक दाँत वृक्ष के डालियों में फँसा हुआ है पैरो से खीची हुयी लताओं के समूह में लिपटने से बँधा हुआ सा होकर मृग समूहो को अस्त व्यस्त करता हुआ मानों हमारी तपस्या केलिए साक्षात् विघ्न का शरीर धारण का तपोवन में प्रविष्ट हो रहा है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में दुष्यन्त के रथ को देखकर डरे हुए हाथी का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से करते हुए कहा गया है कि रथ को देखने से डरा हुआ, साक्षात् विघ्न का शरीर धारण कर तपोवन मे प्रवेश कर रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तीव्राघातप्रतिहततरूः = तीव्रो यः आघातः, तीप्राधातः तेन प्रतिहताः तरवः येन सः। पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः = पादाभ्यां आकृष्टम् यद् प्रततिवलयं लताजालम् तस्यासडगेन समन्तातसम्बन्धेन संजातः पाशः यस्ये सः (तत्पुरूषमर्भक बह0)। इस श्लोक में अप्रस्ततुप्रशंसा,वृत्यानप्रास श्रुत्यानुप्रास और परिकर अलंकार है। तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है।

सर्वा: (कर्ण दत्वा किंचिदिव संभ्रान्ता) (सभी सुनकर कुछ घवड़ाती है)

राजा - (आत्मगतम्)अहो धिक् ।पौराअस्मदन्वेषिणस्पोवनमुपरून्धन्ति। भवतु प्रतिगमिष्याभस्तावत्।

राजा - (मन मे) अरे धिक्कार है। नगर निवासी मेरा अन्वेषण करते हुए तपोवन में बिघ्न उत्पन्न कर रहे है। अच्छा उनके समीप लौट चलता हूँ।

सख्यौ- आर्य अनेनारण्यवृतान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटजगमनाय।

दोनों सखियॉ - आर्य इस हाथी के वर्णन से हम सब घबड़ा गये है। हमे कुटी में जाने की अनुमति दीजिए।

राजा - (ससंभ्रमम्) गच्छन्तु भवत्यः। वयमत्याश्रमपीड़ा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे।

राजा - (घबड़ाकर) आप लोग जाइए। मै भी वैसा ही कार्य करूँगा जिससे आश्रम में कोई उपद्रव न हो।

(सर्वा उत्तिष्ठन्ति) (सभी खड़े होते है)।

सख्यौ - आर्य असम्भावितातिलिसत्कारअभूयोडपि प्रेक्षाणनिमितं लज्जावहे आर्य विज्ञापयितुं।

दोनो सखियाँ - आर्य! न किये गये अतिथिसकार वाले आप से पुनः दर्शन देने के लिए कहते हुए हम लज्जित हो रहे है।

राजा - मा मैवम दर्शने नैवात्र भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि।

राजा - ऐसा न बोले आप लोगो के दर्शनमात्र से ही मै पुरस्कृत हूँ।

(शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्स ससखीभ्यां निष्क्रान्ता)

(शकुन्तला राजा को देखती हुयी लज्जा के साथ रूककर सखियों के साथ चली जाती है)

राजा - मन्दौत्सुक्योडस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयांत्रिकान् समेत्य नातिइदे तपोवनस्य निवेशयेयम्। न खलु शक्नोभि शकुन्तलाव्यापारादत्यानं निवर्तयितुम। मम हि -

राजा - नगर जाने का उत्साह धीमी हो गयी, तब सैनिको को तपोवन से कुछ दूरी पर रोकता हू। शकुन्तला के प्रति आकृष्र होने वाले व्यापार से मै स्वयं को रोकने मे अस्मर्थ हूँ। क्योकि मेरा –

गच्छति पुरः शरीर धावति पश्चादसंस्तुतं चेत:।

चीनांशुकमिव केतो: प्रतिवति नीयमानस्य ।। 30 ।।

अन्वय - शरीर पुरः गच्छति चेत5 प्रतिवात नीयमानस्य केतोः चीनां शुकम् इव असंस्तुतं पश्चात् धावति।

अनुवाद - शरीर आगे जा रहा है मन विपरीत दिशा में बहने वाले वायु से पीछे उड़ाते हुए चीनी रेशमी ध्वजा के समान पीछे के तरफ भाग रहा है।

सूत - (राजानं मृग च अवलोभ्य) आयुष्मन्। (सारथि) (राजा और मृग को देखकर)आयुष्मान

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा की अतिशय प्रेम विह्वल दशा का वर्णन आता है। प्रिया से , क्षणिक मिलन सुख समाप्त होने से वह विवशता का अनुभव करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - असंस्तुतम् = सम् स्तु+क्त = संस्मुतम्, न संस्ततृ ।अतिशयोक्ति उत्प्रेक्षा और उपमालंकार है तथा आर्या छन्द है।

(इति निष्क्रान्ता: सर्वे) (सब प्रस्थान करते हैं)

(इति प्रथमोड़क:)

(प्रथम अंक समाप्त)

अभ्यास प्रश्न - 2 -

(क) राजा अपने हृदय को समझाते हुए स्पर्श करने योग्य रत्न किसे बता रहा है ?

1.शकुन्तला को 2. अनुसूया

3 प्रियंवदा 4. किसी को नहीं।

(ख) वृक्षों के सेचन का दो ऋण किस पर है ?

1.प्रियंवदा 2. शकुन्तला पर

3 अनुसूया पर 4. गौतमी पर

(ग) नेपथ्य से किसकी रक्षा के लिए तपस्विवो को बताया जा रहा है ?

1. हाथियों मे 2. मृगों मे

3 पक्षियों में 4. जीवों की

(घ) रथ को देखकर ..... डरा हुआ है।

(ड़) प्रथम अंक के अन्त मे ..... पताका का वर्णन हे ?

3.5 सारांश

प्रथम अंक के अध्ययन के प्रश्चात् आप जान गये है कि नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार और नटी के द्वारा दुष्यन्त की चर्चा के साथ प्रस्तावना समाप्त हो जाती है। फिर मृग का पीछा करता हुआ सारथि रथ पर चढ़कर रंगमंच पर प्रवेश करता है। राजा उसमृग को मारना ही चाहता है तभी एक तपस्वी अपने शिष्यों के साथ आकर मृग को मारने से मना करते है। राजा के मान जाने पर उन्हें चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आर्शीवाद देकर कण्व के आश्रम मे राजा को जाने को कहकर लकड़ी लाने जंगलो में चले जाते है। राजा द्वारा पूछे जाने पर कि क्या कुलपति कण्व आश्रम में है तपस्वी बताते है कि ऋषि सोमतीर्थ गये है। उनके अनुपस्थिति मे शकुन्तला अतिथि सत्कार करती है। राजा सारथि को आश्रम के बार छोड़कर आश्रम में प्रवेश करता है तभी शुभ शकुन होता है। वही तीन युवतियो मनोरंजन करती हुयी पौधो को पानी देती है उसमे शकुनतला के प्रति राजा आकृण्ट होता है तथा वृक्षों के ओट से उसके सौन्दर्य देखा करता है। उसी समय भ्रमर से तंग आकर शकुन्तला रक्षा हेतु पुकारती है, तभी राजा सामने आकर युवतियों से वार्तालाप करता है।वार्तालाप से ही पता चलता है कि शकुन्तला विश्वामित्त एवं मेनका की पुत्री है। कण्व केवल पालने के कारण उसके पिता है। यह क्षत्रीय कन्या है अतः राजा उससे विवाह का निश्चय करता है । शकुन्तला भी राजा के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करती है तभी एक हाथी के वृत्तान्त से सब घबड़ाते ह। ओर सखियों के साथ शकुन्तला आश्रम मे चली जाती है। और दुष्यन्त भी सैनिको को रोकने के लिए प्रस्थान करता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.**सूत्रधार** - कथावीज को सूत्र कहा गया है उसको धारण करने वाला सूत्रधार कहलाता है। सूत्रधार ही रंगमंच पर आराध्य देव की पूजा करता है -

नाट्यस्य यद्रुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सवीजकम्।

रंङ्दैवतपूजाकृतं सूत्रधार इति स्मृतः।।

नाट्य के उपकरणों को भी सूत्र कहा गया है, उन्हे धारण करने वाला सूत्रधार कहा जाता है

नाट्योपकरणाहीति सूत्रमित्यभिधीयते।

सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्र धारो निगद्यते।।

2.**प्रस्तावना** - नाटक में मुख्य कथावस्तु का आरम्भ जिस स्थल से होता है वही से प्रस्तावना आरम्भ होती है । प्रस्तावना में प्रस्तुत होने वाले विषय वस्तु की चर्चा होती है।

विधेर्यथैव संकल्पो मखतां प्रतिपद्यते।

प्रधानस्य प्रवधस्य तथा प्रस्तावना मतां।।

रंगमंच पर नही या विदूषक से सूत्रधार प्रस्तुत किये जाने वाले कथानक का संकेत करते हुए वार्तालाप करता है।

सूत्रधारो नहीं बूते मार्ष वापि विदूषकम ।

स्वकार्य प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्।।

3.**नान्दी**- नाटक में नान्दी के माध्यम से नाटक की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से देवता की स्तुति की जाती है। यह देवता, द्विज या राजा की स्तुति या आर्शीवादात्मक मंगलाचरण भी होती है - आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोक: काव्यार्थसूचक:। नान्दीति कथयते। भरत।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास. 1

उत्तर (क) 2- दाहिनी भुजा (ख) 3- शमी (ग) आम्र (घ) 1-भौरा

(घ) मेनका - विश्वामित्र

अभ्यास 2- उत्तर (क) 1- शकुन्तला को (ख) 2- शकुन्तला पर (ग) जीवों को (घ) हाथी

(ड़) चीनी वस्त्र से बने।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेय प्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण 1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982 ।

3.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डे प्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982 ।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रथम अंक का सारांश लिखिये ।

2. प्रथम अंक का महत्व लिखिए।

इकाई .4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् द्वितीय अंक
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)

इकाई की रूपरेखा :

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : द्वितीय अंक
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि नाट्य साहित्य का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ एवं महाकवि कालिदास के जीवन परिचय एवं उनकी काव्यगत विशेषताओं तथा प्रथम अंक की कथावस्तु से परिचित हुए।

प्रस्तुत इकाई में आप द्वितीय अंक का अध्ययन करेगें। द्वितीय अंक में शकुन्तला के प्रति आकृष्टचित्त राजा दुष्यन्त विदूषक से शकुन्तला के मनोहारी लावण्य एवं रमणीय क्रियाकलापों का वर्णन करता है। इसी बीच तपोवन के दो ऋषि राजा से आश्रम में यज्ञादि कार्यों के निर्विघ्न पूरा होने तक रूकने की प्रार्थना करते हैं। उधर देवी वसुमती का सन्देश वाहक देवी पारण के दिन राजा की उपस्थिति की प्रार्थना का सन्देश देता है। तत्पश्चात आश्रम में अपनी उपस्थिति की अनिवार्यता विचार कर राजा विदूषक को राजधानी भेज देता है और कहता है कि शकुन्तला के प्रति प्रकट प्रेम परिहास मात्र है। इसके अध्ययन के पश्चात् आप द्वितीय अंक की कथावस्तु एवं उसकी काव्यगत सौन्दर्य को समझा सकेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- श्लोकों की व्याख्या कर पायेगें।
- श्लोक में प्रयुक्त अलंकारों को बता सकेगें।
- श्लोक में प्रयुक्त छन्द को बता सकेगें।
- द्वितीय अंक की कथा से परिचित हो पायेंगें।

4.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् द्वितीय अंक मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)

विदूषकः- (निःश्वस्य) भो! छृष्टम्। एतसय मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजीष्वाहिण्ड्यतेऽटवीतोऽटवी। पत्रसंकरकषायाणि कटुनि गिरिनदीजलानि पीयन्ते, अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठ आहारों भुज्यते। तुरगानुधावनकण्डितसन्धे रात्रावपि निकार्म शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। इयतेदानीमपि पीड़ा न निष्क्रामति। ततो मण्डस्योपरि पिटकः संवत्तः। हा्रः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता। सांप्रतं नगरगमनस्य मनः कथमपि न करोति। अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत्। का गतिः? यावत्त कृताचरपरिक्रम पश्यामि। (इति परिक्रमम्यावलोक्य च)एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति

प्रियवयस्यः। भवतु अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रामं लभेय। (इति दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः)

अर्थः-विदुषक:(दीर्घश्वास लेकर)अरे, देख लिया। इस मृगयाव्यसनी राजा का मित्र होकर खिन्न हो गया हूँ। यह मृग है, यह सूअर है, यह चीता है- इस प्रकार दोपहर को भी ग्रीष्म के कारण अल्प छाया वाले वृक्षो से युक्त वनपंक्तियों में भटकना पड़ता है। पत्तों के मिलने से कसैला और कडुवा पर्वतीय नदियों का जल पीना पडता है। अनिश्चित वेता पर, अधिकांशतः शूल पर भूना गया मांस का आहार खाना पडता है। घोड़ा दौड़ाने से जोडो में पीडा हाने के कारण रात्रि में भी पूरी तरह सोना नही हो पाता। उस पर भी बड़े भोर में ही दासीपुत्र बहेलियों के वन घेरने के कोलाहल से जगा दिया गया हूं। इतने से अभी भी यह पीड़ा दूर नहीं होती। उस पर भी फोड़ा निकल आया। कल तो हम लोगों के पीछे छूट जाने पर मृग का पीछा करते हुए आश्रम में पहुँचे हुए महाराज को मेरे दुर्भाग्य ने तपस्विकन्या शकुन्तला का दर्शन करा दिया। अत नगर को लौअने की वे किसी भी प्रकार इच्छा ही नही करते। आज भी उसी का चिन्तन करते हुए ऑखें में उनका सबेरा हो गया। क्या करें? तब तक स्नानादि आचार समाप्त कर लेने वाले उनसे मिलता हूं। (घूमकर औद देखकर) यह धनुष लिये हुई फूलों की मालाओं से सजी यवनियों से घिरा हुआ प्रिय मित्र इधर ही आ रहा है। अच्छा, अंग-भंग से खिन्न जैसा बनकर खड़ा होता हूं। स्यात् ऐसा करने से ही मुझे विश्राम मिल जाय। (डण्डे का सहारा देखकर खड़ा हो जाता है)।

विदूषक=संस्कृत नाटकों में राजा के मित्र के रूप में विदूषक नाम का पात्र आता है, जो हास्य की सृष्टि करता नाटक में य प्राकृत भाषा में संवाद बोलता है।

षत्रसंकरकषायाणि=पत्तों के मिलने से कसैले। पत्राणं संकरेण कषायाणि (जलानि का विशेषण) कसैला होने के कारण ही जल कडुआ है। कटूनि =कडुआ।

गिरिनदीजलानि=पर्वतीय नदियों का जल। गिरिनदीनां जलानि (तत्पुरूष) अनियतवेलम्=जिसकी वेला या समय निश्चित नहीं है। अनियता वेला यस्मिन तत (बहु0) विषमसमयम्। शूल्यमांसभूयिष्ठम्=जिसमें शूल पर भुना गया मांस ही अधिक मात्रा में हैं। शूलें संस्कृत शूल्यम्(शूल+यत् प्रत्यय) शुल्यं मांस भूयि ठं यस्मिन् सः(बहु0 आहार का विशेषण)। आहार= हृ घञ्। **(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा)**

राजा (आत्मगतम)

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनायासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरूते।।1।।

(स्मितं कुत्वा) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्बयते।

(तब यथोक्त परिजनों के साथ राजा प्रवेश करता है)

अर्थः-यद्यपि प्रिया का मिलन सरल नहीं है, तथापि मन उसके भावों का दर्शन करते के आकुल है। कामभाव के कृतार्थ न होने पर भी एक-दूसरे की अभिलाषा प्रीति को बढाती है।।1।।

(मुसकराकर) इस प्रकार अपने अभिप्राय के अनुसार ही प्रिय व्यक्ति के मनोभावों की कल्पना कर लेने वाला प्रेमी उपहास का पात्र बन जाता है।

1. **कामम्**= यद्यपि भले ही कामम् अव्यय है(अकामानुमतौ)सुलभा=सरलता से प्राप्त होने योग्य। चूंकि राजा कण्व की अनुमति के बिना शकुन्तला को प्राप्त नही कर सकता, अतः वह उसके लिए सुलभ नहीं है। मन तु=फिर भी मेरा मन। तद्भावदर्शनायामि=तद्भाव-दर्शन-आयासि=तस्या भावः तद्भावः तस्य दर्शनम् तदभावदर्शनम्, तसिमन् आयासि तद्भानदर्शनायासि=उसके प्रेम के भाव के देखने के लिए उत्सुक है। प्रिया की प्रेमाभिव्यंजक=चेष्टाओं को देखने की लालसा प्रेमी में बनी रहती है। मनसिंजे अकृतार्थ अपि=कामभावना के सफल न होने पर भी प्रिया से मिलने न होने पर भी मनसि जातः मनसिज अथवा मनसि जायते स्म मनसिजः। मनसि+जन+ड ('सप्तम्यां जनेडः' से ड प्रत्यय)।'तत्पुरूषे कृति बहुलम' से सप्तमी का लोप नहीं हुआ। कृतः अर्थ येन सः कृतार्थः अकृतार्थः तस्मिन्। उभयप्रार्थना=दोनों की पारस्परिक अभिलाषा, उभययो- प्रार्थना उभयप्रार्थना। रतिम् कुरूते=प्रीति उत्पन्न करती है। रम क्तिन्=रतिः।

यहॉ विप्रलम्म शृंगार है और उसकी अभिलाषा नाम की अवस्था है। 'सगंमोऽपायरचिता प्रारब्धाध्यवसायतः। संकल्पेच्छासमुद्भूतिरभिलाषः इतीरितः। यहॉ अर्थान्तरन्यास अलंकार है । पूर्वार्द्ध के कथन का उत्तरार्द्ध के सामान्य कथन द्वारा समर्थन किया गया है । इसका छन्द आर्या है।

स्निगधं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेषयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरूतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्व तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति।।2।।

अर्थः- दूसरी ओर दृष्टि डालती हुई भी उसने जो मेरी ओर प्रेमपूर्वक देखा, नितम्बों की गुरूता के कारण जो वह मानों विलास के साथ धीरे-धीरे चली, सखी के 'मत जा' कहने पर उसने जो उससे ईर्ष्यापूर्वक कहा-वह सब कुछ निश्चय ही मुझे ही लक्ष्य कर था। अहो, कमी सर्वत्र अपने ही अभिप्राय से देखता है।।।2। ।

'विलासादिव' में संभावना होने से उत्प्रेक्षालकांर है । 'कामी स्वतां पश्यति' इस सामान्य कथन द्वारा पूर्वोक्त विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है । शकुन्तला की चेष्टाओं के वर्णन में स्वभावोक्ति भी है। 'नयेने य' यन्त्या यातम' छेकानुप्रास है । उत्तरार्द्ध में वृत्युनप्रास भी है। इसका छन्द शार्दूविकीडित है 'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्'।

विदूषकः (तथास्थित एव) भो वयस्य, न में हस्तपादं प्रसरति। वाड़मात्रेण जापयिष्यामि।

विदूषकः (उसी तरह खड़े हुए) हे मित्र, मेरे हाथ-पैर नहीं चल रहे है। वाणी से ही 'जय' कहता हूँ।

राजाः- (सस्मितम्)कुतोऽयं गात्रोपघातः?

(मुस्कराते हुए) यह अंगभांग कैसे हुआ?

विदूषकः कुत किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि?

विदूषकः कैसे हुआ! स्वयं ऑखों में चोटकर ऑसुओं का कारण पूछते हो?

राजा- न खल्ववगच्छामि ।

राजाः मै समझ नहीं पा रहा हूँ ।

विदूषकः भो वयस्य! यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य?

विदूषकः मित्र, बेंत जो कुबडे की तरह टेढ़ा होता है वह अपने ही प्रभाव से होता है या नदी केवेगसे?

राजाः नदीवेगस्तत्र कारणम्।

राजाः नदी का वेग ही उसका कारण होता है।

विदूषकः ममापि भवान्।

विदूषकः मेरे लिए भी आप कारण है।

राजाः कथमिव ?

राजाः कैसे?

विदूषकः एवं राजकार्याण्युज्झित्वा तादृश आकुलप्रदेशे वनचरवृत्ति ना त्वया भवितष्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धि-मामेकाहमपि ताबद्विश्रमितुम्।

विदूषकः इस प्रकार राजकार्यो को छोड़कर हिंसक प्राणियों से व्याप्त प्रदेश मे क्या आपको वनचरों के समान वृत्ति अपनानी चाहिए? सचमुच, प्रतिदिन वन के पशुओं का पीछा करने से मेरे शरीर के जोड़ ढीले पड़ गये है और मेरा इन पर वश नहीं रह गया है। मैं प्रार्थना करता हूं कि मुझे एक दि नही विश्राम करने के लिए छोड़ दीजिए।

राजाः (स्वगतम्) अयं चैवमाह ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः। कृतः?

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो
धुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः
कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः।।3।।

राजाः (स्वगत) यह ऐसा कह रहा है और मेरा मन भी काश्यपसुता शकुन्तला की याद कर मृगया से विरक्त हो गया है। क्योंकि-

अर्थ-मैं चढ़ी हुई प्रत्यंचा वाले एवं बाण से युक्त इस धनुष को उन मृगों पर चलाने में मै समर्थ नहीं हूँ जिन्होंने एक साथ रह कर मेरी प्रिया को भोली चितवन का उपदेश दिया है।।3।।

3. न नमयितुम शक्तः अस्मि (नमयितुम् शक्तः न अस्मि)=झूकाने में समर्थ नही हो पाता हूँ इदम् अधिज्यम् आहितसायकम् धनुः=इस प्रत्यंचा चढे हुए तथ बाण से युक्त धनुष को।अधिगता ज्या यस्मिन तत् इति अधिज्यम (बहुव्रीहि, धनुः का विशेषण)ज्या=डोरी, प्रत्यंचा।

यैः प्रियायाः मुग्धविलोकितोपदेशः कृत इव=जिनके द्वारा प्रिया शकुन्तला को मुग्ध दृष्टिपात की मानो शिक्षा दी गयी है। । मुग्धानि विलोकितानि मुग्धविलोकितानि, तेषाम् उपदेशः शकुन्तला की चितवन् मृगों के समान भोली है। यहॉ उत्प्रेक्षा की गयी है कि मानो मृगों ने शकुन्तला को भोली दृष्टि का उपदेश दिया हो। मुग्ध का अर्थ है स्वाभाविक, अकृत्रिम।

पूर्वार्द्ध का करण उत्तरार्द्ध में उपन्यस्त होने से काव्यलिङ्ग है। 'कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः मे उत्प्रेक्षा है। वृत्यनुप्रास भी है। यहां कामपीड़ित नायक की अनुस्मृति नाम की अवस्था है।

विदूषक: (राज्ञो मुखं विलोक्य)अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते । अरण्ये मया रूदितमासीत् ।

विदूषक: (राजा का मुख देखकर)आप तो मन में कुछ सोच रहे है। मैने अरण्यरोदन ही किया ।

राजा: (सस्मितम) किमन्यत्? अनतिक्रमणीयं मे सुहृदय्वाक्यमित्ति स्थितोऽस्मि ।

राजा: (मुस्कराते हुए)और क्या? मेरे लिए मित्र के वचन उल्लंघन करने योग्य नहीं है, इसलिए मैं रूक गया हूँ ।

विदूषक: चिरंजीव । (इति गन्तुमिच्छति)

विदूषक: चिरंजीवी होइये। (जाने लगता है।)

राजा: वयस्य! तिष्ठ, सावशेषं में वचः।

राजा: मित्र, रूको मेरी बात अभी पूरी नहीं हुई है ।

विदूषक: आज्ञापयतु भवान् ।

विदूषक: आप आज्ञा दीजिए ।

राजा: विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम् ।

राजा: आप विश्राम करने के बाद मेरे एक बिना परिश्रम के कार्य में सहायक बनें ।

विदूषक: किं मोदकखण्डिमायाम्? तेन हार्र्य सुगृहीतः क्षणः।

विदूषक: **क्या लड्डू तोडने में? तब तो यही सुन्दर अवसर है ।**

राजा: यत्र वक्ष्यामि । कः कोऽत्र भो ?

राजा: जिस कार्य में कहूंगा उसमें । अरे, कौन है यहॉ ?

(दौवारिक का प्रवेश)

(प्रविश्य)

दौवारिक: (प्रणम्य) आज्ञापयतु भर्ता ।

दौवारिक: (प्रणाम कर) आज्ञा दें, महाराज

राजा - रैवतक! सेनापतिस्तावदाहूयताम् ।

राजा: रैवतक, सेनापति को बुलाओं ।

दौवारिक: तथा । (इति निष्क्रम्य सेनापतिना, सह पुनः प्रविश्य) एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः

दौवारिक: जैसी आज्ञा (निकलकर सेनापति के साथ पुनः प्रवेश कर) ये महाराज आज्ञा देने के लिए उत्कण्ठित होकर इसी ओर दृष्टि लगाये हुए बैठे है। आर्य, आर्य आप समीप चलें ।

सेनापति: (राजानमवलोय)दृष्टदोषापि स्वामिनि मृवया केवलं गुण एवं संवृत्ता। तथा हि देवः !

सेनापति: (राजा को देखकर)यद्यपि मृगया में दोष देखे जाते है, तथापि महाराज के लिए तो यह केवल गुण ही हो गयी है। क्योंकि महाराज,

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्व
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम्।
अपचितमपि गात्रं व्यायतम्वादलक्ष्यं

गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति ।।

अर्थ- निरन्तर प्रियाल वृक्ष की भूमि पर आघात करने से कठोर अग्रभाग वाले, सूर्य की किरणों को सहने में समर्थ, स्वेदकणों से रहित, दुर्बल होने पर भी विशालता के कारण दूर्बल न दिखायी पड़ने वाले पर्वतीय हाथी के समान ऐसा शक्तिशाली शक्तिशाली शरीर धारण करते है जिसका अग्रभाग निरन्तर धनुष की डोरी के आधात से कठोर हो गया है, जो सूर्य की किरणों का सहन करने में समर्थ एवं स्वेदबिन्दुओं से शून्य है और दुर्बल होने पर भी लम्बा-चौड़ा होने से दुर्बल नहीं दिखायी पड़ रहा है।।4।।

इस पद्य में सेनापति राजा के शरीर की उपमा पर्वतीय हाथी के शरीर से देता है। यहां विशेषण श्लिषण इस पद्य में सेनापति राजा के शरीर की उपमा पर्वतीय हाथी के शरीर से देता है। यहां विशेषण श्लिष्अ हैं और उनके दो-दो अर्थ होगे। अन वरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपर्वम्=निरन्तर धनुष की डोरी के आघात से जिसका अग्रभाग कठोर हो गया है-राजा के पक्ष में। निरन्तरधनु अथवा प्रियाल नाम के वृक्ष को पृथिवी पर खीचने से जिसका अग्रभाग कठोर है अथवा प्रियाल वृक्ष के अग्रभाग की भूमि में रगड़ने से जिसका अग्रभाग कठोर है। अनवरतं यथा तथा धनुषः ज्यायः आसफालनेल क्रूरः पूर्व यस्य सः (बहुव्रीहि)। आस्फालन के भी दो अर्थ है(1) खीचना और (2) रगडना 'ज्या' का अर्थ धनुष की डोरी और पृथिवी दोनो ही है 'ज्या मौर्वी ज्या वसुनरा'-शाश्वत उत्यसहः तथाविधः। मृगयापवादिना= मृगया की निन्दा करने वाले। मृगयाम् अपवदति इति। अपवादी= अप+√वद्+णिनि ताच्छील्य अर्थ में। अपवाद=निन्दा। स्थिरप्रतिबन्धः=दृढ आग्रह वाला। राजा को मृगया से रोकनेके आग्रह पर दृझ रहो। सेनापाति स्वयं भी मृगया के पक्ष में नहीं है। स्थिरः प्रतिबन्धः यस्य सः (बहु0)। चित्तवृत्तिम् अनुवर्तिष्ये=मन के विचार का अनुसरण करूगा। वैधेयः=मूर्ख जो सिखाने योग्य हो। विधेयव विधानम् तस्या यमधिकारी वैधेयः। विधेय+अण् प्रत्यय 'तस्येदम्' से। 'वैधेयम् (विधवा का पुत्र) पाठ भी है किन्तु यह पाठ यहॉ असंगत है। निदर्शनम्=उदाहरण। मुगया के लाभ के प्रमाण।

सनेनापतिः (उपेत्य) जयतु स्वामी, गृहीतश्वापदमरण्यम्। किमन्यत्रावस्थीयते ?

(समीप जाकर) जय हो महाराज की। बन के हिंसक पशुओं को घेर लिया गया है। अब यहॉ क्यों बैठे है?

राजा मन्दोत्साहः कृतोऽसिम मृगयापवादिना माढव्येन ।

राजाः मृगया की निन्दा करने वाले माढव्य ने मेरा उत्साह मन्द कर दिया है।

सेना पतिः (जनान्तिकम्) सखे! स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। (प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्

अर्थः-(जनन्तिक) मित्र, अपने पर दृढ रहना । मैं तब तक स्वामी के मनोभाव का अनुसरण करूगा। (प्रकट रूप से) बकने दीजिए इस मूर्ख को। आप ही प्रमाण हैं ।

मदश्छेकृशोदरं लघु भवत्युथानयोग्यं वपुः
सत्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयों ।
उत्कर्षः स च धन्विना यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः।।5।।

अर्थ -शरीर चर्बी के कम हो जाने से पतले उदर वाला, हल्का और उद्योगक्षम हो जाता है। जीवों की भय एवं क्रोध की अवस्थाओं में विकारयुक्त चित्तवृत्ति देखने को मिलती है। धनुर्धारियों के लिए यही गौरव की बात होती है कि बाण चंचल लक्ष्य पर सफल होते हैं। लोग मिथ्या ही मृगयाको व्यसन कहते है। इस प्रकार का मनोविनोद और कहॉ।।5।।

मेदश्छेदकृशोदरम्=चर्बी के घट जाने से कृश उदर वाला (वपुः का विशेषण) मेदसः छेदेन कृशम् उदरम् यस्य तत् (बहुव्रीहि)। छेद=√छिद+घञ्। लघु =हल्का, फुर्तीला। उत्थानयोग्यम्=उद्यम के योग्य, उठने योग्य, उत्थानस्य योग्यम्। तत्पुरूष। सत्वानाम् भयक्रोधयोः विकृतिमत् चित्तं लक्ष्यते=जन्तुओं की भय और क्रोध की स्थितियों में विकार से युक्त चित्त देखने को मिलता है। विकृतिमत् चित्तम्=विकार से युक्त चित्त। धन्विनाम्=धनुष चलाने वालों का। धन्वाऽस्यास्तीति धन्वी+इनि (व्रीहा्रादित्यात्)मत्वर्थ में। उत्कर्षः=गौरव, श्रेष्ठता उत√कृष+ घञ्। यत् चले लक्ष्ये इषवः सिध्यन्ति=जो चंचल लक्ष्य पर बाण प्रहार करते है या सफल होते है। व्यसनम्=बुराई, दुर्गुण। व्यसन की व्युतपत्ति है 'यस्माद् व्यस्यति श्रेयस्तस्माद् व्यसनमलंच्चते' जिससे व्यक्ति श्रेय से भ्रष्ट हो जाते हैं। विनोदः=मनोरंजन। समुच्चयालंकार है।

विदूषकः अत्रभवान्प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि।

विदूषकः महाराज अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गए है। तु तो घूमता हुआ मनुष्य की नाक के लोभी किसी बूढ़े रीछ के मुख में पड़ जायेगा।

राजाः भद्र सेनापते! आश्रमसनिकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि अद्य तावत्-

राजाः भद्र सेनापति, हम आश्रम के बहुत निकट रूके हुए हैं, तुम्हारे वचन का समर्थन नहीं करता। आज तो-

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृड्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः।।6।।

अथः- भैसे सींगों से बार-बार उछाले गये तालाब के जल में आलोडन करें। छाया में झुण्ड बनाकर मृगों के समूह निश्चिन्त हो जुगाली करें। बड़े-बड़े सूकर निर्भय होकर तलैयों में नागरमोथा खोदे और यह ढीले प्रत्यन्चाबन्धन वाला हमारा धनुष भी विश्राम करे ।।6।।

6. **महिषाः निपानसलिलं गाहन्ताम्**=भैसे तालाबों के जल में स्नान करें। महिषः=भैंसे । नियतं पिबन्त्यस्मिन् इति निपानम्। कुएं के निकट के छोटे किन्तु यहॉ सामान्य जलाशय या तालाब का अर्थ है। शृड़गैः मुहुः ताटितम्=सीगों के बार-बार आलेडित किये गये (सलिलम् का विशेषण)। छायायां बद्धं कदम्बकं येन तत् तादृशम्। मृगाणां कुलम मृगकुलम्। रोमन्थम अभ्यस्यतु=जुगाली करें। वराहपतिभिः वराहों के स्वामियों द्वारा अर्थात् बड़े-बड़े सूकरों द्वारा। मुस्ताक्षति=मुस्ता नाम की घास उखाड़ने का कार्य पल्वले=गड्ढे में, तलैयों में।

सेनापतिः यत्प्रभविष्णवे रोचते। जैसी आपकी इच्छा।

राजाः तेन हि निवर्तय पूर्वगतान्वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिका-स्तपोवनमुपरून्धन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य-

शमप्रधानेषु तपोधंनेषु
गूढ़ हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-
स्तदन्यतेजोभिभवाद् वमन्ति।।7।।

आगे गये हुए बनग्राहियों को लौटा दो ,मेरे सैनिक तपोवन में कोई विध्न न करें।

अर्थ- शान्तिप्रधान तपस्वियों में जला देने वाला तेज छिपा रहता है। स्पर्श करने योग्य सूर्कान्त मणियों के समान वे दूसरे तेज से आक्रान्त होन पर अपने तेज को प्रकट करते है।।7।।

7. **शमप्रधानेषु तपोधनेषु**=जिनमें शान्ति प्रधान है, जिनके मन में कोई विकार नहीं होता ऐसा तपस्वियों में दाहात्मकम् तेजः गूढम्=जलाने वाला तेज छिपा रहता है।स्पर्शानुकूलाः सूर्यकान्ताः इव=स्पर्श करने योग्य सूर्यकान्त मणियों के समान। अन्यतेजोभिभवात्=दूसरे ते द्वारा तिरस्कृत या अभिभूत होने से।

सेनापतिः यदाज्ञापयति स्वामी।

सेनापतिः जैसी स्वामी की आज्ञा।

विदूषकः ध्वंसतां त उत्साहवृत्तान्तः।

विदूषकः भाड़ मे जाये तेरी उत्साहवर्धक बाते।

(निष्क्रान्तः सेनापतिः)

(सेनापति का प्रस्थान)

राजाः (सेनापति का प्रस्थान)

राजाः (परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेशम्। रैवतक! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरू।

राजाः (सेवकों को देखकर) आप लोग भी मृगया का वेश उतार दें। रैवतक, तुम भी अपना कार्य देखो।

परिजनः यद्देव आज्ञापयति। (इति निष्क्रान्तः)

परिजनः जैसी देव की आज्ञा।

(परिजनों का प्रस्थान)

विदूषकः कृतंभवतानिर्मक्षिकम् । सांप्रतमेतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितानदर्शनीयायामासने निषीदतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि।

विदूषकः आपने मक्खियॉ भी भगादीं। अब इस लतावितान से सुन्दर लगने वाली वृक्ष की छाया में आप बैठें, तब तक मैं भी आराम से बैठू।

राजाः गच्छाग्रतः।

राजाः आगे चलो।

विदूषक: एतु भवान् (इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ)

विदूषक: आइये महाराज।

(दोनों घूमकर बैठते है।)

राजा: माढव्य! अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि, येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।

राजा: माढव्य, तुमने नेत्रों का फल नहीं प्राप्त किया तो देखने योग्य को देखा नहीं।

विदुषक: ननु भवानग्रतो मे वर्तते।

विदूषक: आप तो मेरे आगे ही है।

राजा: सर्वः खलु कान्तमात्मीयं पश्यति। तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि।

राजा: सब अपने ही व्यक्ति को सुन्दर समझते हैं। उस आश्रम की शोभा शकुन्तला के विषय में कह रहा हूँ।

विदूषकः (स्वगतम्) भवतु अस्यावसरं न दास्ये। (प्रकाशम) भो वयस्य! ते तापसकन्यकाभ्यर्थनीया दृश्यते।

विदूषकः (स्वगत) अच्छा, इसे अवसर नहीं दूँगा। मित्र, लगता है अब तुम तपस्विकन्या की कामना करने लगे।

राजाः सखे! न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणा मनः प्रवर्तते।

राजाः मित्र, परहेज करने योग्य वस्तु की ओर पुरूवंशियों का मन नहीं जाता।

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं चयुतमिव नवमालिकाकुसुमम्।।8।।

अर्थ:-वह वस्तुतः अप्सरा से उत्पन्न है और उसके द्वारा छोड़ देने पर पायी जाने क कारण मुनि की पुत्री है। वह वैसी ही है, जैसे आक के पौधे पर टूट कर गिरा हुआ नवमालिका (चमेली) का फूल।।8।।

8. सुरयुवतिसंभवम् = अप्सरा से उत्पन्न। अप्सरा जिसकी उत्पत्ति है। सुर युवतिः संभवः यस्य तत् (बहुव्रीहि)। मुनेः अपत्यम्=मुनि की सन्तान है। काले उज्झिताधिकगतम=उज्झितं च तत् अधिगत्म् इति (कर्मधारय) अर्कस्य=आक, धतूरा 'अर्कौऽर्कपर्णे स्फटिके रवौ ताम्रे दिवस्पतौ'-मेदिनी। नवमालिकाकुसुमम्=नवामालिकायाः कुसुमम्(तत्पुरूष)शकुन्तला नवमालिका के पुष्प् के समान है और कण्व की शुष्कता, पवित्रता, विरक्ति की ओर संकेत किया है। 'नवमालिकाकुसुमम् इव में उपमा है। आर्या छन्द है।

विदूषक: (विहस्य) यथा कस्यापि पिण्डखजूरैरूद्वेजितस्य तिण्तिण्यामभिलाषो भवेत तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना।

विदूषक: (हॅसकर) जैसे किसी भी पिण्डखजूर से ऊबे हुए को इमली खाने की इच्छा होती है वैसे ही उत्तम स्त्रियों का तिरसकार करने वाले आपकी यह कामना है।

राजा: न तावदेनां प्श्यसि येनैवमवादीः।

राजा: तुमने अभी उसे देख नही है जिससे कह गये।

विदूषक: तत्खलु रमणीयं यद्भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति ।

विदूषकः वह तो निश्चय ही मनोहर होगी जो आप में भी विस्मय उत्पन्न कर रही है।

राजाः वयस्य! किं बहुना-

राजाः मित्र, अधिक क्या कहें

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्तवयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।9।।

अर्थः-मानों विधाता ने उसे चित्र में अंकित कर उसमें प्राणों का संचार कर दिया है, यहा रूप की राशि बने हुए अपने मन को ही लेकर उसी से उसकी रचना की है। जब मैं विधाता की सर्वशक्तिमत्ता और उसके शरीर पर विचार करता हूँ तो वह मुझे स्त्रीरत्न की अनुपम सृष्टि प्रतीत होती है।।9।।

9. चित्रे निवेश्य=चित्र में अंकित कर। परिकल्पितसत्तवयोगा=जिसमें जीवन का संचार किया गया है। रूपोच्चयेन=सौन्दर्य के समूह से, सौन्दर्य को एकत्र कर। रूपस्य उच्चयेन। मनसा=मन के द्वारा (अपने हाथों से नहीं)। विधिना=विधाता द्वारा, ब्रहा्रा द्वारा विधत्ते इति विधिः। कृता नु=बनायी गयी है 'नु' सन्देह को सूचित करता है। प्रथम दो पंक्तियों को दो वाक्यों के रूप में लिया जा सकता है अथवा एक वाक्य भी हो सकता है। स्त्रीरत्नसृष्टिः=स्त्रियों में श्रेष्ठ रचना स्त्रीरत्नस्य सृष्टिः (तत्पुरूष)। सा (बहुव्रीहि)। अपारा का अर्थ दूसरी भी लिया गया है। पहली स्त्रीरत्न की सृष्टि लक्ष्मी, तिलोत्तमा या उर्वशी को माना गया है, उसके बाद शकुन्तला दूसरी स्त्रीरत्न की सृष्टि है।

विदूषकः यद्येवं प्रत्यादेश इदानी रूपवतीनाम्।

अर्थः- विदूषक यदि ऐसा है तो सभी सुन्दरियॉ आब तिरस्कृत हो गयी।

राजाः इदं च मे मनसि वर्तते-

राजाः और मेरे मन में तो ऐसा आता है कि

अनाद्यातं पुष्पं किसलयमलूनं कररू है-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनधं
न जाने भोक्तारं कमिह 'समुपस्थास्यति विधिः।।10।।

अर्थ-वह एक अनसूंधा पुष्प् है, ऐसा पल्लव है जो नखों से तोड़ा नहीं गया है, एक अनबिंधा रत्न है, नया मधु है जिसके रस का आस्वादन नहीं किया गया है। वह पुण्यकर्मो के सम्पूण्र एवं निष्कलुष फल के समान है। पता नहीं, इस लोक में किसे इसका भोक्ता बनाकर संयोग करायेगा।।10।।

10. इस पद्य में शकुन्तला के निष्कुलष सौन्दर्य का वर्णन अनेक मनोरम उपमाओं द्वारा किया गया है। अनाघ्रतम् पुष्प् इव = जिसको किसी ने सूघा नहीं है ऐसे पुष्प् के समान। न कररूहैः अलूनम् किसलयम् इव = नाखूनों से न काटे गये पल्लव के समान। स्वाभाविक कोमलता की

ओर संकेत किया गया है। अनाविद्धम रत्नम्=न छेदे गये रत्न के समान है। अनास्वादितरसं मध्येषु=जिसके रस का आस्वादन नहीं किया गया है ऐसा मधु है पुण्यानाम् अखण्डम् अनघं फलम् इव=पुण्यकर्मो के सम्पूर्ण एवं निर्दोष फल के समान है।

विदूषकः तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान् । मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलमिश्रचिक्कणशीषस्य हस्ते पतिष्यति।

विदूषकः तब तो आप उसे शीघ्र वचाइये। कहीं ऐसान हो कि किसी इंगुदी के तेल से चिकनी चॉद वाले तपस्वी के हाथ में पड़ जाये।

राजाः परवती खलु तत्रभवती। न च संनिहितोऽत्र गुरूजनः।-

राजाः वे तो पराधीना है और उनके पिता भी यहॉ नहीं है।

विदूषकः अत्रभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिराग?

विदूषकः आपके प्रति उसकी प्रेमदृष्टि कैसी है।

राजाः निसर्गादेवाप्रगल्भः तपस्किन्याजनः। तथापि तु-

राजाः स्वभाव से ही तपस्विकन्यायें लज्जाशीला होती है, फिर भी

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणं
हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया
न विवृतो मदनो न च संवृतः।।11।।

अर्थः- मेरे सामने देखने पर उसने ऑखे झूका ली। दूसरे बहाने से हॅसी। उसने अपने प्रेमभाव को जिसकी वृत्ति संयम के कारण नियन्त्रित कर ली गयी थी, तो खुल कर प्रकट किया और न छिपाया।।11।।

11. इस पद्य में दुष्यन्त शकुन्तला की स्वाभाविक लज्जाशीलता का संकेत करता है। वह मुग्ध नायिका है अतः उसका यह संकोच ही गुण है। मयि अभिमुखे ईक्षणं सहृतम् = मेरे सामने देखने पर ऑखे झूका ली गयी। इससे शकुन्तला की श्रृगारलज्जा ध्वनित होती है। विनयवारितवृत्तिः = उसके द्वारा कामभाव को न तो तरह व्यक्त किया गया और न पूर्णतः छिपाया गया। न च संवृत' में विरोधाभास है। यथासंख्यालंकार है। वृत्यनुप्रास भी है। द्रुतविलम्बित छन्द है। 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ''।

विदूषकः न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति।

विदूषकः तो देखते ही तुम्हारी गोद में आकर नहीं बैठ जाती?

राजाः मिथः प्रस्थाने पुनः शालीनतया काममाविष्कृतो भावः तत्रभवत्या

तथा हि-

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्ड
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्।।12।।

राजा: परस्पर विदा होने के समय शालीनता के साथही उन्होंनं अपना भाव निश्चित रूप से प्रकट कर दिया। क्योंकि-

अर्थ:-वह सुन्दरी कुछ ही पग जाकर 'कुश का अंकुर पैर में चुभ गया' ऐसा विना अवसर के ही कहती हुई रूक गयी। वृक्षों की शाखाओं में नहीं उलझे हुए वल्कल को भी छुड़ाने का बहाना कर वह मेरी ओर देखती हुई खड़ी हो गयी थी।।12।।

12. दर्भाङ्कुरेण = कुश के नुकीले भाग से, दर्भस्य अङ्कुरेण। अकाण्डे = विना अवसर के। न काण्डःअकाण्डः तस्मिन्। अचानक। काण्डं तन्वी = पतले शरीर वाली, क्विृत्तवदना = मुख घुमाये हुए विवृत्तं वदनं यस्या सा (बहुव्रीहि)। वल्कलम् विमोचयन्ती = वल्कल वस्त्र को सुलझाती हुई, छुडाती हुई। वल्कल उलझा नहीं था, परन्तु राजा की ओर देखने के प्रयोजन से यह वस्त्र सुलझाने का बहाना कर सखियों से पीछे रह गयी और राजा की ओर मुख कर खड़ी हुई। यह मुग्धा नायिका की स्वाभाविक चेष्टा का वर्णन है। मुग्धा नायिका अपनी प्रेमभावना इसी प्रकार व्यक्त करती है। दोनों वाक्यों में व्याज से छिपाने का वर्णन होने से व्याजोक्ति भी है 'रेणरण' मे छेकानुप्रास है।

विदूषक: तेन हिं गृहीत पाथेयो। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि।

अर्थ:- विदूषकः तब तो मार्ग के लिए कलेवा बॉध लो। देखता हू कि तुमने तपोवन को भी उपवन बना दिया।

राजा: सखे। तपस्विभिः कैश्चित्परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत् केनापदेशेन सकृदप्याश्रमे वासमः।

राजा: मित्र कुछ तपस्वियों ने मुझे पहचान लिया है। जरा सोचो कि किस बहाने से एक बार ही फिर आश्रम में जा सकूं।

विदूषक: कोऽपरोऽपदेशसतव राज्ञः? नीवारषष्ठभागमस्माकमुपाहरन्तिवति।

विदूषक: और कौन दूसरा बहाना है तुम्हारे जैसे राजा के लिए? आप लोग नीवर का छठा भाग हमें लाकर दें ऐसा कहो जाकर।

राजा: मूर्ख, अन्यद् भागधेयमेतेषां रक्षणे निपंतति, यद्रत्नराशीनपि विहायाभिन्द्यम्। पश्य

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम।
त्पः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारणयका हि नः।।13।।

(नेपथ्ये)

हन्त सिद्धार्थौ स्वः।

राजा: मूर्ख इनकी रक्षा के लिए तो दूसरा ही कर का अंश होता है, जो रत्नराशियों को छोड़कर भी अभिनन्दनीय होता है।

अर्थ:- राजाओं को सभी वर्णो से जो कर रूपी फल मिलता है वह नश्वर होता है, किन्तु ये तपोवनवासी हमें तपस्या का छठा भाग देते हैं जो अक्षय्य होता है।।13।।

13. वर्णेभ्यः उत्तिष्ठति = चारों वर्णो से उठता है, प्राप्त होता है। यहॉ चारों वर्णो के गृहस्थों से तात्पर्य है। गृहस्थों से वनवासी (आरण्यकाः) भिन्न है। नुपाणाम् = नृन पातीति नुपः क्षयि = नश्वर। तपःषड्भागम् = तपसः षड्भागम इति (तत्पु0) अक्षय्यम् = नष्ट न होने योग्य। क्षितपः

षड्भागम्=तपस्या का छठा अंश, षट् भागः षड्भागः। तपस्या के धन की उत्कृष्टता वर्णित होने से व्यतिरेक अलंकार है।

(नेपथ्य में) अहा, हम दोनों कृतार्थ हो गये।

राजाः (कर्ण दत्वा)अये! धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम्।

अर्थः-(कान देकर) अरे, धीरे और प्रशान्त स्वर से लगता है कि तपस्वी लोग है

(प्रविश्य)

दौवारिकः जयतु भर्ता। एतौ द्वै ऋषिकुमारकौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

दौवारिकः महाराज की जय। ये दो ऋषिकुकमार प्रतिहार-भूमि पर उपस्थित है।

राजाः तेन हा्रविलम्बितं प्रवेशय तौ।

तो शीघ्र ले आओ उन दोनों को।

दौवारिकः एष प्रवेशयामि। (इति निष्क्रम्य ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य) इत इतो भवन्ती।

दौवारिकः अभी ले आा। (निकलकर दो ऋषिकुमारों के साथ प्रवेश कर) इधर-इधर आइये आप लोंग। (उभौ राजानम विलोकयतः) (दोनों राजा को देखते है।)

प्रथमः अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि। कुतः-

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ।।14।।

प्रथमः अहों, तेजसवी होने पर इसका शरीर विश्वास उत्पन्न कर रहा है। अथवा ऋषियों से बहुत भिन्न न दिखायी पड़ने वाले इस राजा के विषय में ऐसा अचित ही है, क्योंकि -

अर्थ - जैसे मुनि सभी शिष्यों द्वारा भोग्य गृहस्थाश्रम में स्थित है। जैसे मुनि शरीर रक्षा और आष्टांगिक योग के लिए प्रतिदिन तपका संचय करता है वैसे ही यह प्रजापरिपालन में तत्पर होकर प्रतिदिन पुण्य अर्जित कर रहा है। इसके लिए भी चारण स्त्री-पुरूष द्वारा गाया गया पवित्र 'मुनि' विशेषण आकाश को बार-बार छूता है, केवल राज शब्द उसके पूर्व संयुक्त रहता है।**।14।।**

14. आश्रमवासी राजा को एक तपस्वी के तुल्य बताते हुए अपने इस कथन का समर्थन करता है कि वह ऋषियों से अतिभिन्न नहीं है और इस कारण इसके प्रति विश्वास उत्पन्न होना उचित ही है। वसति अध्याकान्ता= घर बनाया है, निवास स्वीकार किया है। सर्वभोग्ये आश्रमे=सभी के द्वारा भोगे जाने योग्य, जाने योग्य आश्रम के योग्य आश्रम मे। रक्षायोगात्=(1) प्रजा की रक्षा के कारण या रक्षा रूपी योग द्वारा-राजा के पक्ष में। (2) धर्म की रक्षा करने वाले अष्टांग योग द्वारा-मुनि के पक्ष में। तपः संचिनोति=तपस्या का संचय करता है, धर्म का संचय करता है-राजा। चान्द्रायण आदि तप करता है'मुनि। अस्य वशिनः=इस जितेन्दिय का। मुनि के समान राजा भी

जितेन्द्रिय है। द्याम् स्पृशति=स्वर्ग को छूता है, स्वर्ग तक पहुचता है। चारणद्वन्द्वगीतः=चारणों के द्वारा गाया गया। चारण लोग जोड़ों में ही उपस्थित होते है। राजपूर्वः राज शब्द जिसके पहले है ऐसा पवित्र मुनि शब्द अर्थात् राजमुनि=राजर्षि शब्द। राजन् इति शब्दों पूर्वः यस्मात् सः राजपूर्वः।

द्वितीयः गौतम! अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः।

द्वितीयः गौतम, क्या यही बल के सहारक इन्द्र का मित्र दुष्यन्त है?

प्रथमः अथ किम्?

प्रथमः और क्या?

द्वितीयः तेन हि-

द्वितीयः तब तो

नैतच्चित्रं यदयमुदधिष्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिधप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशसन्ते सुरयुवतयो बद्धवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरूहूते च वज्रे।।15।।

अर्थ- नगर की अर्गला के समान विशाल बाहु वाला यह राज अकेले ही जो समुद्रों से श्याम वर्ण'की सीमा वाली धरती का पालन करता है उसमें कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि दैत्यों से वैर रखने वाली देवों की सुन्दरियॉ इसके प्रत्यंचायुक्त् धनंष पर और इन्द्र से वज्र पर विजय की आशा लगाये रहती **है ।।15।।**

15. न एतत् चित्रम =यह आश्चर्यजनक नहीं है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उदधिष्यामसीमाम् कृत्स्नाम धरित्रीम्=समुद्र जिसकी श्याम वर्ण की सीमा है ऐसी सम्पूर्ण पृथ्वी का। नगरपरिघप्राशुबाहुः=नगर की अर्गला के समान विशाल बाहुवाला, परिध=अर्गला द्वारा बन्द करने की मोटी कीली। आशंसन्ते=आशा करते है, भोसा रखती हैं। बद्धवैराः=जिनका दैत्यो से वैर है ऐसी देवों की स्यिॉ बद्धं यासां ताः। अधिज्ये धनुषि=इस राजा के डोरी चढे हुए धनुष पर। पौरूहूतो वजे=इन्द्र के वज्र पर। पुरूहुत=इन्द्र (1) पुरू प्रचुरं हूतम् आह्वानं यज्ञेषु अस्य (2) पुरूणि हूतानि नामानि अस्य ।

उभौ: (उपगम्य) विजयस्य राजन्।

दोनों (समीप जाकर)राजन् विज्यी होओ।

राजा: (आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ।

राजा: (आसन से उठकर) आप दोनों का अभिवादन करता हू

उभौ: स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपहरतः)

दोनों- आपका कल्याण हो।(दोनों फल भेंट करते है।)

राजा: सप्रणाम परिगृह्रा आज्ञा पयितुमिच्छामि।

राजा: (प्रणामसहित ग्रहण कर)आपकी आज्ञा पाना चाहता हूँ।

उभौ विदितो भवानाश्रमसदामिहस्थस्ते भवन्तं प्रार्थयन्ते।

दोनों- आश्रमवासियों को यह ज्ञात हुआ है कि आप यहीं है, अतः वे आपसे प्रार्थना करते हैं।

राजा: किमाज्ञापयन्ति?

राजा: क्या आज्ञा देते हैं?

उभौ: तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षासि न इष्टिविध्नमुत्पादयन्ति । तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति ।

दोनों- पूज्य महर्षि कण्व के उपस्थित न होने से राक्षस हमारे यज्ञ में विघ्न उत्पन्न कर रहे है । तो कुछ रात्रियों तक सारथि को साथ लेकर आप आश्रम को सनाथ करें ।

राजा:अनुहृहीतोऽस्मि । विदूषक (अपवार्य) एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना ।

राजा: मैं अनुगृहीत हुआ ।

विदूषक: (अपवारित) यह प्रार्थना तो अब तुम्हारे अनुकूल है ।

राजा: (स्मितं कृत्वा) रैवतक! म्द्वचनादुष्यतां सारथिः सबाणासनं रथमुपस्थापयेति ।

राजा: (मुस्कुराकर) रैवतक, मेरी ओर से सारथि से कहो कि धनुष्सहित रथ लेकर आवे ।

दौवारिक: यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्त)

दौवारिक: जैसी महाराज की आज्ञा ।(दौवारिक का प्रस्थान)

उभौ: (सहर्षम)

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि ।
आपन्नभयसत्रेषु दीक्षिता: खलु पौरवा:।।16 ।

दोनों (सहर्ष)

अर्थ:- पूर्वजों का अनुकरण करने वाले तुम्हारे विषय में यह अनुरूप् है। पुरूवंशी राजा विपत्ति में पड़े हुए लोगो के अभयदान- रूपी चिरकालीन यज्ञ में दीचित होते हैं।।16।।

16. पूर्वेषाम् अनुकारिणि त्वयि=अपने पूर्वजों का अनुकरण करने वाले तुम्हारे विषय में। अनुकर्तु शीलमस्य इति अनुकारी, इदम् युक्तरूपम्=यह उचित है,योग्य है। अतिश्येन युक्तरूपम् (प्रशंसायां रूपम् से रूपप् प्रत्यय)।आपन्नाभयसत्रेषु=विपत्तिग्रस्त लोगों को अभय देने के यज्ञों में।

राजा: (सप्रणाम्) गच्छतं पुरो भवन्तौ अहमप्यनुपदमागत एव ।

राजा: (प्रणाम करते हुए) आप लोग आगे चलें मै भी आपके पीछे ही पहुँच रहा हूँ ।

उभौ: विजयस्व। (इति निष्क्रान्तौ)

दोनों- विजयी होओ। (दोनों का प्रस्थान)।

राजा: माढव्य! अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्?

राजा: माढव्य, क्या तुम्हें शकुन्तला को देखने का कुतूहल है?

विदूषक: प्रथमं सपरीवाहमासीत्। इदानी राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः।

विदूषक: पहले तो उमड़ रहा था। अब राक्षसों के वृत्तन्त से बिन्दुमात्र भी नहीं बचा है।

राजा: मा भैषी:। ननु मत्समीपे वर्तिष्यसे ।

राजा: मत डरो, तुम तो मेरे पास ही रहोगे।

विदूषक: मैं राक्षसों से सुरक्षित हो गया।

विदूषक: एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि।

(प्रविश्य)

दौवारिक: सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते। एष पुनर्नगराद्देवानीमाज्ञप्हिरः करभकः आगतः।

अर्थः- (दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक: रथ सज गया है और आपके विजय-प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है और इधर नगर से राजमाता का सन्देशवाहक करभक आया हुआ है।

राजा: (सादरम्) किमम्बभिः प्रेषितः?

राजा: (आदरसहित)क्या माताजी को भेजा हुआ?

दौवारिक: अथ किम्?

दौवारिक: और क्या?

राजा: ननु प्रवेश्याताम्

राजा: ले आओ उसे।

दौवारिक: तथा। (इति निष्क्रम्य, करभकेण सह प्रविश्य) एष भर्ता, उपसर्प।

दौवारिक: अच्छा। (निकलकर और करभक के साथ पुनः प्रवेश कर) ये महाराज हैं, पास जाओं

करभक: जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति-आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो में उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीया इति।

करभक: जय हो महाराज। देवी आज्ञा देती है- आगामी चौथे दिन मेरे उपवास का पारण होगा, उस अवसर पर चिरंजीवी आप अवश्य उपस्थित हों।

राजा: इतसतपस्विकार्यम्, इतो गुरूजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधयेम्?

राजाः इधर तपस्वियों का कार्य है, उधर गुरूजन की आज्ञा है। दोनों का अल्लंघन नहीं किया जा सकता। इस विषय में अब क्या उपाय करें?

विदूषक: त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ।

विदूषक: त्रिशंकु के समान बीच में लटके रहो

राजा: सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि-

कृत्ययो र्भिन्निदेशत्वाद्वैधीभवति मे मनः।

पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा।।17।।

राजाः सचमुच, कुछ सोच नहीं पा रहा हूँ।

दोनों कार्यो के भिन्न-भिन्न स्थान पर होने के कारण मेरा मन वैसे ही द्विविधा में पड़ गया है जैसे आगे पर्वत से अवद्ध होकर नदी का प्रवाह **।।17।।**

17. कृत्ययोः भिन्नदेशत्वात्=दो कार्यो के भिन्न-भिन्न स्थानों पर होने से भिन्नः देशः ययोः तयोः भावः तस्मात्। दो कार्य हैं।-तपस्विवचनपालन तथा माता के आदेश का पालन। में मनः द्वेधीभवति-मेरा मन दुविधा में पड़ा है। द्वयोः स्थानयोः स्थितिः द्वैधम्, द्वि+धमुच् प्रत्यय। पुरः शैले

प्रतिहतम्=आगे पर्वत से रोके गये, स्रोतोवहः स्रोतः यथा=नदी के प्रवाह के समान, स्रवति इति स्रोतः (स्रु गतौ=असुन प्रत्यय तुट, का आगम)

(विचिन्त्य) सखे! त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः। अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्ग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति।

(सोचकर) मित्र, तुम्हे माता जी ने पुत्र के रूप् में माना है। इसलिए आप यहॉ से लौटकर तपस्वियों के कार्य में मेरा मन उलझ गया है ऐसा निवेदन कर माताजी का पुत्रकर्म करा दें।

विदूषकः न खलुस मां रक्षोभीरूकं गणय।

विदूषकः लेकिन मुझे राक्षसों से डरने वाला मत समझना।

राजाः (सस्मितम्)कथमेतद् भवति संभाव्यते?

राजाः (मुस्कराकर) ऐसा आपके विषय में कैसे संभव हो सकता है?

विदूषकः यथा राजानुगेन गन्तव्यं तथा गच्छामि।

विदूषकः जैसे राजा के अनुज को जाना चाहिए वैसे आऊँगा।

राजाः ननु तपोवनोपधः परिहरणीय इति सर्वानुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि।

राजाः सचमुच, तपोवन में कोई विघ्न न हो इसलिए सभी अनुयात्रिकों को तुम्हारे साथ ही भेज दूँगा

विदूषकः तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः।

विदूषकः तब तो मै युवराज हो गया हूँ।

राजाः (स्वगत्) चपलोऽयं वटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तः पुरेभ्यः कथयेत्।

राजाः (स्वगत) यह बटु चपल है। कहीं मेरी शकुन्तला-विषयक अभिलाषा को अन्तः पुर की रानियों से न कह दे।

भवतु एनमेव वक्ष्ये।

अच्छा इससे ऐसा कहूँ गा।

(विदूषक हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्) वयस्य! ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि।

न खलु सत्यमेव तापस कन्यकायां ममाभिलाषः पश्य-

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो
मृगशावैः सममेधितो जनः।
परिहासविजल्पितं सखे।
परमार्थेन न गृह्यतां वचः।।18।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

।।इति द्वितीयोऽङ्कः।।

(विदूषक का हाथ पकड़कर प्रकट रूप में) वयस्य, ऋषियों के प्रति सम्मान के कारण आश्रम में जा रहा हूँ। वस्तुतः तपसिवकन्या में मेरी अभिलाषा की बात सत्य नहीं है देखो-

कहॉ हम और कहॉ कामभावना से दूर रहने वाला, मृगछौनों के साथ पालापोसा गया व्यक्ति? मित्र, परिहास में कहे गये वचनों को सत्य मत मान लेना **।।18।।**(सबका प्रस्थान)

।।द्वितीय अंक समाप्त।।

अभ्यास प्रश्न 1-

निम्नलिखित प्रश्नों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. द्वितीय अंक के प्रारम्भ में रंगमंच में कौन प्रवेश करता है -
   क. विदूषक ख. राजा
   ग. प्रतिहारी घ. सारथी
2. कामी स्वतां पश्यति यह कथन किसका है -
   क. शारंगरव ख. शारद्वत
   ग. राजा घ. विदूषक

3. मृगया को निरर्थक ही व्यसन कहते हैं ,ऐसा मनोविनोद कहाँ यह कथन किसका है -
   क. राजा ख. तपस्वी
   ग. सेनापति घ. सारथी

अभ्यास प्रश्न 2-

निम्नलिखित सूक्तियों की व्याख्या कीजिए 1

1. न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधि: ।
2. स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ।
3. सर्व तत् किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ।

4.5 सारांश -

इस इकाई को अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि द्वितीय अंक में दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति आसक्ति प्रारम्भ से ही दृष्टिगोचर होती है । दुष्यन्त सरलता से आश्रम में रूकने का अवसर प्राप्त करता है और राजधानी से देवी पारण के लिये बुलाये जाने पर विदूषक को भेज देता है। जिस प्रेम ने प्रथम अंक में जन्म लिया और द्वितीय अंक में उस प्रेम के उज्जवल विकास का वर्णन किया गया है।

4.6 शब्दावली

मेदश्छेदकृशोदरम् = चर्बी के घट जाने से कृश उदर वाला (वपुः का विशेषण) मेदसः छेदेन कृशम् उदरम् यस्य तत् (बहुव्रीहि)। छेद = छिद घञ्। लघु = हल्का, फुर्तीला। उत्थानयोग्यम् = उद्यम के योग्य, उठने योग्य, उत्थानस्य योग्यम्। तत्पुरूष। सत्वानाम् भयक्रोधयोः विकृतिमत् चित्तं लक्ष्यते=जन्तुओं की भय और क्रोध की स्थितियों में विकार से युक्त चित्त देखने को मिलता है। विकृतिमत् चित्तम् = विकार से युक्त चित्त।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न 1 - 1. क 2. ग 3. ग

अभ्यास प्रश्न 2- सूक्तियों की व्याख्या इस इकाई में देखिये ।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेयप्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982।

4.9 सहायक ग्रन्थ

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेयप्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- अभिज्ञानशाकुन्तलम् के द्वितीय अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

3- द्वितीय अंक के आधार पर दुष्यन्त का चरित्र- चित्रण लिखिये।

इकाई .5 अभिज्ञानशाकुन्तलम् तृतीय अंक
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)

इकाई की रूपरेखा :

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : तृतीय अंक
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् से सम्बन्धित यह पंचम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि नाट्य साहित्य का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ एवं महाकवि कालिदास के जीवन परिचय एवं उनकी काव्यगत विशेषताओं तथा द्वितीय अंक की कथावस्तु से परिचित हुए।

प्रस्तुत इकाई में आप तृतीय अंक का अध्ययन करेगें। द्वितीय अंक में आपने शकुन्तला के प्रति आकृष्टचित्त राजा दुष्यन्त विदूषक से शकुन्तला के मनोहारी लावण्य एवं रमणीय क्रियाकलापों का वर्णन, तपोवन के दो ऋषि राजा से आश्रम में यज्ञादि कार्यों के निर्विघ्न पूरा होने तक रूकने की प्रार्थना करने का वर्णन, देवी वसुमती का सन्देश वाहक देवी पारण के दिन राजा की उपस्थिति की प्रार्थना का सन्देश देने का वर्णन। तत्पश्चात आश्रम में अपनी उपस्थिति की अनिवार्यता विचार कर राजा विदूषक को राजधानी भेजने का वर्णन के विषय में जाना। तृतीय अंक में कामपीड़ित दुष्यन्त और शकुनतला का वर्णन किया गया है। इसके अध्ययन के पश्चात् आप तृतीय अंक की कथावस्तु एवं उसकी काव्यगत सौन्दर्य को समझा सकेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- श्लोकों की व्याख्या कर पायेगें।
- श्लोक में प्रयुक्त अलंकारों को बता सकेगें।
- श्लोक में प्रयुक्त छन्द को बता सकेगें।
- तृतीय अंक की कथा से परिचित हो पायेंगें।

5.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : तृतीय अंक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)

तृतीयोऽङ्कः

अथ विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः)

शिष्यः अहो! महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः। प्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति राजनि निरूपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति।

का कथा बाणसन्धाने जयाशब्देनैव दूरतः।
हुङ्कारेणेव धनुष स हि विघ्नानपोहति।।1।।

यावदिमान्वेदिसंसतरणार्थ उपनयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च आकाश) प्रियंवदे! कस्येदमुशीरानुलेपनं मृगालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयंन्ते? (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि? आतपलङ्घनाद् बलवदस्वस्था शकुन्तला, तस्याः शरीरनिर्वाणायेति? तर्हि त्वरितं गम्यताम्।

सखि, सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरूच्छ्वसितम्। अहमपि तावद्वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि।

(इति निष्क्रान्तः)

।।इति विष्कम्भकः।।

अर्थः-(विष्कम्भक)

(तब कुशों को लेकर यजमान कण्व का शिष्य प्रवेश करता है।)

शिष्यः अहो, राजा दुष्यन्त महाप्रभावशाली है। उन महाराज के आश्रम में प्रवेश करते ही हमारे यज्ञकर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो रहे है।

अर्थ- बा ण चलाने की तो बात ही क्या, वे दूर से प्रत्यन्चा की टंकार मात्र से ही जो मानो धनुष् की हुंकार हो, विघ्नों को दूर भाग देते है।।1।।

तब तक वेदी पर बिछाने के लिए इन कुशों को . ऋत्विजों के पास पहुँ चता हूँ। (घूमकर और और देखकर, आकाशभाषित) प्रियंवदा, किसके लिए यह खस का लेप और नालसहित कमलिनी के पत्ते लिये जा रही हो? (सुननु का अभिनय कर) क्या कहती हो? लू लगने से शकुन्तला बहुत अस्वस्थ है, उसके शरीर को शान्ति देने के लिए? तो शीघ्र जाइये। सखि वह तो कुलपति भगवान कण्व का प्राण है। मैं भी तब तक उसके लिए यज्ञ का शान्तिजल गौतमी के हाथ भेजता हूँ। (यह कहकर चला जाता है।)

(ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा)

राजाः (निःश्वस्य)

जाने तपसो वीर्य सा बाला परवतीति मे विदितम्।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम् ।।2।।

(मदनाबाधां निरूप्य) भगवन्कुसुमायुध! त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयायामतिसन्धीयते कामिजनसार्थः। कुतः

त्व कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थ दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि।।3।।

(तब विरही जैसी अवस्था में राजा प्रवेश करता है।)

राजाः (लम्बी श्वास लेकर)

तपस्या की शक्ति को जानता हूँ। वह मुग्धा बाला पराधीना है यह भी मुझे विदित है, फिर भी मैं इस हृदय को उसके समीप से लौटा लेने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ **।।3।।**

(कामपीड़ा का अभिनय कर) भगवान् कुसुमायुध, तुम और चन्द्रमा दोनों ही विश्वसनीय हो, किन्तु तुम दोनों ही कामपीडित जनों के समूह को धोखा दे रहे हो क्योंकि- तुम्हारा पुष्पों के बाण वाला होना और चन्द्रमा का शीतल किरणों वाला होना, ही बातें मेरे जैसों के लिए विपरीत

दिखायी पड़ रही है। चन्द्रमा तो हिमशीतल किरणों द्वारा अग्नि बरसा रहा है और तुम भी पुष्प् बाणों को वज्र की शक्ति से भर दे रहे हो ।।3।।

3. तव कुसुमशरत्वम्=तुम्हारा पुष्पबाण वाला होना, कुसुमानि एव शराः यस्य यः कुसुमशरः तस्य भाव। इन्दोः शीतरश्मित्वम्=चन्द्रमा का शीतल किरणों वाला होना, शीताः रश्मयः यस्य तस्य भावः। कामदेव और चन्द्रमा दोनों ही सुख देते हैं अतः विश्वसनीय हैं, किन्तु कामसन्तप्त विरही जनों को ये और भी सन्तप्त करते हैं। इदं द्वयं मद्विधेषु अयथार्थम् दृश्यते=ये दोनों मुझ जैसे के लिये असत्य शीतरश्मित्व। अर्थस्य योग्यं सदृशं वा यथार्थ तस्य विरूद्धम् अयथार्थम, न यथार्थम् (नञ् तत्पु0) इनदुः हिमगर्भैः मयूखैः अग्निम् विसृजति=चन्द्रमा हिमगर्भित किरणों से अग्नि बिखेर रहा है। मिं गर्भ येषां तैः हिमगभैः। रात्रि में चन्द्रमा पीड़ित कर रहा है और दिन में कामदेव पुष्पों के बाणों से दग्ध कर रहा है ।

त्वमयि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि=तुम भी पुष्पों के बाणों को वज्र की शक्ति से युक्त कर रहे हो या वज्र के समान दृढ बना रहे हो। वज्रस्य सारः इव सारः येषां ते वज्रसाराः (बहुव्रीहि)। न वज्रसाराः अवज्रसारा, अवज्रसारान् वज्रसारान् करोषि इति वज्रसारी करोषि (च्वि प्रत्यय) ।

(परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि? (निःश्वस्य) किं न खलु से प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्? यावदेनामन्विष्यामि। (सूर्यमवलोक्य) इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेष्यामि ससखीजना शकुन्तला गमयति । तत्रैव तावद्गच्छामि। (परिक्रम्य संस्पर्श रूपयित्वा)अहो, प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम् ।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः।।4।।

अर्थः- (घुमकर) यज्ञ कर्म के पूरा हो जाने पर तपस्वियों से जाने की अनुमति पाकर अब कहॉ जाकर श्रम से थके मन को बहलाऊँ (लम्बी सॉसे लकर)मेरे लिए प्रिया के दर्शन को छोड़कर और शरण ही कहॉ है? तो उसे ही ढूढ ता हूँ । (सूर्य की ओर देखकर) शकुन्तला इस तीव्र धूप की वेला को प्रायः लताकुंजो वाले मालिनि के तट पर सखियों के साथ बिताती है। तो वहीं चलता हूँ (घूमकर और वायु के स्पर्श का अभिनय कर) अहो, यह स्थान तो सुन्दर वायु के मनोहर है ।

कामसनतप्त अंगो से कमलों के गन्ध से युक्त और मालिनी के तरंगों के कण लेकर बहने वाले पवन का प्रगाढ अलिगन किया जा सकता है ।।4।।

(परिक्रम्यावलोक्य च) अस्मिनवेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितया तया भवितव्यम्। तथा हि

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढ़ जघनगौरवात् पश्चात् ।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकतं पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ।।5।।

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि (परिक्रम्य तथा कृत्वा, सहर्षम्) अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम् । एषा में मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरण शिलापट्टमाधिशयाना सखीभ्यामन्वास्ते । भवतु श्रोष्याम्यासां विश्रम्भकथितानि। (इति विलोकयन स्थित) ।

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापरा सह सखीभ्यां शकुन्तला)

(घूमकर और देखकर) इस बेतो से घिरे लतामण्डप में ही वह बैठी होगी। क्योंकि (नीचे देखते हुए) -

इसके पाण्डुवर्ण की बालुका वाले द्वारा पर चरणचिह्नों की नयी पंक्ति दिखायी दे रही है, जो आगे की ओर उठी हुई है और पीछे की ओर नितम्बों की गुरूता के कारण अधिक धंसी हुई है ।।5।।

सख्यौ - (उपवीज्य सस्नेहम) हला शकुन्तले! टपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः?

दोनों , सखियॉः (पंखा झलकर, स्नेहपूर्वक) सखि शकुन्तला, क्या कमलिनी के पत्ते की वायु तुझे सुख दे रही हैं?

शकुन्तला: किं वीजयतो मां सख्यौ?

शकुन्तला: क्या सखियॉ मझ पर हवा कर रही है?

(सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः)

(सखियॉ विषाद का अभिनय करती हुई एक दूसरे को देखती है।)

राजा: बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृष्यते। (सवितर्कम) तत्किमयमातपदोषः स्यात् उत यथा मे मनसि वर्तते? (साभिलाषम् निर्वर्ण्य)अथवा कृतं सन्देहेन-

(तब पूर्वोक्त अवस्था में शकुन्तला सखियों के साथ दिखायी पड़ती है।)

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम।
समस्तापः काम मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु।।6।।

राजाः शकुन्तला का शरीर बहुत अधिक अवस्थ दिखायी दे रहा है। (वितर्क के साथ) तो क्या यह लू का रोग है या जैसा मेरे मन में है वैसा ही है। (अभिलाषापूर्वक ध्यान से देखकर) अथवा सन्देह कैसा?

अर्थः- प्रिया का यह अस्वस्थ शरीर, जिसके स्तनों पर खस का लेप रखा गया है, और जिसमें धारण किया गया कमलनाल का एक कंकण शिथिल हो गया है, कुछ ही मनोहर लग रहा है। निश्चय ही, कामदेव और लू के प्रभाव में ताप समान होता है, किन्तु युवतियों का ग्रीष्म का आतंक ऐसा सौन्दर्यवर्धक नहीं होता **।।6।।**

प्रियंवदा: (जनान्तिकम्) अनसूये! तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्?

प्रियंवदा: (जनान्तिक) अनसूया, उस राजर्षि के प्रथम दर्शन के समय से ही शकुन्तला उत्कण्ठित-सी रहती है, कहीं ऐसा तो नहीं कि इसका यह रोग उसी के लिए हो?

अनुसूया: सखि! ममापीदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। (प्रकाशम्)सखि! प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान्खलु ते सन्तापः।

अनसूया: सखि मेरे भी मन में ऐसी भी आशकां है । अच्छा, तो पूछती हूॅ इससे (प्रकट रूप में) सखी, तुझसे कुछ पूछना है। सचमुच, तेरा सन्ताप बहुत अधिक है ।

शकुन्तला: (पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला! किं वक्तुकामासि?

अर्थः शकुन्तलाः(शरीर के ऊपर के भाग को शय्या से उठाकर) सखि, क्या कहना चाहती हो?

अनसूयाः हला शकुन्तले! अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वत्तान्तस्य । किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्थ श्रूयते तादृशीं तब पश्यामि । कथय किं प्रतीकारस्य । अनसूयाः सखि शकुन्तला, कामविषयक वृत्तान्त मे हमारी कोई पहुच नहीं है, किन्तु इतिहास की कथाओं में कामपीड़ितो की जैसी अवस्था सुनने में आती है, वैसी ही दशा तेरी देख रही हू। बोलो, किस कारण से तेरा यह सन्ताप है। रोग, को ठीक-ठीक जाने विना उसकी चिकित्सा नहीं आरम्भ की जा सकती ।

राजाः अनसूयामप्नुगतो मदीयस्तर्कः। नहि स्वाभिप्रायेण में दर्शनम् ।

राजाः अनसूया के मन में भी मेरा ही तर्क उठा है। ज्ञान अपने प्रयोजन से ही प्रेरित नहीं है।

शकुन्तलाः (आत्मगतम्)बलवान्खलु मेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम् ।

शकुन्तलाः (आत्मगत) सचमुच, मेरा गोपन का आग्रह बलवान् है। अब भी मैं सहसा इन दोनों के कह नहीं पा रही हूँ ।

प्रियंवदाः सखि शकुन्तले! सुष्ठवेषा अवितथमाह भणति। किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे? अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः। केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुन्चति ।

प्रियंवदाः सखि शकुनतला, यह ठीक ही कह रही है। अस्वस्थाता की उपेक्षा क्यों कर रही हो? दिन-दिन तेरे अंग दुर्बल होते जा रहे है, केवल कान्ति की शोभा तेरा साथ नहीं छोड़ रही है।

राजाःअवितथमाह प्रियंवदा। तथा हि,

क्षामक्षामकपोलमाननसुरः काठिन्यमुक्तंस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावसै छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरूता स्पृष्टा लता माधवी।।7।।

राजाः सत्य ही कहा प्रियंवदा ने । क्योंकि- मुख अत्यन्त दुर्बल कपोलो वाला होगया है । वक्षस्थल से स्तनों की कठोरता चली गयी है। कटि और भी क्षीण हो गयी है। कन्धे बहुत अधिक झुक गये हैं और शरीर की कान्ति पियरा गयी है। पत्तों को सुखाने वाले वायु द्वारा स्पर्श की गयी माधवी लता के समान मदनसन्तप्ता यह दयनीया लगने के साथ ही देखने में मनोहर लग रही है।।7।।

शकुन्तलाः सखि! कस्य वाऽन्यस्य कथयिष्यामि? आयासयित्रीदानी वा भविष्यामि ।

अर्थः सखि, और किससे कहूँ गी? तुम दोनों को कष्ट देने वाली ही बनूँ गी ।

उभेः अतएव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःख सह्य वेदनं भवति ।

दोनों सखियॉः इसी से तो हमारा आग्रह है। क्योंकि जनों में बांट लेने पर दुखः की वेदना सह्य बन जाती है।

राजाः-

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला

नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो निवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि।।8।।

राजाः दुःख एवं सुख में सहभागी व्यक्ति के पूछने पर यह मुग्धा बाला मन में छिपाये गये व्यथा के कारण को नहीं बातयेंगी ऐसा नहीं हो सकता। यद्यपि इसने मुड-मुड़ कर मुझे कई बार प्यासे नयनों से देखा है, तथापि इस बीच मैं सुनने के लिए कातर हो उठा हूँ।

शकुन्तलाः सखि! यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः
तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता।

शकुन्तलाः सखि जिस समस से वह तपोवन का रक्षक राजर्षि मेरी दृष्टि मे आया उसी समय से उसको पाने की अभिलाषा से मैं इस दशा में पहुँच गयी हूँ।

राजाः (सहर्षम) श्रृतं श्रोतव्यम्।

स्मर एवं तापहेतुर्निर्वापयिता स एव में जातः।
दिवस इवार्धश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ।।9।।

अर्थः (सहर्ष) सुन लिया जो सुनना चाहता था।
कामदेव ही मेरे सन्ताप का हेतु था और वही मुझे शान्ति देने वाला हो गया, जैसे जीवलोक के लिए ग्रीष्म की समाप्ति पर आधी बदली वाला दिवस होता है ।।9।।

शकुन्तला: तद्यपि वामनुमतं तदा तथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया।
भवामि। अन्यथाऽवश्वं सिन्चतं में तिलोदकम्।

शकुन्तला: तब यदि तुम दोनों को उचित लगे तो ऐसा करो जिससे उस राजर्षि की मेरे ऊपर कृपा हो, नही तो मेरे लिए अवश्य ही तिलोदक की अंजलि दो।

राजा: संशयच्छेदि वचनम्।

राजा: इस वचन ने सब संशय समाप्त कर दिया।

प्रियंवदा: (जनान्तिकम) अनसूये! दूरगतमन्मथाक्षमेयं कालहरणस्य।
यस्मिन्बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम् तद्युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम।

प्रियंवदा: (जपान्तिक) अनसूया, इसकी कामव्यथा बहुत दूर तक बढ गयी है, यह विलम्ब सहन नहीं कर सकती अभिलाषा अभिनन्दन के योग्य हैं

अनसूया: तथा यथा भणसि।

अनसूया: ऐसा ही है जैसा तुम कह रही हो

प्रियंवदा: (प्रकाशम्)सखि! दिष्ट्यानुरूपसतेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति? क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते?

प्रियंवदा: (प्रकट रूप में) सखि, सौभाग्य से तेरा झुकाव तेरे अनुरूप ही है। सागर को छोड़कर और कहॉ महानदी गिरती हे? सहकार को छोडकर और कौन वृक्ष पल्लविता माधवीता के भार को सॅभाल पाता है?

राजा: किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते?

राजा: इसमें आश्चर्य ही क्या, यदि दोनों विशाखाएं चन्द्रलेखा का अनुसरण कर रही हैं?

अनसूया: कःपुनरूपायों भवेद्येनाविलम्बितं निभृतं च संख्या मनोरथं संपादयावः?

अर्थ: अनसूयाः कौन सा ऐसा उपाय हो सकता है, जिससे हम अविलम्ब और गुप्त रूप से सखी की मनोकामना पूरी करें?

प्रियंवदा: निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत शीघ्रमिति सुकरम् ।

प्रियंवदा: 'गुप्तरूप से' यह बात तो सोचनी पड़ेगी किन्तु 'शीघ्र' कहो तो यह बहुत सरल है।

अनसूया: ननु स राजर्षिरेतस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाष एतान् दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते।

अनसूया: उस-राजर्षि ने इस पर प्रेणपूर्ण दृष्टि से अपनी अभिलाषा सूचित कर दी है और वह इन दिनों रात-रात भर जागने से दुर्बल दिखायी दे रहा है।

सराजा:त्यमित्थंभूत एवास्मि। तथा हि-

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः।
अनभिलुलितज्याघाताङ्क मुहुर्मबन्धनात्
कनकवलंयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ।।10।।

राजा: सचमुच, मैं ऐसा ही हो गया हूँ। क्योंकि

रात-रात भर बाहु के ऊपर रखे गये ऑख के कोने से बहते हुए और हृदय के ताप से उष्ण ऑसुओं से जिसकी मणियॉ मलिन बना दी गयी है ऐसा यह सोने का कंकण कलाई से गिर-गिर जा रहा है और जब मैं इसे बार-बार ऊपर उठाता हूँ तो धनुष की प्रत्यंचा के आघातचिन्ह को स्पर्श नहीं करता।।**10**।।

प्रियंवदा: (विचिन्त्य) हला! मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। इमं देवप्रसादस्यापदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि।

प्रियंवदा: (सोचकर) सखि, उसके लिये एक प्रेमपत्र लिखवाया जाये, उसे मैं फूलों में छिपाकर देवता के प्रसाद के बहाने से उसके हाथ में पहुचा दूँगी।

अनसूया: रोचते में सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति?

अनसूया: यह सुन्दर प्रयोग मुझे भी चॅच रहा है, लेकिन शकुनतला क्या कह रही है?

शकुन्तला: को नियोगो विकल्प्यते ?

शकुन्तला ; क्या मैं तुम दोनों का आदेश टाल सकती हूँ ?

प्रियंवदा: तेन हा्रात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावल्ललितपदबन्धनम्।

प्रियंवदा: तब अपना उल्लेख करते हुए कोई सुन्दर पद्य सोचो।

शकुन्तला: हला चिन्तयाम्यहम्। अवधीरणाभीरू पुनर्वेपते में हृदयम्।

शकुन्तला: सखि, सोचती हूँ, किन्तु तिरस्कार से शड़्कित मेरा हृदय कॉप रहा है ?

राजा: (सहर्ष म्)-

अयं स ते तिष्ठति सड़्गमोत्सुको

विशङ्कसे भीरू! यताऽवधीरणाम् ।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ।।11।।

अर्थ- हे भयशीले, तुम जिसस तिरसकार की आशंका कर रही हो वह मैं तुम्हारे मिलन के लिए उत्कण्ठित होकर उपस्थित हूँ। याचना करने वाला लक्ष्मीकोप्राप्त करे, चाहे न करे, किन्तु लक्ष्मी जिस पुरूष को चाहती हो वह उसके लिए दुर्लभ कैसे हो सकता है**? ।।11।।**

सख्यौः आत्मगुणावमानिनि! क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति?

दोनों सखियॉः अरी अपने गुणों का अपमान करने वाली, अब कौन भला शरीर को शान्ति देने वाली शरद् की चॉदनी को वस्त्र के छोर से सोकता है?

शकुन्तलाः (सस्मितम्) नियोजितेदानीमस्मि ।

शकुन्तलाः (मुस्कान के साथ) अब तो मैं इस कार्य में लगा ही दी गयी हूँ। (बैठकर सोचती है।)

राजाः स्थाने खुल विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि । यतः

उन्नमितैकभ्रूलत्तमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन।।12।।

राजाः सचमुच ठीक अवसर पर अपलक नेत्र से प्रिया को देख रहा हूँ क्योंकि-

अर्थ-पदो की रचना करती हुई इसका मुख, जिसकी एक भ्रूलता ऊपर उठी हुई है, रोमांचयुक्त कपोल से मेरे प्रति अनुराग को व्यक्त कर रहा है **।।12।।**

शकुन्तलाः हला, चिन्तितं मया गीतवस्तु। न खलु संनिहितानि पुनर्लेखनसाधनानि ।

शकुन्तलाः सखि, मैंनं गीत का विषय सोच लिया है, परन्तु लिखने के साधन तो पास में है ही नहीं ।

प्रियंवदाः एतस्मिन्शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्ण कुरू ।

प्रियंवदाः इस शुक के उदर के समान कोमल कमलिनी के पत्ते पर नखों से वर्ण अङ्कित कर दो।

शकुन्तलाः (यथोक्त रूपयित्वा) हला! शृणुतमिदानीं संगतार्थ न वेति ।

उभेः अवहिते स्वः।

शकुन्तलाः (वाचयति)

त्व न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि ।
निर्धृण! तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि।।13।।

शकुन्तलाः (कहे गये अनुसार करने का अभिनय कर) सखि, तुम दोनों सुनो, ठीक अर्थ निकल रहा है या नहीं ।

दोनो सखियॉः हम दोनों ध्यान दे रही है ।

शकुन्तलाः (पढ़ती है)

हे निर्दय, तुम्हारे हृदय को मैं नहीं जानती, किन्तु कामदेव दिन में भी और रात में भी तुम्हारे में अपनी साध लगाये हुए मेरे अंगों को अत्यधिक ताप रहा है **।।13।।**

राजः (सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि! मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।।

ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः।।14।।

राजा: (सहसा आगे बढ़कर)-तन्वङ्गि । मदन तुम्हें ताप दे रहा है, किन्तु मुझे तो वह निरन्तर जला ही रहा है। दिवस जितना चन्द्रमा को कान्तिविहीन कर देता है उतना कुमुदिनी को नहीं

सख्यौ: (सहषम्)स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य ।)

दोनों सखियॉ (सहर्ष) स्वागत है विलम्ब न करने-वाले मनोरथ का ।

(शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति

(शकुन्तला सम्मानप्रदर्शन हेतु उठना चाहती है ।)

राजा: अलमलमायासेन ।

सन्दष्टकुसुमशनानयाशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि ।

गुरूपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ।।15।।

तुम्हारे ये अङ्ग, जिनमें पुष्प् की शय्या लगी हुई है, जो शीघ्र मुरझाये हुए कमलनाल के खण्डों से सुगन्धित हैं, शिष्टाचार के योग्य नहीं है **।।15।।**

अनसुया: इतः शिलातलैकदेशमलकरोतु वयस्यः।

अनसूया: इधर, शिलातल के एक भाग को प्रिय मित्र अलंकृत करें।

(राजोपविशति, शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति) (राजा बैठता है शकुन्तला लज्जि होकर बैठी रहती है।)

प्रियंवदा: द्वयोर्नु युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः सखीस्नेहो मां पुनरूक्तवादिनीं करोति।

प्रियंवदा:तुम दोनों को एक दूसरे का प्रेम ज्ञात है। किन्तु सखी का प्रेम मुझे पुनः कहने के लिए प्रेरित कर रहा है ।

राजा: भद्रे! नैतत्परिहार्यम् । विवक्षितं हा्रनुक्तमनुतापं जनयति ।

राजा: भद्रे, इसमें संकोच न करें। क्योंकि जिसके कहने की इच्छा हो उसे न कहने पर पश्चात्ताप ही होता है ।

प्रियंवदा:आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितत्यमित्येष युस्माकं धर्मः।

प्रियंवदा: विपत्ति में पड़े हुए राज्य के निवासी व्यक्ति के लिए राजा को कष्टनिवारक होना चाहिए यह आप लोगों का धर्म है ।

राजा: रास्मात्परम् ।

राजा: इससे बढकर काई धर्म नहीं ।

प्रियंवदा: तेनहीयमावयों प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता। तदर्हस्यभ्युपत्या जीवितं तस्या अवलम्बितुम् ।

प्रियंवदा: तो इस कारण हमारी इस प्रियसखी को भगवान् कामदेव ने तुम्हें लक्ष्य कर और ही अवस्था में पहुँ चा दिया है, अतः आप अनुग्रह कर इसका जीवन बचायें ।

राजा: भद्रे! साधारणोऽस्मि ।

राजा: भद्रे, यह प्रार्थना दोनों ओर समान है। मैं सर्वथा अनुग्रहीत हुआ हू

शकुन्तला:(प्रियंवदामवलोक्य)हला! किमन्तुः पुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरूपरोधंन?

शकुन्तला:(प्रियंवदा को देखकर) सखि अन्तपुर की रानियों के विरह से उत्कण्ठित राजर्षि को क्यों रोकती हो?

राजा: इदमनन्यपरायणमन्यथा

हृदयसन्निहिते! हृदयं मम।

यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे

मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः।।16।।

अर्थ- हृदय के भीतर सम्यक् निवास करने वाली प्रिये, यदि तुम मेरे इस अनन्यपरायण हृदय की अन्यथा समझती हो, तो मदिरेक्षणे, कामदेव के बाणों सेबिद्ध हुआ भी मैं पुनः मारा गया **।।16।।**

अ नु सूया: वयस्य! बहुवल्लभा राजानःश्रूयन्ते। यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वर्तय।

अनसूया: प्रिय मित्र सुना जाता है कि राजाओं की अनेक पत्नियॉ होती है। हमारी यह प्रियसखी अपने बन्धुओं के लिए चिन्ता का कारण न बन जाये, ऐसा ही व्यवहार करें।

राजाः भद्रे। किं बहुना-

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।

समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम्।।17।।

राजाः भद्रे अधिक क्या कहूँ ?

अर्थ-अनेक पत्नियों के होने पर भी मेरे वंश की प्रतिष्ठा दो ही है-समुद्ररूपी वस्त्र वाली पृथ्वी और मनोहर वस्त्र धारण करने वाली आपकी यह सखी **।।17।।**

उभे: निर्वृते स्वः।

दोनो सखियॉ: हम दोनों निश्चिन्त हो गयी हैं।

प्रियंवदा: अनसूये! यथैष इतो दत्तदृष्टिकरूत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति।

एहि संयोजयाव एनम्। (इत्युभे प्रस्थिते)

प्रियंवदा: (अन्यत्र दृष्टि डालते हुए)-अनसूया, देखो, यह बेचारा मृगछौना इधर ही दृष्टि डाले हुए अपनी मॉ को ढूँढ रहा है। आओ, इसे पहुँ चा दें।(दोनों जाने लगती है।

शकुन्तला: हला! अशरणास्मि। अन्यतरा युवयोरागच्छतु।

शकुन्तला: क्या दोनों चली ही गयीं?

उभेः पृथिव्याः शरणं स तव समीपे वर्तते।

शकुन्तलाः कथं गते एव?

राजा: अलमावेगेन। नन्वयमराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते।

राजा; घबराने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी आराधना करने वाला यह व्यक्ति तो तुम्हारे समीप है।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्

संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय करभोरू। यथासुखं ते
सवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।।18।।

अर्थ - क्या मैं शीतल और थकान को दूर करने वाले कमलिनी दल के पंखों से ठंडी हवा करू अथवा हे करभो, तुम्हारे कमल के समान लाल चरणों को गोद में रखकर इस प्रकार दबाऊँ कि तुम्हें सुख मिले**?।।18।।**

शकुन्तलाः न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये। (इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति)

शकुन्तलाः माननीय जन के प्रति अपने को अपराधिनी नहीं बनाऊँ। (उठकर जाना चाहती है।)

राजाः सुन्दरी! अनिर्वाणो दिवसः इयं च ते शरीरावस्था,

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः।।19।। (इति बलादेनां निवर्तयति)

राजाः सुन्दरि, दिन ढला नहीं है और तुम्हारे शरीर की यह दशा है ।
इस पुष्पशय्या को छोड़कर, जिसमें कमलिनी के पत्ते से स्तनों का आवरण बनाया गया है, तुम सर्वत्र व्याप्त सन्ताप के कारण कोमल अङ्गो से धूप में कैसे जाओगी **।।19।।** (बलपूर्वक उसे लौटाता है।)

शकुन्तलाः पौरव! रक्षाविनयम्। मदनसन्तप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि।

अर्थः-शकुन्तलाः पौरव, अविनय रहने दो। काम से सनतप्त होने पर भी मेरा अपने ऊपर अधिकार नहीं है।

राजाः भीरू! अलं गुरूजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्न तत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च-

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।।20।।

राजाः भीय, गुरूजनों का भय मत करो। तुम्हें देखकर धर्मज्ञ पूज्य कुलपति इसमें कोई दोष नहीं मानेगे। और भी-

अर्थ - अनेक राजर्षि-कन्याओं का गान्धर्व विधि से विवाह हुआ है और उनके माता-पिता ने उनका अभिनन्दन भी किया है, ऐसा सुना जाता है **।।20।।**

शकुन्तलाः मुन्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये।

शकुन्तलाः तो मुझे छोड़ो। मैं फिर सखियों से अनुमति लूँगी।

राजाः भवतु, मोक्ष्यामि।

राजाः अच्छा छोड़ दूं गा।

शकुन्तलाः कदा?

शकुन्तलाः कब?

राजा ; अपरिक्षतकोमलस्य यावत्
कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।

अधरस्य पिपासता मया ते

सदयं सुन्दरि! गृह्यते रसोऽस्य ।।21।।

राजा - जब हे सुन्दरि जैसे भौंरा अक्षत होने से कोमल नवीन पुष्प् का रस ग्रहण करता है, वैसे ही प्यासा हुआ मैं अक्षत होने से कोमल इस अधर का रस दयापूर्वक ले लूँ गा **।।21।।**

(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति, शकुन्तला परिहरति नाट्येन। नेपथ्ये)चक्रवाकवधू आमन्त्रयस्य सहचरम्। उपस्थिता रजनी ।

शकुन्तला (ससंभ्रमम्)पौरव! असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति। यावद्विटपान्तरितो भव ।

अर्थः-(उसका मुख ऊपर उठाना है, शकुन्तला बचाने का अभिनय करती है ।)

(नेपथ्य में)

चक्रवाकवधू सहचर से विदा ले लो। रात्रि आ पहुँ ची है ।

शकुन्तलाः (घबड़ाहट के साथ) पौरव, निःसन्देह मेरे शरीर का समाचार जानने के लिए आर्या गौतमी इधर ही आ रही हैं ।तब तक शाखाओं के पीछे छिप जाओं ।

राजाः तथा (इत्यात्मानमवृत्य तिष्ठति)

राजाः अच्छा। (अपने को छिपाकर खड़ा हो जाता है।)

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च)

(तब हाथ में जल का पात्र लिए हुए गौतमी और दोनों सखियॉ प्रवेश करती है।)

सख्यौः इत इत आर्या गौतमी ।

दोनों सखियॉः इधर, इधर से आर्या गौतमी।

गौतमीः (शकुन्तलामुपेत्य) जाते! अपि लघुसन्तापानि तेऽङ्गानि?

गौतमीः (शकुन्तला के पास जाकर)बच्ची, क्या तेरे अंगों का सन्ताप कुछ कम हुआ?

शकुन्तलाः अस्ति मे विशेषः।

शकुन्तलाःकुछ लाभ है ।

गौतमीः अनेन दर्भोदकेन निरावाधमेव ते शरीरं भविष्यति । (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से, परिणतो दिवसः। एहि उटजमेव गच्छामः। (इतिप्रस्थिता)

गौतमीः इस दर्भ के जल से तेरा शरीर नीरोग हो जायेगा । (शकुन्तला के सिर पर जल छिड़कर) बेटी, दिन ढल गया। आ, कुटी ढल गया । आ, कुटी में ही चलें ।

(सभी चल देते हैं।)

शकुन्तलाः(आत्मागतम्) हृदय! प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुन्चसि । सानुशयविघटितस्य कथं ते साम्प्रतं सन्तापः? (पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम्)लतावलय सन्तापहारक! आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय ।

(इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः)

अर्थः- (आत्मगत)हृदय, पहले तो सरलता से मनोरथ के उपस्थित होने पर तूने संकोच नहीं छोड़ा और अब पश्चात्ताप के साथ अलग होने पर तुझे सन्ताप क्यों हो रहा है? (एक पद चलकर

रूकती हुई प्रकट रूप में) लतावलय सन्तापहारक, मैं तुम्हारा फिर परिभाग के लिए आमन्त्रण करती हूँ।

(ऐसा कहकर शकुन्तला दुःख के साथ अन्य स्त्रियों सहित चली जाती है।)

राजाः(पूर्वस्थानमुपेत्य, सनिःश्वासम्) अहो! विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। मया हि-

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठ
प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् ।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः
कथामप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ।।22।।

क्व नु खलु संप्रति गच्छामि? अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्त्त स्थास्यामि। (सर्वतोऽवलोक्य)

राजाः (पहले स्थान पर आकर दीर्घ श्वास छोड़ते हुए) अहो, अभीष्ट वस्तु की सिद्धि विघ्नों से भरी होती है क्योंकि मैंने-

अर्थ- उस सुन्दर नेत्रों वाली के बार-बार अंगुलियों से ढँके गये अधर वाले, निषेध के शब्दों के अस्पष्ट उच्चारण के कारण मनोहर एवं कन्धे की ओर मुड़े हुए मुख को किसी प्रकार ऊपर उठाया, किन्तु उसे मैं चूम नहीं सका **।।22।।**

अब मैं कहाँ जाऊँ? अथवा यहीं पर प्रिया द्वारा सेवन करने के उपरान्त छोड़े गये लताकुन्ज में कुछ देर रहूँ। (चारो ओर देखकर)

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तु सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ।।23।।

अर्थः- यह शिला पर शरीर से दबायी गयी उसकी फूलों की शय्या है। यह कमलिनी के पत्ते पर नखों से अंकित मुरझाया हुआ प्रेमपत्र है। यह हाथ से गिरा हुआ कमलनाल का आभूषण है। इस प्रकार मेरी दृष्टि बंध गयी है और मैं इस सूने वेतसकुंज से भी सहासा निकल कर जा नहीं पा रहा हूँ।।23।।

राजन्!
सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवती परितः प्रयस्ताः।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः
सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ।।24।।

राजाः अयमहमागच्छामि ।

(इति निष्क्रन्तः)।।इति तृतीयोऽङ्कः।।

अर्थः- (आकाश में) राजन्,

सायंकालीन यज्ञकर्म के सम्यक् चलते रहने पर अग्नि से युक्त वेदी के चारों ओर फैली हुई, सन्ध्या के मेघों जैसी पिंगल वर्ण की छायाए भय उत्पन्न करती हुई बार-बार विचरण कर रही हैं ॥24॥

राजा: यह मैं आ रहा हूँ। (निकल जाता है)

॥तृतीय अंक समाप्त॥

अभ्यास प्रश्न 1-

निम्नलिखित प्रश्नों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. तपस्वियों के तेज की तुलना किस मणि से की गई है –
   क. हरित मणि ख. नीलमणि
   ग. सूर्यकान्तमणि घ. पद्ममणि
2. विधाता ने किस अलौकिक नारी सौन्दर्य की रचना की –
   क. अनुसूया ख. प्रियंवदा
   ग. शकुन्तला घ. वसुमती

5.5 सारांश

इस इकाई को अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि द्वितीय अंक में दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति आसक्ति प्रारम्भ से ही दृष्टिगोचर होती है। दुष्यन्त सरलता से आश्रम में रूकने का अवसर प्राप्त करता है और राजधानी से देवी पारण के लिये बुलाये जाने पर विदूषक को भेज देता है। जिस प्रेम ने प्रथम अंक में जन्म लिया और द्वितीय अंक में विकास प्राप्त किया वह इस तृतीय अंक में पूर्णता को प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही आपने यह भी जाना कि राजा दुष्यन्त व्यक्तिगत कर्त्तव्यों से ऊपर प्रजा के प्रति कर्त्तव्यों को महत्व देता है। वह मुनियों को अत्यधिक सम्मान देता है।

5.6 शब्दावली

त्वमयि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि=तुम भी पुष्पों के बाणों को वज्र की शक्ति से युक्त कर रहे हो या वज्र के समान दृढ बना रहे हो। वज्रस्य सारः इव सारः येषां ते वज्रसाराः (बहुव्रीहि)। न वज्रसाराः अवज्रसारा, अवज्रसारान् वज्रसारान् करोषि इति वज्रसारी करोषि (च्वि प्रत्यय)।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न 1 - 1. ग 2. ग ।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेयप्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982।

5.9 सहायक ग्रन्थ

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेयप्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- अभिज्ञानशाकुन्तलम् के तृतीय अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

तृतीय सेमेस्टर
खण्ड- तीन (Section-C)
अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ एवं पंचम अंक

इकाई .1 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक
श्लोक संख्या 01 से 11 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अभिज्ञान शाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 1 से 11 तक (मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणिक टिप्पणी)
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पुस्तकें
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृत नाट्कारों में कालिदास का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है उनकी अनुपम कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व के ईकाइयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि किस प्रकार राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से विवाह किया और यश की समाप्तिपर हस्तिनापुर चला गया।

प्रस्तुत इकाई में राजा के वियोग में बेटी शकुन्तला को दुर्वासा के आने का भास नही होता जिससे घटनाक्रम वही विपरीत अवस्था में पहुँच जाती है। दुर्वासा शाप देकर तथा उससे बचने का उपाय बताकर अर्न्तध्यान होते हैं। साथियों की चिन्ता पुनः काश्यप का आना और शकुन्तला को विदा करने की रचना का वर्णन प्राप्त होता है साथ ही काश्यप द्वारा शकुन्तला की मंगलमय विदाई के समय उपदेश करना इस इकाई की मुख्य विशेषता आप जान पायेगें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि -

- अभिज्ञान शाकुन्तलम् का चतुर्थ अंक की विशेषता क्या है ?
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् का चतुर्थ अंक में क्या वर्णन किया गया है?
- तत्र श्लोकचतुष्टय: कौन से है।
- इसमें मुख्य रूप से किस छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है।
- इसमें किस रस की प्रधानता है।

1.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 1 से 11 तक (मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणिक टिप्पणी)

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ)

(तब फूल तोडने का नाटक करती हुयी दोनो सखियाँ प्रवेश करती है)

अनुसूया-प्रियंवदे ! यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरुप भर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृत्तं में हृदयं तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्।

अनुसूया - प्रियंवदा ! यद्यपि गान्धर्व रीति से शकुन्तला का मंगलमय विवाह सम्पन्न हुआ और उसने अपने अनुरूप पति को प्राप्त कर लिया इसलिए मेरा मन खुश है तथापि इतनी चिन्ता है।

प्रियंवदा - कथमिव ?

प्रियंवदा - कौन सी ?

अनुसूया - अद्य स राजर्षिरिष्टि परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्त:पुरसमागतः इतो गतं वृत्तान्त्रं स्मरति वा न वेति।

अनुसूया - आज वह राजर्षि यज्ञ समाप्त होने के कारण ऋषियो से विदा किया गया अपने नगर मे प्रविष्ट होकर अन्तः पुर की रानियो से समामग होने के बाद यहाँ की वृतान्त स्मरण कर रहा है की नहीं ?

प्रियंवदा – विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृति विशेषा गुंण विरोधिनों भवन्ति । तात इदानीमिमं वृतान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।

प्रियंवदा - इस सम्बन्ध में निश्चिन्त रहो। उस प्रकार की विशिष्ट आकृतियाँ गुणों के विरोधी नहीं होती। इस समय पिता इस समाचार को सुनकर न जाने क्या सोचेगे?

अनुसूया - यथा अहं पश्यामि तस्यानुमंत भवेत्।

अनुसूया - जैसा मै सोच रही हूँ वे इसे अनुमति दे देगे।

प्रियंवदा - कथमिव ?

प्रियंवदा- कैसे ?

अनुसूया - गुणवतें कन्यका प्रतिपादनीयेंत्ययं तावत्प्रथमः संकल्पः। ते यदि दैव मेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृताया गुरूजनः।

अनुसूया - योग्य वर को कन्या प्रदान करनी चाहिए माता - पिता का प्रथम संकल्प होता है। यदि उसे भाग्य पूरा कर दे तो गुरूजन (माता - पिता) कृतार्थ हो जाते है।

प्रियंवदा - (पुष्प भाजनं विलोक्य) सखि अवचितानि बलिकर्म पर्याप्तान्ति कुसुमानि ।

प्रियंवदा - (फूलों की टोकरी देखकर) सखि! पूजा कर्म हेतु हमनें पर्याप्त फूल तोड़ लिए है।

अनुसूया- ननु सख्या: शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽअर्चनीया।

अनुसूया- अरेः सखि शकुन्तला के सौभाग्य देवता की पूजा करनी है।

प्रियंवदा - युज्यतें (इति तदेव कर्माभिनयत:)

प्रियंवदा - ठीक है (दोनो फूल चुनने का नाटक को करती है)

(नेपथ्ये) अयमहे भोः । (नेपथ्य से) अरे ! में यह आया हूँ।

अनुसूया- (कर्ण दत्वा) सखि ! अतिथिनामिव निवेदितम्।

अनुसूया- (कान देकर) सखि! किसी विशिष्ट अतिथि की पुकार लग रही है।

प्रियंवदा - ननूटज संनिहिता शकुन्तला।

प्रियंवदा - शकुन्तला तो कुटी में है।(आत्मगतम्) अद्य पुनर्हृदयेनासन्निहिता ।

(मन में) आज वह मन से कही और है।

अनुसूया- भवतु; अलमेतावदिभः कुसुमै: (इति प्रस्थिते) ।

अनुसूया- ठीक है, बस करो इतने ही फूल रहने दो। (इस प्रकार चल देती है)

(नेपथ्ये) (नेपथ्य से)

आः अतिथिपरिभाविनी! - अरे! अतिथि का तिरस्कार करने वाली !

विचिन्तयन्तीं यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपारिथतम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।। 1।।

अन्वय - अनन्यमनसा यम् विचिन्त्यन्तीं उपस्थितं तपोधनं माम् न वेन्सि,सः त्वां प्रमत्तः प्रथमं कृता कथमिव बोधितो अपि सन् न स्मरिष्यति ।

अनुवाद- एकाग्रचित मन से जिसका ध्यान करती हुयी तुम आये हुए मुझ तपस्वी पर ध्यान नही दे रही हों वह याद दिलाये जाने पर भी वैसे ही स्मरण नहीं करेगा जैसे पागल व्यक्ति पहले कही हुयी बातो की स्मरण नहीं करता।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे ऋषि शकुन्तला को शाप देता हुआ कहता है कि अनन्यमनसा = एकाग्रचित मन से, यय् = जिसका, विचिन्तयन्ती = ध्यान कर रही हो, उपस्थित = आये हुए, तपोधनं माम् = मुझ तपस्वी पर, न वेत्सि = ध्यान नहीं दे रही हो, सगुः = वह, त्वाम् = तुमरो,प्रमत्तः = पागल व्यक्ति के समान, प्रथमं = पहले, कृता कथं इव् कही गयी बातों मे, वोधितोऽपि = याद दिलाये जाने पर न स्मरिष्य ति = स्मरण नहीं करता।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अनन्यमनसा = न अस्ति अन्यत अवलम्वन यस्य तत अनन्यम्, अनन्यं मानसं यस्याः सा अनन्यमानसा। विचिन्तयन्ती = वि +चित् + णिच् + शतृ + डीप्। प्रस्तुत श्लोक में कार्व्यालेग, उपमा तथा छेकानुप्रास अलंकार है और वंशस्थ छन्द है।

प्रियंवदा हा धिक। अप्रियगेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन्कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः तथा शप्त्वा वेगवल्लोत्फुल्लयाः दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। कोडन्यो हुतवहाद्दग्धु प्रभवति ?

प्रियंवदा - किसी पूज्य अतिथि के प्रति शून्य हृदया शकुन्तला ने अपराध कर दिया (सामने देखकर) जिस किसी व्यक्ति के प्रति नही ये तो दुर्वासा है जो अत्यन्त क्रोधित होने वाले महर्षि है। वैसा शाप देकर चरण क्षेप वाली तीव्रगति से लौट रहे है। अग्नि को छोड़कर भला कौन जला सकता है।

अनुसूया - गच्छ! पदयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुप कल्पयामि

अनुसूया - जाओ। पैरों पर गिरकर उन्हें लौटाओ तब तक मैं अर्ध और जल तैयार करती हूं।

प्रियंवदा - तथा। (इति निष्क्रान्ता)

प्रियंवदा - ठीक है। (चली जाती है)

अनुसूया- (पदान्तरे स्खलितं निरुप्य) अहो! आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्र हस्तात्पुष्पभाजनम्। (अति पुष्पोच्चयं रूप्यति)।

अनुसूया - (कुछ पग चलकर गिरने का अभिनय करते हुए) अरे ! घबड़ाहट से लड़खड़ाती हुई चाल के कारण पुष्प् की टोकरी गिर पड़ी (फूल बीनने का नाटक करती है)।

(प्रविश्य) (प्रियंवदा प्रवेश करती है)

प्रियंवदा - सखी ! प्रकृतिवक्र: स कस्यानुनं प्रतिगृहणाति ? किमपि पुनः सानुक्रोश: कृत:।

प्रियंवदा - सखी ! प्रकृति से कुटिल वे किसकी प्रार्थना सुनते है ? फिर भी उन में कुछ दया आयी।

अनुसूया - तरिूमन् बहवेतदपि, कथय।

अनुसूया - उनके सम्बन्ध में यही बहुत है।, कहो।

प्रियंवदा - यदानिवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया - भगवन् प्रथम इति प्रेक्ष्याडविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधां मर्षितत्य इति।

प्रियंवदा - जब उन्होने आने की इच्छा की तब प्रार्थना की - भगवन प्रथम भूल है विचार कर तपस्या को प्रभाव को न जानने वाली अपनी बेटी के प्रथम अपराध को क्षमा करें।

अनुसूया - ततस्ततः

अनुसूया - तब क्या हुआ।

प्रियंवदा – ततो न मे वचनमन्यथाभवितुं नहिति, किन्तुभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाणं स्वयमन्तर्हित:।

प्रियंवदा - तब मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु पहचान चिन्ह रुपी किसी आभूषण को देखने पर शाप समाप्त हो जायेगा। यह कहते हुए वे स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये।

अनुसूया – शक्यमिदानीमाश्वासयितुम् । अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रास्थेतेन स्वानामधेयाङ्कितमङगुलीयकं स्मरणीयाकिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।

अनुसूया - अब हम निश्चिन्त हो सकती है जाते समय अपने नाम से अंकित अंगूठी स्मृति चिन्ह के रुप में स्वयं पहनाई है शकुन्तला के लिए उपाय अपने वश में ही रहेगा।

प्रियंवदा - सखि ! ऐहि देवकार्यम् तावत् निर्वर्तयावः:। (इति प्ररिक्रामतः)

प्रियंवदा - सखी ! आओ देवता पूजन का कार्य पूरा कर ले (दोनो घूमती है)

प्रियंवदा - (विलोक्य) अनुसूये ! पश्य तावत वामहस्तोपहित वदनालिखितेव प्रियसखि भर्तृगतया चिन्तयात्मानंमपि नैषा विभाययति, किं पुनरागन्तुकम्

प्रियंवदा - (देखकर) अनुसूया ! देखों बायें हाथ पर मुख रखकर सखी चित्र के समान लग रही है। पति के सम्बन्ध में चिन्ता के कारण अपनी सुध - बुध नही है। तो आगन्मुक की क्या बात है।

अभ्यास प्रश्न - 01

1. न तादृशा आकृति विशेषा ..... भवन्ति।
2. शकुन्तला को गले लगाकर कौन समझा रहा था।

(1) शारंगरव (2) प्रियंवदा

(3) काश्यव (4) अनुसूया

3. शकुन्तला को शाप किसने दिया ?

(1) गौतम (2) तपस्वी

(3) विश्वामित्र (4) दुर्वासा

4.दुर्वासा ने क्या दिखाने से शाप का प्रभाव कम होना बताया है -

(1) कपड़ा (2) शरीर

(3) पहचान (4) कुछ नही

अनुसूया - प्रियंवदे द्वयोरेव नौ मुख येव वृत्तान्ततिष्ठतु। रक्षितव्य रवलु प्रकृति पेलवा प्रिय सखी।

अनुसूया - प्रियवदा हम दोनों के मुख तक ही रहे, प्रकृत्ति से कोमल प्रिय सखी की रक्षा करनी चाहिए।

प्रियंवदा - कोनामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति ? (इति उभे निष्क्रान्ते)

प्रियंवदा - गर्म जल से नवमालिका जैसी कोमल को सिचेगा। दोनो का प्रस्थान (इति विष्कम्भकः) (विष्कम्भक समाप्त)। ततः प्रविशति (सुप्तोस्थित शिष्य) (सोकर जगा हुआ शिष्य प्रवेश करता है)

शिष्यः- वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्र भवता प्रवसादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशम निर्गतस्तावदवलोकयामि कियवदशिष्ट रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्ते प्रभातम । यथा हि-

शिष्य - तीर्थ से लौटे हुए पूजनीय काश्यप ने समय जानने के लिए आदेश दिया है तो बाहर निकलकर देखता हूँ कि रात कितनी बाकी है। (घूमकर और देखकर) अरे सुबह हो गया । क्योंकि-

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना -
माविष्कृतोऽरूणपुरः सर: एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपदव्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।। २।।

अन्वय - एकतः ओषधीनां पति । अस्त शिखरं याति । एकतः अरुणपुर: सर: अर्क: आविष्कृत: । तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्याम् लोक: आत्मदशान्तरेषु ।

अनुवाद - एक तरफ औषधीनां का स्वामी चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है और दूसरी तरफ अरूण को आगे किये हुए सूर्य उदय हो रहा है। दोनो तेजो का अस्त और उदय द्वारो मानों संसार अपने (सुख - दुख) अवस्थाओं में बंधा हुआ है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शिष्य द्वारा प्रकृति से सुख और दुख का सम्बन्ध जोड़कर कहा गया है कि एकत: एक तरफ औषधीनाम् पति = औषधीयों के स्वामी चन्द्रमा अस्तिशिखर याति = अस्ताचल को जा रहा है। एकत: = एक तरफ, अरूणपुर: सर: अर्क: =अरूण को आगे किये हुए सूर्य, आविष्कृत: = उदय हो रहा है। तेजोद्वयस्य युगपद = दो तेजों के एक साथ, व्यसनोदयाभ्यां = अस्त होना और उदय होना, लोक, = संसार आत्मदशान्तरेषु = अपने अवस्थावों में, नियम्यत इव मानों बधा हुआ है

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अस्तिशिखर = अस्यन्ते सूर्यकिरणा अत इति अस्त:। अस्तस्य शिखर अस्तशिखर (तत्पु0) आविष्कृत = अविस् +कृ + क्त । व्यसन् = वि + अस् +ल्युट भावे। शिशुपालवध महाकाव्य के नौवे सर्ग में चौसठवे श्लोक में ऐसी ही बात कही गयी है (उदयमहिमरश्मिर्याति शितांशुस्त हतविधिलासितानां हा विचित्रों विपाक:। प्रस्तुत श्लोक में दृष्टान्त , निदर्शना, समासोक्ति, तुल्ययोगिता तथा यथासंख्य अलंकार है और बसन्त तिलका छन्द है।

अपि च - और भी -

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीं मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य

दु:खानि नूनमतिमात्र सुदु:सहानि ।। ३ ।।

अन्वय - शशिनि अन्तर्हित सा एवं कुमुद्वती संस्मरणीय शोभा मे दृष्टि न नन्दयति नूनम् अबलाजनस्य इष्टप्रवासजनितानि दु:खानि अतिमात्रसुदु:सहानि।

अनुवाद - चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर वही कुमुदनी, जिसकी सुन्दरता अब स्मृति की वस्तु रह गयी हैं मेरी दृष्टि को आनन्दित नही करती । निश्चय ही स्त्रियो के लिए प्रियतम के प्रवास से उत्पन्न कष्ट अत्यन्त असह्य होता है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में उसी क्रम में शिष्य कहता है कि शशिनि = चन्द्रमा के, अन्तर्हिते = अस्त हो जाने पर सा एव = वही कुमुदनी =कुमुदरी संस्मरणीय शोभा =जिसकी सुन्दरता अब स्मृति की वस्तु रह गयी है मे हरि मेरी दृष्टि कोन नन्दयति = आनन्दित नहीं करती नूनम् = निश्चय ही अवलाजनस्य = स्त्रियों के लिए, इप्टप्रवासजनितानि = प्रियतम के प्रवास से उत्पन्न दु:खानि =कष्ट अतिमात्र दु:सहानि = अत्यन्त् असहय होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - संस्मरणीय शोभा = संस्मरणीय शोभा यस्या सा इष्टप्रवासजनितानि = इष्टस्य प्रवासेन जनिनरति। प्रवास =प्र + विस् +हास। प्रस्तुतश्लोक में समासोक्ति,काव्यालिंग , अर्थान्स्यास, छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास तथा श्रुत्यानुप्रास अलंकार है तथा वंशस्थ छन्द है।

अनुसूया - यद्यपि नाम विषयपराङमुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमा चरितम्।

अनुसूया - यद्यपि विषयाभिमुख व्यक्तियों को सांसारिकता का ज्ञान नहीं है फिर भी उस राजा ने शकुन्तला के प्रति उचित आचरण नही किया।

शिष्य – यावदुपस्थितां होमवेलां गुरूवे निवेदयमि ।

शिष्य - तब तक गुरू जी से निवेदन कर देता हूँ कि हवन का समय हो गया है। (इति निष्क्रान्ता) (इस प्रकार चला जाता है)

अनुसूया प्रतिबुद्धापि कि करिस्यामि ? न मे उचितेस्वपि निजकार्येषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानी सकामो भवतु ; येनासत्य सन्धे जने शून्य हृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वासस: कोप: एष: विकारयति । अन्यथा कथ स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत्कालस्य लेखामात्रमपि न विसृजति? तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजाव: । दु:खशीले तपस्वी जने कोऽप्यर्थताम् ? ननु सरवीगामी दोष इति व्यवसितापि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्तसत्वां शकुन्तलानिवेदयितु इत्थंगतऽस्यामि: कि करणीयम।

अनुसूया - जगकर भी क्या कँरूगी ? प्रात: कालोचित कार्यो मे मेरे हाथ पैर नहीं चल रहे है अंब काम देवकी इच्छा पूरी हो जिससे झूठ बोलने वाले व्यक्ति में शून्य हृदयवाली सखी का मन लिप्त किया है। अथवा दुर्वासा के शाप से उत्पन्न विकार है। अन्यथा कैसे वह राजा उस प्रथा से बात कदम अभी तक एक पत्र भी नही प्रेषित किया है तब हम यहाँ से पहचान हेतु अंगुठी भेज । कष्ट सहने वाले तपस्वियों में किससे प्रार्थना की जाय? चूँकी गड़बडी सखी का है इसलिए निश्चय करने पर भी तीर्थ से लोटकर आये हुए पिता काश्यप से मै यह प्रार्थना नहीं कर पा रही हूँ। कि शकुन्तला दुष्यन्त की परिणाम हो चुकी है और गर्भ धारण की है। इस परिस्थिति में हम क्या करें ?

(प्रविश्य)

(रंगमंच पर प्रियंवदा प्रवेश करती है)

प्रियंवदा - (सहर्षम्) सखी ! त्वरस्य शकुन्तलाया: प्रस्थान कौतुकम् निर्वर्तयितुम् ।

प्रियंवदा - (प्रसन्न होकर) सखि ! शीघ्रकरो शकुन्तला का मंगल विदाई करनी है ।

अनुसूया - श्रुणु इदानीं सुखशयनपृच्छिका शकुन्तलासकाशं गतास्मि । ततो यावदेनां लज्जावनतमुखी परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्टया धूमाकुलितदृष्टेरपि पावकः एवाहुति: पतिता। वत्से। सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृता अद्यैव ऋषिभिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि इति ।

प्रियवंदा - सुनो, अभी सुख पूर्वक सोयी की नही यह पूछने शकुन्तला के पास गयी थी, तब उसी समय लज्जा के कारण नीचे मुख करने वाली उसे गले लगाकर पिता काश्यप ने इस प्रकार प्रशंसा की - सौभाग्य से धूयें से विकृत दृष्टि वाले भी यजमान की आहूति अग्नि में ही पड़ी । पुत्री। योग्य शिष्य को दी गयी विद्या के समान मेरे लिए असोचनीय हो गयी है। आज ही ऋषियों के संरक्षण में तुम्हारे पति के पास भेज देता हूँ।

अनुसूया - अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः?

अनुसूया -यह वृत्तान्त पिता कण्व से किसने कहा ?

प्रियंवदा - अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीर विना छन्दोमय्या वाण्या संस्कृतमाश्रित्य

प्रियंवदा - यज्ञ शाला में प्रवेश करने पर शरीर से रहित छन्दोमयी वाणी ने।

(संस्कृत का आश्रय लेकर)

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भा शमीमिव ।। 4।।

अन्वय - ब्रहमन् ! दुष्यन्तेन भुव: भूतये अहितं तेज: दधानां तनयां अग्निगर्भाम् शमीम इव अवेहि।

अनुवाद - हे ब्राहमण ! दुष्यन्त के द्वारा पृथ्वी के कल्याण के लिए स्थापित तेज को धारण करने वाली पुत्री को अपने भीतर अग्नि को छिपानें वाली शमीलता के समान समझिए।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में आकाशवाणी द्वारा शकुन्तला के परिणिता होने की बात काश्यप् से कही गयी है हे ब्रह्मन = हे ब्राहमण, दुष्यन्तेन = दुष्यन्त के उपर भुवः भूतये = + पृथ्वी के कल्याण केलिए , अहित तेजः = स्थापित तेज को, दधानां = धारण करने वाली, तनयां = पुत्रीं का, अग्नि गर्भाम् = अपने भीतर अग्नि को छिपाने वाली शमीलतां इव अवेहि = शमीलता के समान समझिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तेजः तिज् + असुन। दधानां= धा +शानच् + ताप। प्रस्तुत श्लोक मे श्रतिपूर्णोपमा अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है ।

अनुसूया - (प्रियंवदामाशिलष्य) सखि ! प्रियं में , किन्त्यद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि ।

अनुसूया - (प्रियंवदा को गले लगाकर) सखि, मेरे लिए अच्छी बात हुई, किन्तु आज ही शकुन्तला को पहुँचाया जा रहा हैं । इससे उत्कण्ठा से युक्त परम सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ ।

प्रियंवदा – सखि आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्याव:। सा तपस्विनी निवृता भवतु।

प्रियंवदा - सखि हम लोग तो उत्कण्ठा को दूर कर लेगी। वह तपस्विनी तो सुखी हो जाय।

अनुसूया - तेन ह्येताश्मेश्चूतशाखावलाम्बिते नालिकेर समुदगक एतास्मिन्निमित्तमेष कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसंनिहितां कुरू । यावदहमपि तस्यं मृगरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भानि विरचयामि।

अनुसूया - तब इस आम के वृक्ष पर लटके हुए नारियल के डिब्बे में इसी प्रयोजन से देर तक ताजी रहने वाली केसर की माला मैने रखा है। तुम इसे अपने हाथ में ले लो। तब तक में भी उसके लिए मृगरोना, तीर्थो की मिट्टी , दूब, पल्लव आदि मांगलिक वस्तुएं तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा - तथा क्रियताम।

प्रियंवदा - वैसा ही करो

(अनुसूया निष्क्रान्ता, प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति)

(अनुसूया चली जाती है,प्रियंवदा फूल लेने का अभिनय करती है।)

(नेपथ्ये) (नेपथ्य में)

गौतमी ! आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्रा: शकुन्तलानयनाय।

गौतमी शार्ङ्गरव आदि को शकुन्तला को ले जाने का आदेश दे दो।

प्रियंवदा - (कर्ण दत्वा) अनुसूये ! त्वरस्य , एते खलु हस्तिनापुरगामिन: ऋषयः अकार्यन्तें

प्रियंवदा - (कान लगाकर) अनुसूया जल्दी करो। हस्तिनापुर जाने वाले इन ऋषियों को पुकारा जा रहा है। (प्रविश्य समालम्भन हस्ता)

अनुसूया - सखि ! एहि गच्छाव:।

अनुसूया - सखि, आओं चले।

(इति परिक्रामतः) (दोनों घूमती है)

प्रियंवदा - (एषा) सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभि: । स्वस्तिवाचनिकाभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनामं

प्रियंवदा - (देखकर) यह सूर्योद्रय के समय ही सिर से स्नान की हुई शकुन्तला बैठी है। और हाथ मे नीवार लेकर स्वस्तिवाचन करके तापसियां उसका अभिनन्दन कर रही है। चलो उसके समीप चलें।

(इत्युपसर्पत:) (दोनों समीप जाती है)

(ततः प्रविशति यथोछिष्टव्यापारासनस्था शकुन्तला)

(तब पहले की तरह से बैठी हुई शकुन्तला दिखाई देती है)

तापसीनामन्यतमा: - (शकुन्तलांप्रति) जाते !भर्तुबहुमानसूचकं महादेवी शब्दं लभस्व।

तापसियों में एक - (शकुन्तलासे) बेटी ! पति के अत्यधिक आदर को सूचित करने वाली महादेवी पद को प्राप्त करो।

द्वितीया – वत्से ! वीरप्रसविनी भवः।

दूसरी तापसी - पुत्री वीर पुत्र की माता होवो।

तृतीया: - वत्से ! भर्तुर्बहुमता भव।
तीसरी तापसी - पुत्री, पति की अत्यन्त प्यारी बनो।
(इत्याशिषो दत्वा गौतमी बर्ज निष्क्रान्ता:)
(इस प्रकार आर्शीवाद देकर गौतमी के अंतिरिक्त अन्य तापसियाँ चली जाती है)
सख्यौ: - (उपसृत्य) सखि! सुखमज्जनं मे भवतु।
शकुन्तला: - स्वागंतं मे सख्यौ इतो निषीदतम।
शकुन्तला - मेरी सखियों का स्वागत है। तुम दोनो इधर बैठो।
उभे: - (मंगलपात्राण्यादाय उपविश्य) हला ! सज्जा भव। यावन्मङगलसमालम्भनं विरचयाव:।
दोनों सखियाँ - (माड़गलिक पात्रों को लेकर और बैठकर) सखी तैयार हो जाओ। तब तक हम मंगल की सामग्रियां सजाती है।
शकुन्तला - इदमपि बहु मन्तव्यम् दुर्लभमिदानी मे सखीमण्डनं भविष्यतीति।
शकुन्तला - यही मेरे लिये बहुत है। मेरे लिए सखियों द्वारा अब सजाया जाना दुर्लभ हो जायेगा।
(इति वाष्पं विसृजति) (आँसू गिराती है।)
उभे: - सखि ! उचित न ते मंगलकाले रोदितुम।
दोनों सखियो - सखि ऐसे शुभ समय पर रोना उचित नहीं है
(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाटयेन प्रसाधयतः)
(आँसूओं को पोंछकर सजाने का अभिनय करती है।)
प्रियंवदा - आभरणोचित रूपम् आश्रमसुलभै: प्रसाधनै विप्रर्कीते।
प्रियंवदा - जो रूप आभूषणों के योग्य है। वह आश्रम में सुलभ प्रसाधनों से विगाड़ा जा रहा है।
(प्रविश्योपायनहस्तौ)
(हाथ में उपहार लिए दो ऋषिकुमार प्रवेश करते है।)
ऋषिकुमारकौ: - इदमलंकरणम् ! अलंक्रियेतामत्रभवति।
दोनों ऋषि कुमार - यह अलंकार है। इनको आप सजाइये।
(सर्वा विलोक्य विस्मिता:)
(सभी देखकर विस्मित होती है।)
गौतमी: - वत्स नारद ! कुत एतत् ?
गौतमी -पुत्र नारद , यह कहाँ से ?
प्रथम: - तातकाश्यपप्रभावात।
प्रथम - ऋषिकुमार पिता कश्यप के प्रभाव से।
गौतमी: - किं मानसी सिद्धिः ?
गौतमी - क्या उनकी मानसी सिद्धि है ?
द्वितीय:- न खलु श्रयताम् तत्रभवता वयंमाज्ञप्ता: शकुन्तला हेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरत इति। तत इदानीं।

द्वितीय ऋषिकुमार - ऐसा नहीं है। पूज्य गुरूजी ने हमें आदेश दिया कि शकुन्तला के लिए वनस्पतियो से फूल चुन लाओ। तब इस समय-

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरूणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठयूतश्चरणोपरागसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्र्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै ,
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेद प्रतिद्वन्द्विभिः :।। 5।।

अन्वय - (नः) केनचित तरूणा इन्दुपाण्डु मांगल्यम् क्षौमम् आविष्कृतम्। केनचित चरणोपरागसुलभः निष्ठधूतः। अन्येभ्यः तत्किसलेयोदभेदप्रतिद्वन्द्विभिः आपर्वभागोत्थितैः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

अनुवादः- किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान सफेद मंगलमय रेशमी वस्त्र प्रगट किया। किसी वृक्ष ने चरणो में उपयोग करने योग्य महावर निकाल कर दिया। दूसरे वृक्ष ने कलाई तक उठी हुई और उन वृक्षों के कोमल पल्लवों जैसी लगने वाली, वनदेवियों की हथेलियो मे हमे आभूषण प्रदान किये ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में वृक्षों द्वारा शकुन्तला को दिये गये आभूषणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि केनचित तरूणा =किसी वृक्ष ने, इन्दुपाण्डु =चन्द्रमा के समान सफेद माङ्गल्यम औगम् =मंगनेमयी रेशमी वस्त्र आविष्कृतमः प्रकट किया , केनचित किसी वृक्ष ने चरणोपभोगसुलभः चरणों में उपयोग करने योग्य लाक्षारस्ः-महावर, निष्ठुयत निकालकर दिया, अन्येभ्य=अन्य वृक्षों ने ततकिसलयोदभेदप्रतिद्वन्द्विभिः =कोमल पल्लवो के समान लगनें वाली आपर्वभागोत्थितै: = कलाई तक उठी हुई। वनदेवताकरतलैः = वन देवियों के हथेलियों ने, आवरणानिदत्तानि आभूषण प्रदान किये।

व्याकरणत्मिक टिप्पणी –

क्षौमम =क्षुमा+अण्, मांगल्यम्-मंगल्य + अण् निष्ठयतः निव+ ष्ठित +क्त् आपर्वभागोत्थिर्सते =पर्वणोभगः प्रदेशः पर्वभागः तपर्यन्तम आपर्णभागम (अव्ययी भाव) आपर्वभागम उत्थिताः (सहसुपेति समास)प्रस्तुत श्लोक में उपमा, संसृष्टि, श्रुत्यानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास अलंकार है और शार्दूलबिक्रीडित छन्दहै ।

प्रियंवदा: -(शकुन्तला विलोक्य) हला ! अनयाभ्युपपत्या सूचिता मे भर्तुगेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति।

प्रियंवदा - (शकुन्तला को देखकर) सखि इस कृपा से सूचित हो रहा है कि पति के घर में राजलक्ष्मी बनेगी।

(शकुन्तला व्रीड़ां रूपयति) -(शकुन्तला लज्जा का नाटक करती है)

प्रथमः - गौतम ,आओ, स्नान कर उठे हुए काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

प्रथम ऋषि कुमार - गौतम , आओ, स्नान कर उठे हुए काश्यप् से वनस्पतियों के सेवा के सम्बन्ध मं बतायें।

द्वितीय - तथा (इति निष्क्रान्तौ)

द्वितीय ऋषि कुमार - अच्छा (इस प्रकार दोनो चले जाते है।)

सख्यौः - अये ! अनुपयुक्तभूषणोऽयंजनः । चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु आभरणपिनियोग कुर्वः।

दोनो सखि - अरे ! हमने तो कभी आभूषणों का प्रयोग नही किया है । चित्रों के परिचय से तुम्हारे अंगों में आभूषण पहनाते है।

शकुन्तलाः -जाने वां नेपुणम।

शकुन्तला - तुम दोनों की निपुणता से मैं परिचित हूँ।

(उमे नाट्येनालंकुरुतः) (दोनो आभूषण पहनाने का नाटक करती है।)

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः)

(तब रंगमंच पर स्नान करके उठे काश्यप का प्रवेश होता है।)

काश्यपः -

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथंनु तनयाविश्लेष दुःखैर्नवैः ।। 6।।

अन्वय- अद्य शकुन्तलाः यास्यति इति हृदयम् उत्कष्ठया संस्पृष्टम्। कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषः दर्शनं चिन्ताजडम। अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् इदं ईदृशं वैक्लव्ययम्, गृहिणः नवैः तनयविश्लेषदुःखैः कथं न पीडयन्ते।

अभ्यास प्रश्न-2

1- .औषधियों के स्वामी किसे कहा गया है-

1.सूर्य को 2. यम को
3.कण्व को 4.चन्द्रमा को

2- शकुन्तला के गर्भवती होने की सूचना कण्व को कैसे प्राप्त होती है -

1. अनुसूया द्वारा 2. शकुन्तला द्वारा
3. प्रियंवदा द्वारा 4. छन्दोमयी वाणी द्वारा

3- शकुन्तला को वनस्पतियाँ क्या देती है -

1. वस्त्र 2. अलंकार
3. महावर 4. सभी

4- काश्यप के दृष्टि में गृहस्थ लोग अपनी पुत्री की विदाई में पीड़ित होते है या नही ?-

अनुवाद - आज शकुन्तला जायेगी इसलिए मेरा हदय उत्कष्ठा से भर आया है। कण्ठ अश्रुप्रवाह के कारण विकृत हो रहा है। और दृष्टि चिन्ता के कारण् सूनी हो गयी है। वन में रहने वाले मुझको स्नेह के कारण ऐसी बेचैनी हो रही है तो गृहस्थ लोग पुत्री के अलग होने के नये दुःखों से क्यों नही दुःखी होते होगें ?

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में कण्व ने पुत्री के वियोग से उत्पन्न होने वाले अनुभव की चर्चा करते हुए कहा है कि अद्य = आज, शकुन्तला यास्यति = शकुन्तला जायेगी, इति = इसलिए, हदयं =

मेरा हदय, उत्कंण्यासंस्पृष्टम = उत्कण्ठा से भर आया है। कण्ठः = कण्ठ, स्तम्भितवाष्पवृत्तिककलुषः = रोके गये अश्रु प्रवाह के कारण विकृत हो गया है। दर्शनम्चिन्ताजड़म = दृष्टि चिन्ता के कारण जडवत हो गयी है। अरण्यौकस: मम = वन में रहने वाले मुझको। स्नेहात = स्नेह के कारण, इदम् इदृशं वैक्लव्यम् = ऐसी बैचेनी हो रही है, गृहण = गृहस्थ लोग, नवैतनयाविश्लेष दुःखै = पुत्री के अलग होने के नये दुःखौ से, कथं न पीडयन्ते = क्यो नही दुःखी होते होगें, प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक , समुच्चय, वृत्यनुप्रास अलंकार है तथा शार्दुलविक्रीडित छन्द है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - उत्कंण्ठया = उत + कण्ठ + अ+ टाप। संस्पृष्टम् = सम + स्पृश + क्त। दर्शनम् = दृश + ल्युट। विश्लेष = वि + श्लिष् + घ´। प्रस्तुत श्लोक चतुर्थ अंक के महत्वपूर्ण श्लोकों में प्रथम है।

(इति प्ररिक्रमति) (चारों ओर घूमते है।)

सख्यौः - हला शकुन्तले ! अवसितमण्डनासि । परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। (शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते)

दोनों सखियां - सखि शकुन्तला तुम्हारा श्रगांर पूर्ण हुआ। अब रेशमी जोड़ा धारण् कर लो। (शकुन्तला उठ कर पहनने का नाटक करती है।)

गौतमी: - जाते ! एष त आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गरूरूपस्थितः आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व।

गौतमी- ये तुझे आनन्दाश्रु बहाने वाले नेत्रों से आलिंगन सा करते हुए पिता आये है, तो अभिवादन आचार का पालन करों।

शकुन्तला:- तात ! वन्दे।

शकुन्तला - पिता जी प्रणाम।

काश्यप: - वत्से!

काश्यप - पुत्री।

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तृबंहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरूमवाप्नुहि।।7।।

अन्वय - ययाते: शमिष्ठा इव, भर्तुः बहुमता भव। सा पूर्वम् इव त्वम् सम्राजं सुतम अवाप्नुहि।

अनुवाद - जैसे राजा ययाति को शर्मिष्ठा अत्यधिक प्यारी बनी । वैसे ही तुम पति की प्रिय बनों । जैसे शर्मिष्ठा ने पुरू नामक सम्राट पुत्र को प्राप्त किया उसी प्रकार तुम भी सम्राट पुत्र को प्राप्त करो।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुए कहते है कि ययाते शर्मिष्ठाइव = जिस प्रकार राजा ययाति को शर्मिष्ठा अत्यन्त प्यारी बनी, भर्तु बहुमता भव = वैसे ही तुम पति की प्रिय बनो।, सापुरूमेव = जैसे शर्मिष्ठा ने पुरू नामक पुत्र को प्राप्त किया।, त्वम् सम्राजं सुतं = उसी प्रकार तुम भी सम्राट पुत्र को ।, अवाप्नुहि = प्राप्त करो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - सम्राजं = सम् + राज + क्विप। उक्त श्लोक में उपमा अलंकार है तथा अनुष्टुप छन्द है।

गौतमी - भगवन ! वरः खल्वेषः नाशिषः।

गौतमी - भगवन ! यह वस्तुत: वरदान है आशीर्वाद नही।

काश्यप - वत्से ! इत: सद्योहुताग्नि प्रदक्षिणी कुरूष्व। (सर्वे परिक्रमन्ति)

काश्यप - पुत्री ! जिसमें शीघ्र हवन किया गया है उस अग्नि की प्रदक्षिणा करो। (सभी परिक्रमा करतेहै)

कश्यप - (ऋकछन्दसाऽशास्ते)

कश्यप - (ऋग्वेद के छन्द से आर्शीवाद देते है)

अभी वेदिं परितः क्लृप्तिधिष्ण्याः
समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-
र्वैतानास्त्वां बह्वयः पावयन्तु ।।8।।

अन्वय - अमी समिद्धन्तः वेदिम् परितः कलृप्तधिष्ण्याः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भा: वैताना: हव्नयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपहान्तः त्वा पावयन्तु।

अनुवाद - यह यहा काष्ठ से सम्बद्ध वेदी के चारों ओर जिनके स्थान बने है। जिनके किनारो पर कुश बिछाया गया है जो हव्य पदार्थो के गन्धों से अनिष्ट को नष्ट कर रही है तुम्हे पावन बनाये।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुए कहते है कि अमी समिद्धन्तः = यह यश काष्ठो से सम्बद्ध वेदिम् परितः = वेदी के चारों ओर क्लृप्तधिष्ण्याः = जिनके स्थान बने है प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः जिनके किनारों पर कुश विछाया गया है; वैताना हवनय:= जो हव्यपदार्थो हव्यगन्धै =गन्धो से दुरितं अपहनन्तः =अनिष्ट को नष्ट कर रही है, त्वां पावयन्तु =तुम्हे पावन बनाये ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

समिद्धन्त:=समिधः सन्ति येषां इति, समधि +मतुप्। प्रान्संस्तीर्णदर्भा =प्रान्तेषु सस्तीर्णा: दर्भा येषांतं बहुवीहि । अपहनन्तः =अप+हन्+शतृ। प्रस्तुत श्लोक में परिकर अलंकार है तथा त्रिष्टुप वैदिक छन्द है।

प्रतिष्ठस्वेदानीग् (सदृष्टिक्षेपम) क्व ते शार्ङगरवमिश्राः ?

अब प्रस्थान करो (इधर उधर देखकर) शारर्गरव आदि कहां है ? (प्रविश्य) (शिष्य प्रवेश करता है)

शिष्यः - भगवन् ! इमे स्मः ।

शिष्य - भगवन ! मैं यह हू।

काश्यप - भगिन्यास्ते मार्गमादेशय ।

काश्यप -अपनी बहन को मार्ग दिखाये।

(सर्वे परिक्रमन्ति) (सब घूमते है)

काश्यप - भो भो ! संनिहितातपोवनतरवः ।

काश्यप - अरे तपोवन में स्थित वृक्षों।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्माष्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसूमप्रसूति समये यस्या भवत्युसवः
सेयं याति शकुन्तला , पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।। 9।।

अन्वय - युष्मासु पीतेषु या प्रथमं जलं पातु न व्यवस्यति। प्रियमण्डनापि यां भवतां स्नेहेन पल्नवम् न आदन्ते वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्या उत्सवः भवति। सा इयं पतिगृह याति। सर्वै अनुज्ञायताम्।

अनुवाद - जो (प्रातःकाल) आप को जल पिलाये बिना स्वयं जल पीने के लिए उद्यत नहीं होतीं; अलंकार प्रिय होने पर भी जो अति स्नेह के कारण आपके (कोमल) पल्लव को नहीं तोड़ती है, आपके प्रथम बार फूल खिलने पर जिसका लिए उत्सव होता था; वही शकुन्तला अपने पति के गृह जा रही है आप सभी जाने की अनुमति दों।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शकुन्तला के जाते समय तपोवन वृक्षों से अनुमति मागता हुआ कहता है कि - अपीतेषुया = जो आपको जल पिलाये बिना, प्रथमं जलं =पहले जल, पातुं न व्यवस्पति =पीने के लिए उद्यत नही होती, प्रियमण्ऽनापि = अलंकार होने पर भी , या भवतां = जो आपके, स्नेहेन = स्नेह के कारण, पल्लवम् = पल्लव को, न आदत्ते = न ही तोड़ती है, वः आाद्ये =आपके प्रथमवार, कुसुमप्रसूतिसमये = फूल खिलने पर , यस्याः उतसवः भवति = जिसके लिये उत्सव का दिन होता था। सा इयं शकुन्तला = वही शकुन्तला, पतिगृह याति = पति गृह जा रही है। सर्वै अनुज्ञायताग् = आप सभी जाने की अनुमति दे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अपीतेषु =न विधते पीतं येषां तेऽपीताः तेषु (व० प्री०) प्रियमण्डनापि = प्रिय मण्डन यस्याः सा तथोक्ता (व० प्री०) आदत्ते = आ + दा + लट् प्र० पु० ए० । प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, काव्यलिंग, समुच्चय, वृत्यानुप्रास तथा श्रुत्यानुप्रास अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(कोकिलरवं सूचयित्वा) (कोयल के कलरव की ओर सूचित करके)

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवास बन्धुभिः।
परभृतविरूतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ।। 10 ।।

अन्वय - इयं शकुन्तला वनबास बन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना यथा कलं परभृतम् एभिः ईदृशम् प्रतिवचनीकृतम्।

अनुवाद -इस शकुन्तला को तपोवन में निवास करते समय वन्धुओं ने वृक्षो के द्वारा जाने की आज्ञा दे दी गयी है। क्योकि अपने कलरव से कोयल ने इस प्रकार उत्तर दिया है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शकुन्तला के मंगल विदाई के समय कोयल के मधुर कलरव के सम्बन्ध में कहा गया है कि - इयं शकुन्तला = इस शकुन्तला को,वनबास बन्धुभिः = तपोवन में निवास करते समय बन्धु बने हुए, तरुभिः = वृक्षों के द्वारा , अनुमतगमना = जाने की अनुमति दे

दी गयी है, यथा = क्योंकि ,जैसे , कलरवभृतविरुतम् = अपने कलरव से कोयल, एभिः ईदृशं = इस प्रकार, प्रतिवचनीकृतम = उत्तर दिया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अनुमतगमना = अनुमतं गमनं यस्याः सा (बहु०), प्रतिवचनीकृतम् = प्रतिवच +चि + कृ + क्त। प्रस्तुत श्लोक में परिणाम अलंकार है तथा अपरवम्त्र नामक छन्द है।(आकाशे)

(आकाश से)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि -

छायादृमैर्नियमितार्कमयूखतापः।

भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः

शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थः।।११।।

अन्वय - अस्याः पन्थाः कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः छायान्दुमैः नियमितार्कमयूखतापः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवन च शिवः च भूयात्।

अनुवाद - इसका मार्ग कमलिनियों से हरे बनें हुए सरोवरों के कारण मध्य भाग में सुन्दर, घनी छाया वाले वृक्षों के द्वारा अल्प किये गये सूर्य के ताप वाला कमल पराग के समान कोमल धूलि से युक्त, शान्त एवं अनुकूल समीर वाला तथा मंगलकारी हो।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में आकाशवाणी के माध्यम से शकुन्तला को आशीर्वाद दिया गया है कि- अस्याः पन्थाः = इसके मार्ग, कमलिनीहरितैः = कमलिनी से हरे, सरोभिः = सरोवरो के कारण, रम्यान्तरः = मध्य भाग में सुन्दर, छायान्दुमैः = घनी छाया वाले वृक्षों के द्वारा, नियमितार्कमयूखतापः = अल्प किये गये सूर्य के ताप द्वारा, कुशेशयरजोमृदुरेणुः = कमल पराग के समान कोमल धूलि से युक्त, शान्तानुकूलपवन च = शान्त एवं समीर वाला, शिवः च भूयात् =तथा मंगलकारी हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - कमलिनीभिः हरितैः (तत्पु०) रम्यान्तरः = रम्यं अन्तरं यस्य स यथोक्तः (बहु०) कुशेशयः कुशे +शी+ अच्। शान्तानुकूलपवनः = शान्तश्चासौ अनुकूलश्च शान्तानुकूलः शान्तानुकूलः पवनः यास्तिन प्रस्तुत श्लोक में तुल्योगिता, परिकर, काव्यलिंग, वृत्यनुप्रास तथा श्रुत्यनुप्रास अलंकार है तथा वसन्ततिलका छन्द है।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पाये है कि -चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में शकुन्तला की सखियॉ पुष्प चुनने का अभिनय करती है तथा उसी समय कुटी के दरवाजे पर दुर्वासा का आगम होता है। दुर्वासा शकुन्तला द्वारा अपना अपमान समझकर शाप देते है बहुत मनाने पर पहचान दिखाने पर शाप से मुक्ति का मार्ग बताते है। प्रातः की सूचना देने हेतु, शिष्य कण्व के समीप जाता है। उधर अनुसूया शकुन्तला की चिन्ता कर रही है तभी प्रियंवदा वहा जाकर सूचना देती है कि पिता कण्व को यज्ञशाला में प्रवेश करते ही शरीर बिना वाणी ने सब कुछ बता दिया तथा कण्व शकुन्तला की विदाई की तैयारी करते है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

(1) विषकम्भक - भूत और भविष्य की सूचना देने वाला तथा अंक आरम्भ में आने वाला विषकम्भक कहलाता है।

(2) मानसी सिद्धि - मन से चाहने पर प्राप्त होने वाले।

(3) ऋक्छन्द - ऋचा का मन्त्र

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1-

(1) गुण विरोधिनो। (2) काश्यप

(3) दुर्वासा (4) पहचान

अभ्यास प्रश्न -2-

1. चन्द्रमा 2. छन्दोमयी वाणी द्वारा

3. सभी 4. हाँ

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा॰ उमेश चन्द्र पाण्डेय प्रकाशक - प्राचय भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. साहित्य दर्पण

2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.अभिज्ञान शकुन्तलम् के चतुर्थ अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखो ?

2- चतुर्थ अंक क्यों प्रसिद्ध है लिखिए।

इकाई .2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 12 से 22 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 12 से 22 तक
(मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणिक टिप्पणी)
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तकें
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृत नाट्कारों में कालिदास का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है उनकी अनुपम कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। प्रस्तुत इकाई में राजा के वियोग में बेटी शकुन्तला को दुर्वासा के आने का भास नही होता जिससे घटनाक्रम वही विपरीत अवस्था में पहुँच जाती है। दुर्वासा शाप देकर तथा उससे बचने का उपाय बताकर अर्न्तध्यान होते हैं। साथियों की चिन्ता पुनः काश्यप का आना और शकुन्तला को विदा करने की रचना का वर्णन प्राप्त होता है साथ ही काश्यप द्वारा शकुन्तला की मंगलमय विदाई के समय उपदेश करना इस इकाई की मुख्य विशेषता आप जान पायेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि -

- अभिज्ञान शाकुन्तलम् का चतुर्थ अंक की विशेषता क्या है ?
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् का चतुर्थ अंक में क्या वर्णन किया गया है?
- तत्रश्लोकचतुष्टय: कौन से है।
- इसमें मुख्य रूप से किस छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है।
- इसमें किस रस की प्रधानता है।

2.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 12 से 22 तक (मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणिक टिप्पणी)

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति) (सब विस्मय पूर्वक सुनते है)

गौतमी - जाते ! ज्ञातिजनास्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवन देवताभि। प्रणम् भगवतीः।

गौतमी - बेटी ! बन्धुजनों के समान स्नेह करने वाली तपोवन की देवियों ने तुम्हे जाने की अनुमती दे दी है। इन देवियों को नमस्कार करो।

शकुन्तला - (सप्रणामं परिक्रम्य जनान्तिकम्) हला प्रियंवदे ! नन्वार्यपुत्रदर्शनोत्सुकायाः अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते।

शकुन्तला - (प्रणाम पूर्वक घूमकर हाथो के ओट से) सखि प्रियंवदा आर्यपुत्र के दर्शनार्थ व्याकुल होने पर भी आश्रम स्थान को छोड़ते हुए मेरे पैर बड़े दुःख के साथ आगे बढ रहै है।

प्रियंवदा - न केवलं तपोवनविरहकातरा सखयेव। त्वयोपास्थितवियोगस्थ तपोवनस्यापि तावत्समवस्था प्रियंवदा - केवल सखि ही तपोवन के वियोग से व्याकुल नही है। तुमसे इस समय वियोगित होने वाले तपोवन की भी समान अवस्था दिखई पड़ रही है।

उदगलितदर्भकवला। मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्य श्रूणीव लताः।12।।

अन्वय - गृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः मयूरा परित्यक्त नर्तनाः लता अपसृतपाण्डुपत्राः अश्रूणि मुन्चयन्ति इव।

अनुवाद - हरिणियों ने कुश के ग्रास उगल दिये है, मोरो ने नृत्य करना छोड़ दिया है। पीले पत्तों का त्याग करती हुयी लताए मानो अश्रु बहा रही है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में कवि प्रकृति की मानवीय रूप मे उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है कि - मृग्यः= हरिणियों ने, उद्गलितदर्भकवलाः=कुश ने ग्रास उगल दिये है, मयूरा परित्यक्त नर्तनाः = मोरो ने नृत्य करना छोड़ दिया है, लता = वन की लताएँ अपसृतपाण्डपत्राः = पीले पत्तो का त्याग करती हुयी लताए, अश्रूणि मुन्चयन्ति इव = मानो अश्रु बहा रही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

उदगलितदर्भकवला = उदगलितः दर्भाणां कवलः याभिः ताः (बहु०) परित्यक्त नर्तना = परित्यक्तः नर्तनं यस्ते (बहु०) अपसृमपाण्डपत्रा मन्चन्त्यश्रणीव लताः प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है ओर आर्या छन्द है।

शकुन्तला - (संस्मृत्वा) तात ! लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये।

शकुन्तला - (कुछ याद कर) ! पिताजी ! लताभगिनी वनज्योत्सना से तब तक विदा ले लूँ।

काश्यप - अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहं । इयं तावद्वक्षिणेन।

काश्यप - मैं समझ रहा हूँ। तुम्हारा उससे सहोदर जैसा प्रेम है। यह तुम्हारे दाहिनी तरफ है।

शकुन्तला - (लतामुपेत्यालिड़मा) वनज्योत्सने ! चूतसंगतापि मां प्रत्यालिंगेतोगताभिः शाखाबहाभिः । अद्य प्रकृति दूरपरिवर्तिनी भविष्यामि।

शकुन्तला - (लता के पास जाकर आलिंगन कर) हे वनज्योत्सने ! आम के साथ लिपटी होने पर भी बाहर निकली शाखा रुपी भुजायों से गले मिलो। सम्भव मै दूर देश गामिनी हो रही हूँ।

काश्यप –

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-
मस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः ।। 13।।

अन्वय - मया तवार्थे प्रथमं एव संकल्पितं आत्मसदृश भर्तार सुकृतैः गता। इयम् नवमालिका चूतेन संश्रितवती। सम्प्रति अहं अस्यां च, त्वयि च, बीतचिन्तः।

अनुवाद - मेरे द्वारा तुम्हारे लिए जिस प्रकार के पति की संकल्पना की गयी थी वैसे ही अपने योग्य पति को तुमने अपने पुण्य कर्मो से प्राप्त किया। यह नवलतिका ने आम्र वृक्ष का सहारा पा लिया । इस समय इसके प्रति तथा तुम्हारे प्रति मै चिन्ता रहित हो गया हूँ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला तथा नवमलिका लता के प्रति निश्चियता का अनुभव करते हुए कहते है कि - मया = मेरे द्वारा, तवार्थे = तुम्हारे लिए, प्रथमं एव संकल्पितं = जिस प्रकार के पति की संकल्पना की थी, आत्मसदृश = (वैसा) अपने योग्य, भतरिं = पति को तुम ,सुकृतैः गता = अपने पुण्य कर्मों से प्राप्त किया, इयम् नवमालिका = यह नवमालिका ने, चूतेन संश्रितवती = आम्र वृक्ष का सहारा पा लिया । संप्रति = इस समय अहं अस्यां च = इसके प्रति त्वयि च = और तुम्हारे प्रति ,बीतचिन्तः = चिन्ता रहित हो गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

आत्मसदृशम् = आत्मनः सदृशय (तत्पुरूष) संश्रितवती = संश्रितम, अस्तीति संश्रितवती, बीतान्तिः = वीता चिन्ताः यस्य (बहु०) प्रस्तुत श्लोक में तुल्योगिता, समासोक्ति, तथा काव्यलिंग अलंकार है तथा बसन्ततिलका छन्द है।

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व - इधर से प्रस्थान करो।

शकुन्तला - (सख्यौ प्रति) हला। एषा द्वयोयुवयोर्ननु हस्ते निक्षेपः।

शकुन्तला - (दोनों सखियों के प्रति) सखि ! इसको तुम दोनो को धरोहर के रूप में सौप रही हूँ।

संख्यौ - अयं जने कस्य हस्ते समर्पितः? (इति वाष्पं विहरतः)

दोनों सखियाँ - हम लोगों को किसेके हाथ मे दे रही हो (इस प्रकार रोने का अभिनय करती है)

काश्यप - अनुसूये ! अलं रूदित्वा । ननु भवतिभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला।

काश्यप - अनुसूया ! रोना बन्द करो। तुम दोनों को ही शकुन्तला को ढाढस दिलाना है।

(सर्वे परिक्रामन्ति) (सभी रंग मंच पर घूमते है)

शकुन्तला - तात ! एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भ मन्थरा मृगवधूर्यदानघप्रसवा भवति तदा मह्यं कंमपि प्रियनिवेदयितृक विसर्जयिष्यथ।

शकुन्तला - पिता जी ! आश्रम के चारो ओर विचरण करने वाली गर्भ धारण करने से जिसकी गति मन्द है यह मृगवधू कष्ट रहित प्रसव के बाद मेरे समीप इस शुभ समाचार हेतु किसी को भेजिएगा।

कश्यप - नेदं विस्मरिष्यामः।

कश्यप - यह नहीं भूलूंगा।

शकुन्तला - (गति भङ्ग रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते ?

शकुन्तला - (लड़खहाने का अभिनय कर) कौन है जो मेरे वस्त्र को खीच रहा है?

(इति परावर्ते) (इस प्रकार घूमती हैं)

काश्यप - वत्से ! काश्यप - पुत्री!

यस्यत्वयां व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुश सूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवी मृगस्ते ॥14॥

अन्वय - यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे त्वया व्रणविरोपनम् इंगुदीनां तैल न्यषिन्यत सः अथं श्यामाकमुष्ठिपरिवर्धितकः पुत्रकृतकः मृगः ते पदवीं न जहाति।

अनुवाद - जिसके कुशों के तीक्ष्ण अग्रमात्र से कंटे हुए मुख मे तेरे द्वारा घावभरने वाला इंगुदी नामक तेल लगाया गया था और जिसे श्यामाक की मुट्ठी खिला-खिलाकर स्नेह के साथ पाल - पोस कर बढ़ाया था, वही पुत्र बना मृग तेरा मार्ग नहीं छोड़ रहा है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे मृगछौना द्वारा शकुन्तलाके वसन खीचे जाने के बाद काश्यप् कहते है कि यस्य = जिसके, कुशसूचिविद्धे = कुशोके तीक्ष्ण अग्रमाग से कटे हुए, मुखे = मख में,

त्वया = तेरे द्वारा , व्रणविरोपनम् = घावभरने वाला, इंगुदीनां तैल = इंगुदी नामक तेल, न्याषिन्यत् = लगाया गया था। सः अथं = वही, श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः = श्यामक की मुट्ठी खिला खिलाकर स्नेह के साथ पाल - पोस कर बढ़ाया गया था, पुत्रकृतकः = पुत्र बना, मृगः मृग ते पदवी = तुम्हारा मार्ग, न जहाति नही छोड़ रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

व्रणविरोपणम् = व्रणानां विरोपणम् वि रूप+णिच् +ल्युट् कुशसूचिविद्धे = कुशानां सूचिमिः विदधे कुशसूचि विद्धे (तत्पु०)। न्यषिच्यतं = निसिच्+अड़ प्रस्तुत श्लोक मे छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, तथा काव्यलिंग अलंकार है और बसन्तलिलका छन्द है।

शकुन्तला - वत्स। कि सहवास परित्यागिनीं मामनुसरसि? अचिरप्रसूतया जनन्या विना बर्धितोऽसि । इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्।

शकुन्तला - पुत्र! एक साथ निवास को छोड़ने वाली मेरा अनुसरण कर रहे हो ? जन्म लेते ही विना मा के रहने पर तुम्हे मैने बढाया है। इस समय भी मेरे न रहने पर पिता जी तुम्हारा ध्यान रखेगे। अतएव लौट जावों।

(इति रूदती प्रस्थिता) (रोती हुयी चल देती है)

काश्यप - **उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरूपरूद्धवृत्तिं**
बाष्पं कुरू स्थिरतया विहानुबन्धम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमि भागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ।। 15 ।।

अन्वय - उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरूद्धवृत्ति वाष्पं स्थिरतया विरतानुबन्धनम् कुरू। खलु अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे अस्मिन् मार्गे ते पदानि विषमीभवन्ति।

अनुवाद - उन्नत बरौनियों वाले आखों मे प्रवाह को अवरूद्ध करने वाले आँसू को धैर्यतापूर्वक निरन्तर बहने से रोको । क्योकि न देखे गये ऊँची-नीची भूमि वाले मार्ग में तुम्हारे पैर सीधे नहीं पड़ रहे है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे काश्यप शकुन्तला को रोने से मना करते हुए कहते है कि उत्पक्ष्मणोः = उन्नत वरौनियों वाले, नयनयोः = आँखो मे, उपरूद्धवृत्ति = प्रवाह को अवरूद्ध करने वाले, वाष्पम् = आँसू को, स्थिरतया = धैर्यतापूर्वक, विरतसुबन्धम् कुरू = निरन्तर वहने से रोको। खलु = क्योकि, अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे = न देखे गये ऊँची-नीची भूमि वाले मार्गे मे, ते पदानि = तुम्हारे पैर, विषमीभवन्ति = सीधे नही पड़ रहे हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - उत्पक्ष्मणो = उद्गतानि पक्ष्माणि ययोतयोः (बहु) उपरूद्धवृत्तिं = उपरूद्धा वृत्तिः येन तम् ( ) स्थिरतया = स्थिर + तल् तृ०एव विहत = वि + रम् + क्त। विषमीभवत्ति = विषम + भू + लट्। प्रस्तुत श्लोक मे काव्यलिंग अलंकार है तथा बसन्त तिलका छन्द है।

शाड़र्गरव - भगवन्। ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यं इति श्रूयते । तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि ।

शाड़र्गरव - भगवन् ! तालाब तक स्नेही जनों के साथ विदा करने के लिए जाना चाहिए। इस प्रकार शास्त्रों में सुना जाता है। यहीं से संदेश देकर लौट जाइये।

काश्यप - तेर्हीमां क्षीर वृक्षच्छायामाश्रयामः।

काश्यप - इसलिए इस दूध वाले वृक्ष की छाया का आश्रय लेकर हम रूके।

(सर्वे परिक्रम्य स्थिताः) (सभी घूमकर खड़े होते है)

काश्यप - (आत्मगतम्) किं नुखलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम् ?

काश्यप - (मन में) माननीय दुष्यन्त के लिए हम कौन सा उचित संदेश दे सकते है?

शकुन्तला - (जनान्तिकम्) हला! पश्य नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति दुष्करमहं करोमिति तर्कयामि।

शकुन्तला - (हाथ की ओट से) सखि ! देखो नलिनी पत्र के ओट में होने पर सहचर को न देखकर चक्रवाकी चिल्ला रही है इससे तो मै विचार करती हूँ कि मै कठिन कार्य कर रही है।

अनुसूया - सखि ! मैव मन्त्रयस्य ।

अनुसूया - सखि ! ऐसी बाते न सोचो।

एषापि प्रियेण बिना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।

गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ।। 16 ।।

अन्वय -एषा अपि प्रियेण बिना विषाददीर्घतराम् रजनी गमयति आशाबन्धः गुरू अपि विरहदुःख साहयति।

अनुवाद - यह भी प्रियतम के बिना दुः ख के कारण बड़ी बनी हुयी रात्रि बिताती है। आशा का बन्धन विरह के महान दुःख को भी सहन करने योग्य बना देता है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे शकुन्तला को आशा बधाते हुए अनुसूया कहती है कि - एषा अपि =यह भी, प्रियेण बिना = प्रियतम् के बिना, विषाददीर्घतराम् = दुःख के कारण बड़ी बनी हुयी, रजनी = रात्रि, गमयति = , बिताती है। आशाबन्धः =आशा का बन्धन,गुरूअपि विरह दुःख =विरह के महान दुःख को भी, साहयति = सहन करने योग्य बना देता हैं ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

विषादः दीर्घतराम् =विषादेन् दीर्घतराम् (तत्पुरू०) आशाबन्धः आशायाः बन्ध । प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा आर्या छन्द है।

काश्यप - शार्ड़गरव ! इति त्वमा मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।

काश्यप - हे शार्ड़गरव ! शकुन्तला को अपने आगे कर तुम मेरे वचन को राजा से कहना।

शार्ड़गरव - आज्ञापयतु भवान्।

शार्ड़गरव - आप आज्ञा दे।

काश्यप -

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-

स्त्वयस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताग्।

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,

भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूवन्धुभिः ।।17।।

अन्वय: अस्मान् संयमधनान् च आत्मनः उच्चैः कुलं च त्वयि अस्या कथमपि अवान्धवकृतां तां स्नेह प्रवृत्ति च साधु विचिन्त्य, त्वया इयं दारेषु सामान्यप्रतिपतिपूर्वक दृश्या । अतः परं भाग्यायत्तम् । तत खलु बधूवन्धूभि: न वाच्यम।

अनुवाद - हम लोगो के पास संयम ही धन है (तथा) अपने उत्तम कुल का, आपके प्रति इसके स्वाभाविक रूप से बन्धुओं से रहित कराये गये उस प्रेम सम्बन्ध का सम्यक विचार कर आपके द्वारा इसको अपनी पत्नियों में समान आदर देते हुए देखे । इससे अधिक तो भाग्य के अधीन है। जिसे वधू के अभिजनों को नहीं कहना चाहिए।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे काश्यप राजा के लिए संदेश देते हुए शारंगरव से कहते है कि- अस्मान् संयमधनान = हम लोगों के पास संयम ही धन है (तथा) आत्मनः उच्चैकुलं च = और अपने उत्तम कुल का, त्वयि अस्था = आपका उसके प्रति कथमपि = स्वाभाविकरूप से, अवान्धवकृतां = बन्धुवो से रहित कराये गये,तां स्नेह प्रवृत्तिच् = उससे प्रेम सम्बन्ध का, साधु विचिन्त्य = सम्यक विचार कर, त्वया = आपके द्वारा , इयं = इस, दारेषु = अपनी पत्नियों में, सामानयप्रतिपत्तिपूर्वकं = समान आदर देते हुए, दृश्या = देखे, अतः पर = इससे अधिकतो भाग्ययत्म = भाग्य के अधीन है। ततः खलु = जिसे, वधू बन्धूभिः = वधू के अभिजनों को, न वाच्यम = नहीं कहना चारिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

संयगधनान् =संयम एव धन येषां (बहुव्रीहि) अवान्धवकगंबान्धवैः कृता अबान्धवकृतां = न बानधवकृतां अबान्धवकृतां ताम्। प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुतप्रसंशा, काव्यलिंग तथा वृत्यनुप्रास अलंकार है तथा शार्दुलविक्रीडित छन्द है।

शारंगरव - गृहीतः सन्देश । शारंगरव - सन्देश को ग्रहण किया।

काश्यप - वत्से! त्वमिदानीमनुशासनी
यासि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्।

काश्यप - पुत्री! इस समय तुम्हे शिक्षा देनी है। तपोवनवासी होने पर भी लौकिकता का ज्ञान हमे है।

शारंगरव - न खलुधीमयं कश्चितविषयोनाम्।

शारंगरव - विद्वत् जनों को कुछ भी अज्ञात नहीं होता ।

काश्यप - सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य -

काश्यप - यह तुम यहाँ से स्वामी के घर पहुँचकर-

शुश्रुषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा: कुलस्याधयः।।18।।

- शुश्रुष्व= शु+सन्+लोट लरप। प्रियसखीपृत्ति = प्रिय: सखी (कर्मधारय) प्रियसंख्याः वृत्तिम् (तत्पु०)। विप्रकृतापि = वि+प्र+कृ+क्त+टाप्। युवति = यूवन्+ति। प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास, रुपक, निर्दशना अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीडितछन्द है।

कथं वा गौतमी मन्यते । गौतमी का इस पर क्या राय है।

गौतमी - एतावान्वधूजनस्योपदेशः ।

अन्वय - गुरून् शुश्रुष्व। सपत्नीजने प्रियसरवीवृत्तिं करू। विप्रकृतापि रोषणतया भर्तुः प्रतीपं मा स्म गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणा भव। भाग्येषु अनुत्सेकिनी। एवं युवतयः गृहिणीपद यान्ति। वामा कुलस्य आधयः।

अनुवाद - श्रेष्ठ जनों की सेवा करना। अपने सौत के साथ प्रियसखी के समान व्यवहार करना। तिरस्कृत होने पर भी क्रोध से स्वामी के विपरीत आचरण न करना। सेवकों के प्रति उदार बनना तथा भाग्योदय के समय घमंड न करना। इस प्रकार युवतियाँ गृहस्वामिनी का पद प्राप्त करती है उसके विपरीत व्यवहार करने वाली कुल के लिए शोक का कारण बनती है ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को समझाते हुए कहते है कि गुरून शुश्रुस्व = श्रेष्ठ जनों की सेवा करना। सपत्नीजने प्रियसरवीवृत्तिं करू = अपने सौत के साथ प्रियसखी के समान व्यवहार करना। विप्रकृतापि रोषणतया = तिरस्कार होने पर भी क्रोध से,भर्तुः प्रतीपं मास्मगमः = स्वामी के विपरीत आचरण न करना। परिजने भूयिष्ठ = सेवको के प्रति उदार बनना तथा, भाग्येषु अनुत्सेकिनी = भाग्योदय के समय घमंड़ न करना। एवं युवतयः = इस प्रकार युवतियाँ , गृहिणीपदं यान्ति = गृहस्वामिनी का पद प्राप्त करती है । वामा कुलस्य आधयः = इसके विरूद्र आचरण करने वाली कुल के लिए शोक का कारण बनती है ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी जाते ! एतत्खलु सर्वमवधारय ।

गौतमी - यही वधू के लिए उपदेश होता है। पुत्री । यह सव कुछ ठीक से स्मरण करलो ।

काश्यप - वत्से ! परिष्वजस्व मां सखीजनं च ।

काश्यप - पुत्री मुझसे और अपने सखियों के गले मिलो ।

शकुन्तला - तात् ! इतं एव कि प्रियंवदाऽनसूये सख्यो निवर्तिष्यन्ते ।

शकुन्तला - पिताजी ! यहाँ से ही क्या प्रियंवदा आदि सखियाँ चली जायेगी ।

काश्यप - वत्से ! इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति ।

काश्यप -पुत्री ! इनकी भी शादी करनी है। इनका वहाँ जाना अच्छा नही है।तुम्हारे साथ गौतमी जायेंगी ।

शकुन्तला: (पितरमाश्लिस्य) कथमिदानीं तातस्याड़कापरिभ्रष्टा मलयतरून्म्लिता चन्दनलतेण दंशान्तरे जीवितं धारयिष्ये।

शकुन्तला: (पिता के लगे मिलकर) किस प्रकार अब मैं मलय वृक्ष से उखाडी गयी चन्दन लता के समान पिता के अंक से छूटकर अन्य देश में जीवन धारण करूँगी।

काश्यप - वत्से ! किमेवं कातरासि ?

काश्यप - पुत्री ! इस प्रकार अधीर क्यो हो रही हो।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदं
विभवगुरूभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्क प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।। 19 ।।

अन्वय - वन्से, त्वम अभिजनवतः भर्तु श्लाघ्ये गृहिणीपदं स्थिता, तस्य विभवगुरुभिः कृत्यैः प्रतिक्षण आकुला अचिरात् प्राची अर्क इव पावनं तनयं प्रसूय च मम् विरहजां शुचं न गणयति।

अनुवाद - पुत्री ! तुम अति उत्तम कुल वाले पति के सम्माननीय गृहस्वामिनी के पद पर अधिष्ठित होकर उसके वैभव के कारण बड़े कार्यो में हरपल व्यस्त रहकर शीघ्र ही जिस प्रकार पूरब दिशा भगवान सूर्य को उत्पन्न करती है उसी प्रकार पावन पुत्र को जन्म देकर मुझसे वियोग के दु: ख पर ध्यान नहीं देगी।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को समझाते हुए कहते है कि वत्से = पुत्री, त्वम् =तुम, अभिजनवतः = अति उत्तम कुल वाले, भर्तुः = पति के, श्लाध्ये = सम्माननीय, गृहिणीपदं = गृहस्वामिनी के पद पर,। स्थिता = अधिष्ठित रहकर तस्य = उसके विभवरूभिः = वैभव के कारण बड़े कार्यो में, प्रतिक्षण आकुला = हर पर व्यस्त रहकर, अचिरात प्राची = शीघ्र ही पूरव दिशा अर्क इव = जिसरूप सूर्यका प्रसूय उत्पन्न होती है उसी प्रकार पावन तनयं प्रसूय = सभी को पावन बनाने वाले पुत्र को उत्पन्न रूप मम विरदजां = मुझसे वियोग के दु:ख को शुचं न गणयिष्यसि = ध्यान नहीं दोगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अभिजनः = अभि+जन्+घञ् । श्लालाघ्य: = श्लाघ्+ण्यत् प्रत्यय। तन्य = तन् +अयन्। प्रसूय = प्र + स्+कत्वा प्रस्तुत श्लोक में उपमा, काव्यलिंग, वृत्यनुप्रास अलंकार है तथा हरिणी छन्द है।

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति) (शकुन्तला पिता जी के चरणों पर गिरती है)

शकुन्तला - (सख्यावुपेत्य) हला ! द्वे अपिमां सममेव परिष्वजेताम्।

शकुन्तला - (सखियों के समीप जाकर) सखि ! तुम दोनो मुझसे एक साथ गले मिलो।

सखयौ - (तथा कृत्वा) सखि! यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत ततस्तस्येदमात्मनामधेयाड़िकत मङ्गुलीयकं दर्शय।

दोनों सखियाँ - (वैसे ही करती हुयी) सखि ! यदि कदाचित् वह राजा तुम्हे पहचानने मे विलम्ब करे तो उन्हे उनके नाम के अक्षरो वाली अंगूठी दिखाना ।

शकुन्तला - अनेन संदेहेन् वामाकम्पितास्मि।

शकुन्तला - तुम दोनों के इस संदेह से मै कम्पित हो उठी हूँ ।

सख्यौ - मा भैषीः । **अतिस्नेहः पापशंकी** ।

दोनों सखियाँ - डरो ना। अति स्नेह के कारण शंका हो रही है।

शारंगरव – युगान्तरमारूढ़ सविता। त्वरतामत्रभवती।

शाड़र्गरव - सूर्य दो पहर में पहुचा है। आप शीघ्रता करे।

शकुन्तला - (आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) तात कदा नु भूयस्तपोवन प्रेक्षिष्ये।

शकुन्तला - (आश्रम की ओर मुख करके) पिताजी कब मै पुनः इस तपोवन में आऊँगी ?

काश्यप - **भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी**
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।।20।।

अन्वय - चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा अप्रतिरथं दौष्यन्ति तनयंनिवेश्य तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धम् अस्मिन् शान्ते आश्रमे पुनः पदं करिष्ये ।

अनुवाद - दीर्घकाल पर्यन्त चारो समुद्र तक विस्तारित पृथ्वी की सौत बनकर दुष्यन्त से उत्पन्न कभी पराजित न होने वाले पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाकर उसको राज्य का भार दे देने वाले अपने स्वामी के साथ तुम फिर इस तपोवन में निवास करोगी।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे शकुन्तला के पुनः आगमन के सम्बन्ध मे काश्यप कहते है कि - चिराय = दीर्घकाल पर्यन्त, चतुरन्तमहीसपत्नी = चारों समुद्र तक विस्तारित पृथ्वी की सौत, भूत्वा = बनकर, अप्रतिरथं = कभी पराजित न होनेवलि दौष्यन्ति तनय निवेश्य =दुष्यन्त से उत्पन्न पुत्र को राज सिंहासन पर बैठाकर, तदर्पितकुटुम्बभरेण = उसको राज्य का भार दे देने वाले भर्ता सार्धम = अपने स्वामी के साथ, अस्मिन शान्तं आश्रमे पुनः पद करिष्यामि = तुम फिर इस तपोवन में निवास करोगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - चतुरन्तमहीसपत्नी = चत्वार: अन्ताः यस्याः तादृशा मध्याः सपत्नी। (बहुव्रीहिमंसक तत्पुरूष) दौष्यत्तिम् दुष्यन्तस्य अपत्यम् प्रमान् दौज्सन्ति । दुष्यन्त + इन्। निवेश्य = नि+विश+णिच्+कत्वा (ल्यप्)। प्रस्तुत श्लोक में मायादीपक और काव्यलिंग अलंकार है तथा वसन्त तिलका छन्द है।

गौतमी - जाते। परिहीयते गमन बेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेवैव मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान।

गौतमी - पुत्री ! प्रस्थान का समय व्यतीत हो रहा है। पिता को लौटा दो। नही तो बहुत देर तक बार बार ऐसे ही उपदेश देते रहेगे। महानुभाव आप लौटे।

काश्यप - वत्से ! उपरूध्यते तपोऽनुष्ठानं।

काश्यप - पुत्री! यज्ञ कर्म में विघ्न हो रहा है।

शकुन्तला - (भूयः पितरमाशिलष्य) तपश्चरणपीड़ितं तात शरीरम्। तन्मातिमात्रं मम् कृतः उत्कष्ठितम्।

शकुन्तला - (पुनः पिता के गले लगकर) तपस्या करने के कारण शरीर आपका दुर्बल हो गया है। आप मेरे लिए अधिक चिन्ता न कीजिएगा ।

काश्यप - (सनिःश्वासम्) काश्यप (उच्छवास लेकर)

शममेष्यति मम शोक: कथ नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरूढं नीवारवलिं विलोकयतः ।। 21 ।।

अन्वय – वत्से ! त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारवलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम्।

अनुवाद - पुत्री! तुम्हारे द्वारा जो पहले रखा गया था कुटी के द्वार पर उगे हुए निवारधान को देखकर मेरा शोक कैसे समाप्त हो सकेगा।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप के जाने के बाद भी शोक होने का कारण बताते हुए कहते है कि - वत्से =पुत्री, त्वयाः तुम्हारे द्वारा रचितपूर्वम् = पहले से रखा गया, उटजद्वारविरूढं = कुटी के द्वार पर उगे हुए, नीवारवलिं = नीवार धान की,विलोकयतः =देखकर मम शोकः मेरा शोक कथंनु शमम्= कैसे समाप्त हो सकेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - उटजद्वारविरूढं = उटजद्वार विरूढ़ उटजद्वारविरूढं। उटात् जायते इति उटजः उट्+जन+। प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग तथा परिकर अलंकार है और आर्या छन्द है।

सख्यौ - (शकुन्तलां विलोक्य) हाधिक् हा धिक। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या।

दोनों सखियाँ - (शकुन्तला को देखकर) हाय दुःख है, हाय दुःख है। शकुन्तला वन पक्तियों में छिप गयी।

काश्यप - (सनिःश्वासम्) अनुसूये! गतवटी वां सहचारिणी। निगृहय शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

काश्यप - (लम्बी श्वास लेकर) अनुसूया! तुम लोगों की सखी गयी। मै आश्रम मे जा रहा हूँ। दुःख को रोककर मेरे पीछे पीछे आवो।

उभे - तात् ! शकुन्तला विरहित शून्यमिव तपोवनं कथ प्रविशावः?

दोनो - पिताजी! शकुन्तला से रहित सूने वन आश्रम में हम कैसे प्रवेश करे।

काश्यप - स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी। (सविमर्श परिक्रम्य) हन्त भो! शकुन्तला पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानी स्वास्थ्यम्। कतः।

काश्यप - स्नेह के कारण इस प्रकार दृष्टिगत होता है। (विचार करके घूमकर) अरे! शकुन्तला को स्वामी के घर भेजकर मुझे मानसिक शान्ति मिली। क्योकि-

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।। 22।।

अन्वय - कन्या हि परकीयः एव अर्थः। अद्य तां परिग्रहीतुः संप्रेष्य मम अयम् अन्तरात्मा प्रत्यर्पितन्यास इव प्रकामं विशद जातः।

अनुवाद - कन्या पराया धन होती है। आज उसे विवाह करने वाले स्वामी के पास भेजकर मेरी यह अंतरात्मा धरोहर लौटाने वाले के समान अन्तः करण अति प्रसन्न हो गया है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप कन्या को पराया धन मानते हुए कहते है कि - कन्या हि परकीयः एव अर्थः =कन्या पराया धन होती है। अद्यतां = आज उसे, परिग्रहीतुः =विवाह करने

वाले के, संप्रेष्य = साथ भेजकर, मम अयम्=मेरा यह अन्तरात्मा = मन, प्रत्यर्पितन्यास इव = धरोहर लौटाने वाले के समान, प्रकामं विशदः जातः =अति प्रसन्न हो गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

परकीयः =परस्य अयम परकीयः। पर+छ+कुम् प्रत्यर्पितन्यास = प्रत्यर्पितः न्यासः येन सः (बहुव्रीहि) प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे) -(सब प्रस्थान करते है)।

।। इति चतुर्थो अंकः ।।

।। चतुर्थ अंक समाप्त।।

अभ्यास प्रश्न -1

1. काश्यप किस मन्त्र से शकुन्तला को आशीर्वाद देते है:-

(1) ऋग्वेद से (2) लौकिक छन्द से

(3) देते ही नही (4) कुछ कर नही सकेमे।

2. प्रकृति के तरफ से शकुन्तला को जाने की सूचना किससे प्राप्त होती है।

(1) कोयल द्वारा (2) मोर द्वारा

(3) वृक्षो द्वारा (4) नही जानते

3. शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर कौन जाता है।

(1) प्रियंवदा (2) शारंगरव

(3) गौतमी (4) अनुसूया

4. कन्या कैसी धन होती है?

(1) अपनी (2) पराया

(3) धनिकों की (4) योगियों की

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पाये है कि -चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में शकुन्तला की सखिया पुष्प चुनने का अभिनय करती है तथा उसी समय कुटी के दरवाजे पर दुर्वासा का आगम होता है। दुर्वासा शकुन्तला द्वारा अपना अपमान समझकर शाप देते है बहुत मनाने पर पहचान दिखाने पर शाप से मुक्ति का मार्ग बताते है। प्रातः की सूचना देने हेतु, शिष्य कण्व के समीप जाता है। उधर अनुसूया शकुन्तला की चिन्ता कर रही है तभी प्रियंवदा वहा जाकर सूचना देती है कि पिता कण्व को यज्ञशाला में प्रवेश करते ही शरीर बिना वाणी ने सब कुछ बता दिया तथा कण्व शकुन्तला की विदाई की तैयारी करते है। वनस्पतियो ने मंगलमयी वस्त्र, अलंकार, महावर आदि भेट किये है। पुनः पिता शकुन्तला के समीप आकर उसे उपदेशित करते है। तथा अन्त मे शकुन्तला की विदाई कर कण्व शान्ति का अनुभव करते है इसी के साथ चतुर्थ अंक समाप्त होता है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

(1) विषकम्भक - भूत और भविष्य की सूचना देने वाला तथा अंक आरम्भ में आने वाला विषकम्भक कहलाता है।

(2) मानसी सिद्धि - मन से चाहने पर प्राप्त होने वाले।

(3) ऋक्छन्द - ऋचा का मन्त्र

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1-

1. ऋग्छन्द से
2. कोयल द्वारा
3. शारंगरव
4. पराया

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा॰ उमेश चन्द्र पाण्डेय प्रकाशक - प्राचय भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. साहित्य दर्पण
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- चतुर्थ अंक क्यों प्रसिद्ध है लिखिए।

इकाई-3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : पंचम अंक
श्लोक संख्या 01 से 15 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा :

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : पंचम अंक
श्लोक संख्या 1 से 15 तक (मूल पाठ, अर्थ एवं व्याख्या)
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की यह तृतीय खण्ड की तृतीय इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने वन्य जीवन में रहकर गृहस्थ धर्म की पराकाष्ठा से सम्बन्धित उदात्त बातों की जानकारी प्राप्त की है। प्रस्तुत इकाई में पंचम अंक का वर्णन किया जा रहा है।

इस इकाई में आप हंसपादिका के गीत द्वारा दुष्यन्त के ऊपर किये जाते हुए व्यंग्य की सूचना प्राप्त करते हुए परित्यक्त शकुन्तला के वियोग का अनुभव एवं दुष्यन्त-शकुन्तला के विस्तृत संवादों का अध्ययन करेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझा सकेंगे कि-

- कण्व द्वारा विदा की गयी शकुन्तला को राजा दुष्यन्त किस कारण से नही पहचान सका।
- एकान्त में की गई मैत्री या प्रेमसम्बन्ध विशेष रूप से परीक्षा लेकर करना चाहिए।
- किस प्रकार हंसपदिका के गीत के माध्यम से कवि दुष्यन्त को शकुन्तला को भूल जाने की बात को याद दिलाता है।

3.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : पंचम अंक

श्लोक संख्या 1 से 15 तक मूल पाठ, अर्थ एवं व्याख्या

(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च)

(आसन पर बैठा हुआ राजा और विदूषक दिखायी पड़ते है)

विदूषकः (कर्णं दत्वा) भो वयस्य! संगीतशालान्तरेऽवधनं देहि कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति।

(कान लगाकर) हे मित्र संगीतशाला के भीतर ध्यान दो। अस्फुट और मधुर गीत की स्वरयोजना सुनाई दे रही है। मुझे लगता है माननीया हंसपदिका राग का अभ्यास कर रही है।

राजाः तूष्णी भव। यावदाकर्णयामि।

चुप रहो। जरा सुनूँ (आकाश में गाया जाता है।) (आकाशे गीयते)

अभिनवमधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्ब्य चूतमंजरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम ? ।।1।।

अन्वय-मधुकर, अभिनवमधुलोलुपः भवान् चूतमंजरीं तथा परिचुम्ब्य कमलवसतिमात्रनिर्वृतः कथम् एनां विस्मृतः असि।

अर्थ- हे मधुकर, नये मधु के लिए लालायित रहने वाले तुम आम की मंजरी का उस प्रकार (अभिलाषापूर्वक) पूर्ण रसास्वादन कर (अब) कमल में निवास भर से ही सन्तुष्ट होकर क्यों भूल गये **हो ।।1।।**

पंचम अंक राजा के प्रासाद का दृश्य प्रस्तुत करता है, राजा और विदूषक एक स्थान पर बैठे हुए है।

प्रविशति = यहाँ दिखायी पड़ता है' यह अर्थ है। यह नाटक के रंगमंचीय विधान का पारिभाषिक शब्द है। आसनस्थ = आसन पर बैठा हुआ। आसन पर बैठे हुए प्रवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता, अतः अर्थ होगा 'आसन पर बैठा हुआ दिखायी पड़ता है।कमल पूर्ण खिला हुआ है, उसमें नया मधुरस उसे नहीं प्राप्त होता, तथापि वह उसी में निवास भर से सन्तुष्ट है। आम्रमंजरी को कैसे भूल चुका है। मधुकर से दुष्यन्त की तथा आम्रमंजरी से नायिका शकुन्तला की परिस्फूर्ति होने से समासोक्ति अलंकार है। विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। राघव0 ने यहाँ हेतु अलंकार भी माना है। अनुप्रास भी है। अपरवक्त्र नाम का छन्द है' अयुजि ननरलाः गुरू सभे तदपरवक्त्रमिदं गजौ जरौ'।

राजा: अहो रागपरिवाहिनी गीतिः।

राजा: अहा, कैसी भावों से भरी हुई गीति है।

विदुषक: किं तावद्गीत्या अवगतोऽक्षरार्थः?

विदुषक: क्या गीत के अक्षरों का अर्थ समझ लिया?

राजा: (स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तस्य देवीवसुमतीमन्तरेण मदुपालम्भमवगतोऽस्मि। सखे माढव्य! मद्वचनाद्रुचयतां हंसपदिका निपुणमुपालब्धोऽस्मीति।

राजा: (मुस्कराकर) इस व्यक्ति से मैंने एक ही बार प्रेम किया है। देवी वसुमती को लक्ष्य कर मेरे विषय में उसकी उलाहना को समझ रहा हूँ। मित्र माढव्य, मेरी ओर से हंसपदिका से कहो कि बड़ी चतुराई से मुझे उपालम्भ दिया है।

विदू षक: यद्भवान्ज्ञापयति। **(उत्थाय)** भो वस्य! गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके

विदू षक: जैसी आपकी आज्ञा। (उठाकर) हे मित्र, उसके द्वारा दूसरों के हाथों चोटी पकड़कर खीचे गये और पिटवाये जाते हुए मुझ प्रेमशून्य व्यक्ति को वैसे ही छुटकारा नहीं मिलेगा जैसे (किसी) अप्सरा के मोक्ष नहीं मिलता।

राजा: गच्छ नागरिकवृत्या संज्ञापयैनाम्।

राजा: जाओ, नागरिक जैसे चतुर व्यवहार से उसे समझाओं।

विदुषक: का गतिः?

विदुषक: और क्या उपाय है?

राजा: (आत्मगतम) किं नु खलु गीतार्थमाकर्ण्येष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा-

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व
भावस्थिराणी जनानान्तरसौहृदानि।।2।।

अन्वय-रम्याणि वीक्ष्य, मधुरान् शब्दान् निशम्य च, सुखितः अपि जन्तुः यत् पर्युत्सुकीभवति, तत् नूनं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि अबोधपूर्व चेतसा स्मरति।

इति पर्याकुलस्तिष्ठति) राजाः (आत्मगत) क्या कारण है कि गीत के अर्थ को सुनकर प्रियजन का विरह न होने पर भी अत्यधिक उत्कण्ठित हो गया हूँ। अथवा (ऐसा तो नहीं कि)-

मनोहर वस्तुओं को देखकर और मधुर शब्दों को सुनकर जो सुखसम्पन्न भी व्यक्ति वियोगदुखः का अनुभव करने लगता है वह निश्चय हीं संस्कारों के फलस्वरूप अमिट बने हुए पूर्वजन्म के प्रेमसम्बन्धों को अनजाने ही मन ही मन स्मरण करता **है ।।2।।**

रागपरिवाहिनी=भावों से भरी। राग+परि+वह +णिनि। यहाँ राग का अर्थ हार्दिक भावों से है, जो हृदय का रंजन करते हैं (रंजनम् रागस्तत्परिवाहिनी अत्यन्तरंजिका-राघव) स्मितं कृत्वा=राजा या तो विदूषक की सरलता पर मुस्कराता है अथवा हंसपदिका द्वारा दी गयी उलाहना पर। सकृत्कृतप्रणयः=जिससे एक बार प्रेम किया गया है। सकृत अव्यय है, जिसका अर्थ है एक बार। सकृत् कृतः प्रणयः यस्मिन सः (बहुव्रीहि) प्राणयः=प्र+नि+अच् । अयं जनः से यहाँ हंसपदिका का तात्पर्य है। देवी पद का प्रयोग प्रधानमहिषी के लिये होता है । अन्य रानियाँ के लिये भट्टिनी का प्रयोग होता है: 'देवी कृताभिषेकायामितरासु च भट्टिनी।'-सा0द0।

(ततः प्रविशति कचुकी)

कंचुकीः अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि।

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था।।3।।

अन्वय- राज्ञः अवरोधगृहेषु आचार इति अवहितेन मया या वेत्रयष्टिः गृहीता, सा एव बहुतिथे काले गते प्रस्थानविक्लवगतेः मम अवलम्बनार्था जाता । (तब कन्चुकी प्रवेश करता है)

कन्चुकीः आह, (अब) मैं ऐसी अवस्था को पहुँच गया हूँ ।

राजा के अन्तःपुरों में (कन्चुकी के लिए ऐसा) नियम होने के कारण ध्यान देते हुए जिस छड़ी को धारण किया था, वही बहुत काल बीत जाने पर (अब) चलते समय लड़खड़ाती गति वाले मेरे सहारे के लिए (आवश्यक) बन गयी **है ।।3। ।**

पूर्वार्ध के विशेष कथन का उत्तरार्द्ध में सामान्य कथन द्वारा समर्थन होने से अप्रसतुतप्रशंसा है। पूर्वार्द्ध में उत्तरार्द्ध के कारण का उल्लेख होने से काव्यलिंग है। कारणाभाव में भी कार्योतपत्ति होने से विभावना है। अनुप्रास भी है । छन्द है वसन्ततिलका । कंचुकी राजा के यहाँ कार्य करने वाले वृद्ध ब्राह्मण होते थे, जो सत्यवादी, कामदोष से शून्य और ज्ञानविज्ञान में कुशल होते थे, कंचुकी अन्तःपुर में भी जाता-आता था और रानियों के सन्देश को राजा तक पहुँचाता था। कंचुकी एक विशेष वेष धारण करता था, जो लम्बे चोंगे के रूप में होता था और वह हाथ में बेंत की छड़ी लिये रहता था। यहाँ कंचुकी अपनी वृद्धावस्था पर खेद व्यक्त करता है।

कंचुकी- पादावलम्बि परिधानीयं वस्त्रम् तदस्यास्तीति कंचुकी। कंचुक+इनि ।भोः। धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य । तथापीदानीमेत धर्मासनादुत्थिताय पुनरूपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदितुम् अथवा विश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः। कृतः

भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव
रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः
षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।।4।।

अरे, यद्यपि यह ठीक है कि महाराज को धर्मकार्य में बिलम्ब नहीं करना चाहिए, तथापि अभी-अभी न्यायासन से उठे हुए उनसे (विश्राम में) पुनः बाधा डालने वाले कण्ववशिष्यों के आगमन की सूचना देने का साहस नहीं कर पा रहा हैं। अथवा यह प्रजाशासन का कर्त्तव्य ही विश्रामरहित हैं क्योंकि-

अर्थ- सूर्य ने एक बार अपने अश्वों को जोता तो उन्हें जोते ही हुए हैं, वायु रात-दिन बहता ही रहता है, शेषनाग सदैव पृथ्वी का भार उठाये हुए हैं, (प्रजा से) छठा भाग वृत्ति के रूप में लेने वाले राजा का भी यही धर्म है।।4।।

प्रस्थाने विक्लवा गतिः यस्य तस्य (बहुव्रीहि)। विक्लव=लड़खड़ाना, वि+√क्लु। प्रस्थान=गमनारम्भ। प्रस्थाल्युट् (अन)। गतिः=क्तिन्। अवलम्बनार्था=अवलम्बनम् अर्थः यस्याः सा (बहुव्रीहि) शरीरावलम्बनप्रयोजनता जाता । अधिक समय व्यतीत होना 'प्रस्थानविक्लवगति' का कारण है अतः काव्यलिंग अलंकार है। उक्तनिमित्ता विभावना अलंकार भी है, अशक्त होने के कारण का निषेध 'अवहितेन' द्वारा किया गया है और निमित्त को आचार बताया गया है। एक ही वेत्रयष्टि अनेक स्थानों पर वर्णित है, अतः विशेषालंकार है। उत्तरार्द्ध में वृद्धावस्था में गमन में वेत्रयष्टि के सहायक होने से समाहित अलंकार है। त्य ताय, हिते हीता, गृहे गते गते, में छेक वृत्ति एवं श्रुत्यनुप्रास है। वसन्ततिलका छन्द है। भानुः सकृद्युक्ततुरंगः एव=सूर्य एक बार ही अपने रथ के घोड़ों को जोते ही हुए हैं। तात्पर्य यह कि एक बार उन्हें बाँधा ही हैं खोलने का समय नहीं। आदि सृष्टि में उसने एक ही बार रथ के घोड़े जोते, तब से परिश्रम कर रहे हैं।

राजाः (सादरम्)किं काश्यपसन्देशहारिणः

राजा:(आदरसहित) क्या काश्यप का सन्देश ले आने वाले ?

कंचुकी: अथ किम? **कंचुकी**: और क्या ?

राजा: तेन हि मद्वचनाज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हति-इति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।

तो मेरी ओर से उपाध्याय समरात से कहें कि इन आश्रमवासियों को वेदाविहित विधि से सत्कार कर स्वयं ही ले आवें। मैं भी यहाँ तपस्वियों से मिलने योग्य स्थान में बैठकर प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

कंचुकी: यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

कंचुकी: जैसी महाराज की आज्ञा। (ऐसा कहकर चला जाता हैं)

राजा: (उत्थाय) वेत्रवति! अग्निशरणमार्गमादेशय।

राजा: (उठकर) वेत्रवति, अग्निशाला का मार्ग दिखाओं।

प्रतिहारी: इत इतो देवः।

प्रतिहारी: इधर, इधर से महाराज।

राजा: (परिक्रामति, अधिकारखेदं निरूप्य)सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तु। राज्ञां सु चरितार्थता दुःखान्तरैव।

राजा: (चारों ओर घूमता है। कर्त्तव्यभार की खिननता का अभिनय करते हुए) सभी प्राणी मनचाहे पदार्थ को पाकर सुखी हो जाते है, किन्तु राजाओं की (अभिलाषा की) सफलता दुःख से ही अधिक भरी होती है।

पिबतीति द्विप, द्वि+पा+क। द्विप् का अर्थ है हाथी, जो मुख ओर सूँड दोनों से जल पीता है। द्विपानाम् इन्द्रः। शीतं इव=जैसे शीतल स्थान का सेवन करता है। जैसे गजराज शीतल वृक्षादि की छाया वाले स्थान का सेवन करता है, वैसे ही राजा एकान्त का सेवन कर रहा है। यहाँ दो उपमा अलंकार है। एक 'स्वाः प्रजा इव' , दूसरा द्विपेन्द्र इव। प्रजाः में यमक भी है। छेक-वृत्ति-श्रुत्यनुप्रास है। उपजाति छन्द है।

प्रजा प्रजा स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते श्रान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ।। 5 ।।

अन्वय- (एषः देवः) स्वाः प्रजाः इव प्रजाः तन्त्रयित्वा, अशान्तमनाः दिवा यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः द्विपेन्द्रः शीतं स्थानम् इव विविक्तं निषेवते।

अपनी सन्तान सदृश प्रजाओं को साधु मार्ग पर लगाकर उद्विग्न चित्त होकर जैसे दिन में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से तपा हुआ गजराज (अपने हाथियों के) झुण्ड को इधर-उधर छोड़कर ठन्डे स्थान में विश्राम करता है ,वैसे ही राजा एकान्त का सेवन कर रहे हैं (आराम कर रहे हैं)। यमक एवं उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम।।6।।

अन्वय- प्रतिष्ठा औत्सुक्यमात्रम् अवसाययति, लब्धपरिपालवृत्तिः क्लिश्नाति एवं। स्वहस्तधृतदण्डम् (स्वहस्तधृतदण्डम्)आतपत्रम इव न अतिश्रमापनाय न, न च श्रमाय न।(नेपथ्ये) सर्वोत्कृष्ट पद की प्राप्ति उत्सुकता भर को ही समाप्त करती है। प्राप्त हुए (राज्यादि) पद की सभी प्रकार से रक्षा का कार्य उसे क्लेश ही देता है। (जिसका दण्ड व्यवस्था अपने हाथ में ली गयी है) ऐसा भी नहीं होता कि कठिन श्रम को न दूर और न ऐसा ही होता है कि श्रम न उत्पन्न करे **।।6।।**

(नेपथ्य में) वैतालिकी विजयतां देवः

प्रथमः **स्वसुखनिरभिलाषाः खिद्यसे लोकहेतोः**
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ।। 7 ।।

अन्वय-(त्वम)स्वसुखनिरभिलाषः (सन) लोकहेतोः प्रतिदिनं खिद्यसे, अथवा ते वृत्तिः एंव विधा एव। हि पादपः मूर्ध्ना तीव्रम् उष्णम् अनुभवति, (किन्तु) छायया संश्रितानाम् परिताप शमयति।

दो स्तुतिवाचक: महाराज की, जय हो।

पहला:, अपने सुख की अभिलाषा न करते प्रतिदिन प्रजा के लिए कष्ठ उठाते हो,अथवा तुम्हारा कार्य ही इस प्रकार का है। क्योंकि पादप अपने सिर पर तीव्र धूप को झेलता है। किन्तु अपनी छाया से आश्रम में आये हुए लोगों के सन्ताप को शान्त करता है।।7।

(बहुव्रीहि)। आतपात् त्रायते इति आतपत्रम् । आतप+त्रा+क । स्वहस्तधृतदण्डम् का राजयम् के पक्ष में अर्थ होगा-जिसकी दण्डव्यवस्था का कार्य अपने हाथ में लिया गया है। राजा का यह भाव नहीं है कि यदि मन्त्रीगण दण्डव्यवस्था का कार्य करते तो वह सुखकर होता। तब भी दण्डव्यवस्था का दायित्व राजा पर ही होता है । 'आतपत्रमिव' में उपमा है। 'लब्धरिपानवृत्ति' क्लेश का हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। प्रतिष्ठा, श्लिष्ट है अतः श्लेषालंकार है।वसन्ततिलका छन्द है।

नियमयसि कुमार्गप्रतिस्थतानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ।।8।।

अन्वय-(त्वम) आत्तदण्ड (सन्) कुमार्गप्रस्थितान नियमयसि, विवादं प्रशमयसि, रक्षणाम कल्पसे। अतनुष विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम, प्रजानां बन्धुकृत्यं तु त्वयि परिसमाप्तम्

अर्थ- दण्ड उठाकर तुम कुमार्ग की ओर बढ़नेवालों को सुधारते हो, विवाद को पूर्णतः शान्त करते हो, रक्षा करने में समर्थ हो। प्रचुर धनसम्पत्ति होने पर बन्धु-बान्धव भले ही हो जायें, किन्तु प्रजाओं के बन्धुओं का कर्तव्य तो तुमसे ही पूरा हेाता **है ।।8।।**

वैतालिका ।=दो चरण । वैतालिक चारण होते है जो समय के अनुरूप् राजा की स्तुति का पाठ करते हे। स्वसुखनिरभिलाषः लोकहेतोः प्रतिदिनं खिद्यसे=अपने सुख की अभिलाषा से रहित होकर प्रजा के कल्याण के लिये प्रतिदिन कष्ट उठाते हो। एक-दो दिन नहीं, अपितु प्रतिदिन। हि पादपः मुर्ध्ना तीव्रम् उष्णम् अनुभवति=क्योंकि वृक्ष अपने सिर पर तीव्र धूप का अनुभव करता हे। 'पादपः' शब्द साभिप्राय और श्लिष्ट है। 1. पादप का अर्थ राजा के पक्ष में है-पादान् पादभूतान् प्रजाजनान् पाति रक्षति इति पादपः। जो चरणभूत या आधारभूत प्रजा की रक्षा करें। उत्तरार्द्ध में दो वाक्यों में विम्बप्रतिबिम्बभाव होने से दृष्टान्त है। पादप के वर्णन से राजा या सत्पुरूष की परिस्फूर्ति होने से समासोक्ति है। छाया तापनिवारणहेतु रूप में वर्णित है, अतः काव्यलिंग है। पूर्वार्द्ध में कही गयी बात का उत्तरार्द्ध में निषेध होने से आक्षेपालंकार है। मालिनी छन्द है। लक्षण है-'ननमययुतेयां मालिनी भोगिलोकै ।'

राजाः ऐते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृता स्मः।(इति परिक्रामति)

राजाः ये क्लान्त चित्त वाले हम फिर से नये बना दिये गये।

प्रतिहारीः ऐषोऽभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः आरोहतु देवः।

प्रतिहारीःयह नये सम्मार्जन से शोभायुक्त और होमकर्म हेतु उपयोगी गौ से विराजमान अग्निशाला का ओसारा है। इस पर चढ़ें महाराज।

राजाः (आरूहा्र परिजनांसावलम्बी तिष्ठति) वेत्रवति! किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः? **राजाः** (चढकर, परिजन के कन्धे का अवलम्बन लेकर खड़ा होता हे) वेत्रवति, किस उद्देश्य से भगवान् काश्यप ने मेरे समीप ऋषियों को भेजा होगा?

किं तावद्व्रतिनामुपोढ़तपसां विध्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरूधा-
मित्यारूढ़बहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः।।9।।

अन्वय- कि तावद् उपोढतपसां व्रतिनां तपः विध्नै दूषितम् ? उस धर्मारण्यचरेषु प्राणिषु केनचित् असत् चेष्टितम? आहोस्वित् मम अपचरितैः वीरूधाम प्रसवः विष्टम्भितः? इति आरूढवहुप्रतर्कम मे मनः अपरिच्छेदाकुलम् (अस्तिं)।

तो क्या महान् तपस्या करने वाले व्रतियों का तप (राक्षसादि के) विध्नों से दूषित कर दिया गया है? या किसी ने तपोवन में विचरण करने वाले प्राणियों पर अत्याचार की चेष्टा की है? अथवा मेरे (किन्ही) अधर्माचरणों से लताओं के फूल-फल रूक गये है। इस प्रकार अनेक आशंकाओं में पड़ हुआ मेरा मन अनिश्चय से आकुल हो उठा है **।।9।।**

9. भगवान कण्व ने तपस्वियों को मेरे पास किस उद्देश्य से भेजा है, इस विषय में राजा अनेक आशंकाए करता है। 'आरूढ़बहुप्रतर्कम' आकुलता का कारण है अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग है। तप स्वि सबमें छेकवृत्तिश्रुत्यनुप्रासः है, छन्द है शार्दूलविक्रीडित।

प्रतिहारीः सुचरितनन्दिन ऋषयो देर्व सभाजयितुमागता इति तर्कयामि।

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य नुनयः, पुरश्चैष कंचुकी पुरोहितश्च)

प्रतिहारीः (आपके) सुन्दर कार्यो से प्रसन्न होने वाले ऋषि लोग महाराज का अभिनन्दन करने आ रहे है ऐसा मै अनुमान करती हूँ।

(तब गौतमी के साथ मुनि लोग शकुन्तला को आगे कर प्रवेश करते हे और उनके आगे यह कंचुकि एवं पुरोहित आते है)

कंचुकीःइत इतो भवन्तः।

कंचुकीःइधर से, इधर से आप लोग आयें।

शार्ङ्गरवःशारद्वतां!

शार्ङ्गरवःशारद्वत,

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरहो
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापिदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा

जनाकीर्ण मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।।10।।

अन्वय-अहो कामम् अभिन्नस्थिति नरपतिः महाभागः वर्णानाम् अपकृष्टः अपि कश्चित् अपथं न भजते, तथापि शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा जनाकीर्णम् इदं हुतवहपरीत गृहम् इव मन्ये।

अर्थ- अहो, भले ही अपनी मर्यादा का अविचलित होकर पालन करने वाले राजा महान् पुण्यात्मा है और सभी वर्णो में कोई निकृष्ट व्यक्ति भी कुमार्ग पर नहीं चल रहा है, फिर भी एकान्त निवास से ही निरन्तर परिचित मन से मैं जनसमूह की भीड़ से भरे इस (राजप्रासाद) को अग्नि से घिरे हुए घर के समान समझ रहा हूँ।।10।।

शांर्गरव राजा की प्रशंसा करते हुए जनसमुदाय से भरे राजभवन के विषय में अपने अनुभव को व्यक्त करता है। निरन्तर एकान्त तपोवन में निवास करने के कारण भीड़-भरा राजभवन उसे आग की लपटों से घिरे घर के समान प्रतीत होता है। हुतवहेन परीतम् हुतवहपरीतम्। अग्नि के स्थान पर 'हुतवह' कहा, क्योंकि वक्ता तपस्वी है। साधक और बाधक दोनों ही प्रकार के प्रमाणों के अभाव से सन्देहसंकर है (राघव) 'हुतवहपरीतं गृहमिव' में उपमा है। शिखरिणी छन्द है।

शारद्वतः जाने भवान्पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसंगिनमवैमि ।। 11 ।।

अन्वय- (अहम् अपि) इह सुखसंगिनं जनम् स्नातः अभ्यक्तम् इव शुचिः अषुचितम् इव, प्रबुद्ध सुपतम् इव, स्वैरगतिः बद्धम् इव अवैमि।

शारद्वतः जानता हूँ आप नगर में प्रवेश करने से ऐसे हो गये। मैं भी यहाँ विषयसुख में लिप्त मनुष्य को वैसा ही समझ रहा हूँ जैसे स्नान किया हुआ व्यक्ति तेल चुपड़े हुए को मन से पवित्र व्यक्ति कलुषित मनवाले को, स्वच्छन्द गतिवाला बंधे हुए को समझता है।।11।।

'सुखसंगी जनः' उपमेय के लिये कई उपमान उपस्थापित किये गये हैं, अतः मालोपमा है। छेकवृत्यनुप्रास भी है। आर्य जाति है।

शकुन्तला: (निमित्तं सूचयित्वा) अहो, किं में वामेतरं नयनं विस्फुरति?

शकुन्तला:(अपशकुन सूचित कर) अरे, मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़क रही हे?

गौतमी: जाते! प्रतिहतम मंगलम् सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु (इति परिक्रामति)

गौतमी:बेटी अमंगल दूर हो। तेरे पतिगृह के देवता तुझे सुख प्रदान करें। (ऐसा कहकर घूमती है।)

पुरोहित: (राजानं निर्दश्य) भो भोस्तपस्विनः! टसावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनों वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

पुरोहित:(राजा की ओर संकेत कर) हे तपस्वियों यह वर्णो एवं आश्रमों के रक्षक माननीय महाराज पहले ही आसन छोड़कर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इनसे मिलिये।

शाड़र्गरवः भो, महाब्रहा्रण! काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्थाः।

शाड़र्गरव: हे महाब्राहा्रण! निश्चय ही यह प्रशंसनीय है, तथापि इस विषय में हम उदासीन है! क्योंकि-

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै-

नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरूषा समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।12।।

अन्वय-तरवः फलागमैः नम्राः भवन्ति। घनाः नबाम्बुभिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति) सत्पुरूषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति)एषः परोपकारिणाम् स्वभावः एवं ।

(आम्र आदि) वृक्ष फलों से लद जाने पर झुक जाते है। (वर्षाकाल के आरम्भ के) मेघ नयी जलराशि से भरे होने से बहुत नीचे लटक आते हैं। सज्जन समुद्धियों से गर्वहीन होते हैं। यह परोपकारियों का स्वभाव ही है।।12।।

विनम्रता तो परोपकारियों का स्वभाव ही है इसे ही शार्ङ्गरव ने वृक्ष, मेघ और सज्जन का उदाहरण देकर व्यक्त किया है। नम्राः=नम्+र प्रत्यय। नवाम्बुभिः घनाः दूरविलम्बिनः(भवन्ति) =नये जल से परिपूर्ण होने के कारण वर्षा के आरम्भ के मेघ बहुत नीचे लटक जाते हैं दूरं विलम्बन्ते इति दूरविलम्बिनः, दूर+वि+लम्ब+णिनि,, साधुकारिणि, कर्तरि णिनि प्रत्यय। परेषाम् उपकारः परोपकारः सः अस्ति एषामिति परोपकारिणः इनि प्रत्यय। अथवा परेषाम् उपकारिणः परोपकारिणः पर+उप+कृ+णिनि। यह पद्य भर्तृहरि के नीतिशतक में भी पाया जाता है।

प्रतीहारी:देव! प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्वकार्या ऋषयः।

प्रतीहारी:महाराज, इनके मुख पर प्रसन्नता की कान्ति है। मैं समझती हूँ कि ऋषिलोग शान्तिमय कार्य से आये हैं।

राजा (शकुन्तलां दृष्ट्वा)अथात्रभवती।

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्।।13।।

अन्वय-पाण्डुपत्राणाम् मध्ये किसलयम् एव, तपोधनानां मध्ये अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या (अत्रभवती) का स्वित्?

राजा (शकुन्तला को देखकर) और यह भद्रमहिला-

कौन है, जो घूँघट निकाले हुए है (और इस कारण), जिसका शरीर एवं सौन्दर्य बहुत अधिक प्रकट नहीं हो रहा है, और जो तपस्वियों के बीच वैसी दिखायी पड़ रही है जैसे पीले पत्तों के बीच निकला हुया नया पल्लव हो।।13।।

प्रतीहारी- देव, कुतूहलगर्भोपहितो न में तर्कः प्रसरित। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते।

प्रतीहारी:महाराज, कुतूहल के बीच उलझा हुआ मेरा तर्क बढ़ नहीं रहा है परन्तु इसकी आकृति तो निश्चय ही सुन्दर दिखायी पड़ रही है ।

राजा:भवतु अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम ।

राजा जो भी हो। परायी स्त्री को ध्यान देकर देखना उचित नहीं है ।

शकुन्तला:(हस्मूरसि कृत्वा, आत्मगतम) हृदय! किमेवं वेपसे? आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद्भव ।

शकुन्तला:(हाथ को छाती पर रखकर, आत्मगत) हृदय, तू क्यों इस प्रकार काँप रहा है? आर्यपुत्र के प्रेम को पहचान कर तो धैर्य धारण कर।

राजा का ध्यान शकुन्तला की ओर जाता है जो तपस्वियों के बीच घूँघट निकाले हुए ठीक वैसे ही दिखायी पड़ती है जैसे पीले पत्तों के बीच नया पल्लव हो। उसके विषय में राजा की जिज्ञासा होती है कि यह कौन है। साड़ी के आंचल से सिर को ऊपर से तथा मुख का कुछ भाग ढकना ही अवगुण्ठन है। अवगुण्ठन+मतुप+स्त्रीलिंग ङीप् प्रत्यय। नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या=जिसका शरीर और लावण्य बहुत अधिक स्पष्ट प्रकट नहीं है। की कान्ति को कहा लाया है। तपोधनानां मध्ये=तपसिवयों के बीच में। तपः एव धनं येषां ते तपोधनाः, तेषाम्। पाण्डुपत्राणाम् मध्ये किसलयम् इव=पीले पत्तों के बीच में कोमल पल्लव के समान। शकुन्तला की नयी युवावस्था और कोमलता का संकेत भी है। इस पद्य में 'नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या' होने का कारण 'अवगुण्ठनवती' होना बताया गया है अतः काव्यलिंग है। 'किसलयमिव' में उपमा है। आर्या जाति है।

पुरोहित:(पुरो गत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्यायसन्देशः। तदेव श्रोतुमर्हति।

पु**रोहित**:(आगे जाकर) ये तपस्वी है, जिनकी विधिपूर्वक पूजा की गयी है। इनके आचार्य का कोई सन्देश है। उसे महाराज सुनें।

राजा:अवहितोऽस्मि।

राजा:मैं सावधान हूँ।

ऋषय:(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन्!

ऋषिगण:(हाथ उठाकर) राजन् विजयी होवें।

राजा सर्वानभिवादये।

राजा:मैं सभी का अभिवादन करता हूँ।

ऋषय:इष्टेन युज्यस्व।

ऋषिगण:अभीष्ट को प्राप्त करो।

राजा:अपि निर्विघ्नतपसो मनुयः?

राजा:मुपिष्सें की तवरूष्स पिर्विध्न तो हैं?

ऋषय : **कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि।**
तमस्तपति धर्माशौ कथमाविर्भविष्यति? ।।14।।

अन्वय-त्वयि सतां रक्षितरि (सति) धर्मक्रियाविघ्नः कुतः? धर्माशौ तपति तमः कथम् आविर्भविष्यति?

ऋषिगणः तुम्हारे जैसे सज्जनों के रक्षक होने पर धर्मकार्यो में विघ्न कहाँ से हो सकता है? प्रदीप्त किरणों वाले सूर्य के तपते रहने पर अन्धकार कैसे प्रकट हो सकता है?।।14।।

कण्व के शिष्य राजा की प्रशंसा करते हैं और उसके धर्मक्रिया की रक्षाके कार्य पर सन्तोष व्यक्त करते हैं। धर्मक्रियाविघ्नः कुतः=धर्म के कार्यो में विघ्न कैसे हो सकता है? अर्थात् विघ्न नहीं हो

सकता। धर्मस्य क्रियाः धर्मक्रियाः तासु विध्नः (तत्पुरूष)। त्वयि सताम् रक्षितरि=तुम्हारे सज्जनों का रक्षक होने पर अर्थात् जब महान प्रतापी ओर धर्मनिष्ठ तुम सज्जनों की रक्षा करता है, असज्जनों की नहीं।

राजा:अथवान्खलु में राजशब्दः। अथ भगवांल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यप **?**

राजा:मेरे लिए राजा शब्द सार्थक हुआ। अच्छा, भगवान् काश्यप संसार का कल्याण करने के लिए कुशल से तो हैं ?

ऋषयःस्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह।

ऋषिगःसिद्धियों से सम्पन्न योगियों का कुशल स्वयं उनके वश में होता है। उन्होंने आपकी नीरोगता पूछते हुए यह कहा है।

राजा:किमाज्ञापयति भागवान?

राजा:भगवान क्या आज्ञा देते हे?

शार्ङ्गरव:यन्मिथःसमयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपार्यस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम् । कुतः

शार्ङ्गव आपने जो परस्पर शपथलेकर(गान्धर्व विधि से) मेरी पुत्री का विवाह किया उसके लिए मैं आप दोनों को स्वीकृति देता हूँ।

क्योंकि

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि न शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः।।15।।

अन्वय-यत् त्वम् अर्हताम् प्राग्रसरः स्मृतः असि, शकुन्तला च मूर्तिमती सत्क्रिया (अस्ति)। तुल्यगुणं वधूवरं समानयन्, प्रजापतिः चिरस्य वाच्यं न गतः। तदिदानीमापन्नसत्वा प्रतिगृहा्रतां सहधर्मचरणायेति ।

तुम जो प्रशंसनीय पुरूषों में प्रकृष्ट रूप् से अग्रणी हो और शकुन्तला शरीरधारिणी सत्काररूपा श्रेष्ठ क्रिया है (इस प्रकार) समान गुणों वाले वधू और वर को एक साथ मिलाते हुए प्रजापति चिरकाल से चली आ रही निन्दा को नहीं प्राप्त हुए **।।15।।**

तो अब इस गर्भवती को अपने साथ धर्म का पालन करने के लिए स्वीकार कीजिए । प्रजापति शब्द का प्रयोग यहाँ साभिप्राय है। विवाह-सम्बन्ध और सन्तानोत्पत्ति के साथ प्रजापति देवता ही सम्बद्ध माना गया है। 'चिरस्य' शब्द अव्यय है, विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय है। अलंकार-बर और वधू की अनुरूपता की प्रशंसा होने से समालंकार है 'मूर्तिमती सत्क्रिया' में उत्प्रेक्षा है। प्रथम वाक्य तुल्यगुणत्व का हेतु व्यक्त करता है, अतः वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग है। अनुप्रास अलंकार है। वंशस्य छन्द है। 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'।

अभ्यास प्रश्न 1-

निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखें-

1.पंचम अंक के प्रारम्भ में गीत किसके द्वारा गाया जा रहा था-

(क) शकुन्तला (ख) गौतमी

(ग) हंसपदिका (घ) अनुसूया

2. 'रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्-यह किसकी उक्ति हैं-

(क) विदूषक (ख) प्रतिहारी

(ग) कन्चुकी (घ) राजा

3-प्रजा से छठा भाग वृत्ति के रूप में किसके द्वारा लिया जाता है-

(क) मन्त्री (ख) राजा

(ग) विदूषक (घ) मुनि

4. जनाकीर्ण मन्ये हुतवहप्रीतं गृहमिव-यह कथन किसका है-

(क) शारंगरव (ख) शारद्वत

(ग) गौतमी (घ) शकुन्तला

5- परोपकारी व्यक्ति का स्वभाव कैसा होता है?

(क) अहंकारी (ख) विनम्र

(ग) शंकालु (घ) शान्त

अभ्यास प्रश्न 2-

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिए-

1. संगीतशाला में गीत गौतमी के द्वारा गाया जा रहा था। ( )
2. राजा को अपने धर्म के प्रति सदैव तत्पर रहना चाहिए। ( )
3. शकुन्तला के साथ वन से कण्व त्रदषि आये थे। ( )
4. राजा को मधुकर की संज्ञा दी गयी है। ( )
5. शकुन्तला की मुद्रिका शचीतीर्थ में गिर गयी थी। ( )

3.4 सारांश

इस इकाई में आपने हंसपादिका के गीत द्वारा दुष्यन्त के ऊपर किये जाते हुए व्यंग्य की सूचना प्राप्त करते हुए परित्यक्त शकुन्तला के वियोग का अनुभव एवं दुष्यन्त-शकुन्तला के विस्तृत संवादों का अध्ययन किया और जाना कि किस प्रकार अंगूठी के खो जाने के कारण राजा शकुन्तला को नही पहचान सका और अन्त में एक तेजोमयी नारी की आकृति उसे उठाकर आकाश में ले गयी।

3.5 शब्दावली

मुनिसुता	मुनिकन्या
प्रत्यादेशात्	परित्यक्त होने के कारण
मेदिनी	पृथ्वी
शाठयम्	धूर्तता
रह	एकान्त

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 -

1. ग
2. घ
3. ख
4. क
5. ख

अभ्यास प्रश्न 2-

1. नहीं
2. हाँ
3. नहीं
4. हाँ
5. हाँ

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा॰ उमेश चन्द्र पाण्डेयप्रकाशक – प्राच्य भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

3.8 सहायक व उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा॰ उमेश चन्द्र पाण्डेयप्रकाशक – प्राच्य भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् के पंचम अंक का सारांश लिखिये।

इकाई.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : पंचम अंक
श्लोक संख्या 16 से 31 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : पंचम अंक
श्लोक संख्या 16 से 31 तक (मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या)
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के तृतीय खण्ड की यह चतुर्थ इकाई है। इस इकाई में आप हंसपादिका के गीत द्वारा दुष्यन्त के ऊपर किये जाते हुए व्यंग्य की सूचना प्राप्त करते हुए परित्यक्त शकुन्तला के वियोग का अनुभव एवं दुष्यन्त-शकुन्तला के विस्तृत संवादों का अध्ययन करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि शकुन्तला ने किस प्रकार पंचम अंक की समाप्ति पर पृथ्वी से विवर में प्रवेश की याचना की और दुष्यन्त को शकुन्तला के स्मरण से किस प्रकार विश्वास उत्पन्न हुआ।

4.2 उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझा सकेंगे कि-

- विस्मृति के कारण राजा दुष्यन्त किस प्रकार शकुन्तला को देखकर अन्तर्द्वन्द में पड़ जाता है।
- परित्यक्त वस्तु के स्मरण से किस प्रकार विश्वास उत्पन्न होता है।
- राजा को अपने धर्म के प्रति सदैव तत्पर रहना चाहिए।
- स्त्री का अपने पतिगृह में निवास करना ही उचित है चाहे वह प्रिया हो अथवा अप्रिया

4.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : पंचम अंक
श्लोक संख्या 16 से 31 तक मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या

गौतमी: आर्य! किमपि वक्तुकामारिम। न मे वचनावसरोऽस्ति। कथमिति

नापेक्षितो गुरूजनोऽनया त्वया पृष्टो न बन्धुजनः।
परस्परस्मिन्नेव चरिते भणामि किमेकमेकस्य।।16।।

अन्वय-अनया गुरूजनः न अपेक्षितः न खलु (त्वया) बन्धुजनः पृष्टः परस्परस्मिन एव चरिते एकमेकस्य किं भणामि।

गौतमी:आर्य, कुछ कहना चाहती हूँ। मेरे कहने के लिए तो अवसर नहीं है, क्योंकि-
इसने अपने गुरूजन की अनुमति नहीं ली और न (आपने इसके) बन्धुजनों से ही पूछा। परस्पर मिलकर किये गये इस कार्य के विषय में तुममें किसी एक से मैं क्या कहू?।।16।।

राजा: किमिदमुपन्यस्तम्?

राजा: यह सब क्या उपस्थित कर दिया?

शकुन्तला: (आत्मगतम्) पावकः खलु वचनोपन्यासः।

श**कुन्तला:** (आत्मगत)-अब देखें आर्यपुत्र क्या कहते हैं?

शार्ङ्गरव: कथमिदं नाम? भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तानतनिष्णाताः।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमती विशंकते।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते

प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।।17।।

अन्वय-जनः भर्तृमतीम् ज्ञातिकुलैकसंश्रयां सतीम अपि अन्यथा विशंकते। अतः प्रिया अप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः परिणेतुः समीपे इष्यते।

शकुन्तला:(आत्मागत)वचन का उच्चारण तो (मेरे लिए)अग्नि है।

शाड़र्गरवः यह क्या कह रहे हैं? आप तो लौकिक व्यवहारों में अत्यन्त निष्णात है।

लोग एकमात्र अपने पिता के ही घर में निवास करने वाली सधवा के सच्चरित्रा होने पर भी अन्यथा आशंका करते है, इस कारण युवती स्त्री का उसके पितृकुल के सम्बन्धी पति के समीप ही निवास करना पसन्द करते है, चाहें वह उसके लिए प्रिया हो या अप्रिया **।।17।।**

शार्ड्गरव राजा से यह कहना चाहता है कि विवाहित स्त्री का अपने पिता के कुल में रहना उचित नहीं है, अतः इसका अपने पति अर्थात् आपके पास ही रहना लोकव्यवहार से समीचीन है। शकुन्तला का तुम्हारे समीप रहना उचित है इस विशेष प्रस्तुत कथन के स्थान पर सामान्य प्रमदामात्र का कथन है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा है। पूर्वार्द्ध का कथन उत्तरार्द्ध के प्रति कारण है, अतः काव्यलिंग भी है। अनुप्रास है। वंशस्थ छन्द है-'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।'

राजा -किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा?

राजा-क्या इनसे मैंने पहले विवाह किया है?

शकुन्तला -(सविषादम्, आत्मगतम्)हृदय! सांप्रतं त आशंका।

शकुन्तला -(विषाद के साथ, आत्मगत)हृदय, तेरी आशंका सही थी।

शार्ड्गरव-किं कृतकार्यद्वेषो धर्म प्रति विमुखता कृतावज्ञा?

शारंगरव- क्या अपने किये हुए कार्य से अरूचि है या धर्माचरण से पालयन कर रहें हो, अथवा किये हुए को अस्वीकार कर रहे हो?

राजा-कुतोऽयमस्त्कल्पनाप्रश्नः?

राजा-यह असत्य कल्पना कर प्रश्न क्यों?

शारंगरव-मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु।।18।।

अन्वय-किं कृतकार्यद्वेष? धर्म प्रति विमुखता? कृतावज्ञा? ऐश्वर्यमत्तेषु प्रायेण अमी विकाराः मूर्च्छन्ति।

शारंगरव -इस प्रकार के विकार प्रायः सम्पत्तियों के कारण गर्वोनमत पुरूषों में उभर आते है।।18।।

परिणीतपूर्वा=पहले विवाह की गयी। पूर्व परिणीता इति परिणीतापूर्वा। 'भूतपूर्वे चरट्' से परिणीत का पूर्वनिपात हुआ। साम्प्रतम्=उचित।

राजा विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि।

राजा मुझ पर बहुत बड़ा आक्षेप लगाया जा रहा है।

गौतमी जाते! मुहूर्त मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति।

गौतमी बेटी, क्षण भर भी लज्जा न करो। मैं अब तेरे घूँघट हटाती हूँ। तब तुझे तेरे पति पहचान लेंगे। (ऐसा कह यथोक्त करती है)

राजा (शकुन्तलां निर्वर्ण्य, आत्मागतम्)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेति व्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्।।19।।

अन्वय- (अहम) एवम् उपनतम् इदम् अक्लिष्टकान्तिरूपं प्रथमपरिगृहीतं स्यात् न वा इति व्यवस्यन् विभातेः अन्तस्तुषारं कुन्दम् इम न च खलु परिभोक्तुम न एवं हातुम शक्नोमि। (इति विचारयन्स्थितः)

इस प्रकार अनायास उपस्थित इस निष्कलुष कान्ति से भरपूर रूप वाली युवती को मैंनं पहले पत्नी के रूप में स्वीकार किया होगा या नहीं यह निश्चय करने में उलझा हुआ मैं इसका वैसे ही न तो उपभोग कर सकता हूँ और न छोड़ पाता हू जैसे भौंरा प्रत्युष काल में भीतर ओस से भरे हुए कुन्द पुष्प् का न तो मधुपान कर पाता है और न उसे छोडकर जाता ही है।।**19।।** (चिन्तन करता हुआ बैठा रहता है।)

विशेषण अधिक्षिप्तः अस्मि = मेरे ऊपर बहुत आक्षेप लगाया गया है। अधिक्षिपक्त। राजा भी दुर्वासा के शाप के प्रभावित रहते विस्मरण के कारण अपरिचित बनायी गयी शकुनतला का उसके रूप पर मुग्ध होते हुए भी स्वीकार कर भोग करने में असमर्थ है। जैसे सूर्योदय के साथ ओस के नष्ट होने पर भौंरा कुन्द का मधुपान कर सकता है, वैसे अभिज्ञान (अंगूठी) के दर्शन से शाप का अन्त होने पर, दुश्यन्त भी शकुन्तला को स्वीकार कर परिभोग में समर्थ होगा।

न् च खलु परिभोक्तु शक्नोमि=न तो परिभोग कर सकता हूँ । 'खलु' निश्चय के अर्थ में है। परिभोक्तुम्=परि+भुज+तुमुन प्रत्यय। न एवं हातुं शक्नोमि=और न छोड़ पा रहा हूँ। अनुप्रास भी है। सन्देहालंकार भी है। मालिनी छन्द है। गौतमी के उपर्युक्त कथन से छठे अंक अन्त तक विमर्श या अवमर्श सन्धि है जिसमें शापरूपी वयवसन उपस्थित है। प्रकरी नामकी अर्थप्रकृति है औश्र नियताप्ति नामकी कार्यावस्था है (दे0 परिशिष्ट, नाटयशास्त्रीय टिप्पणी)।

प्रतिहारी:अहो र्धावेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृश्ट्व कोऽन्या विचारयति?

प्रतिहारी -अहो! महाराज की धर्मनिष्ठता धन्य है। इस प्रकार के अनायास उपस्थित हुए रूप को देखकर दूसरा कौन पुरूष सोचता-विचारता?

शारंगरव -भोराजन्! किमिति जोशमास्यते?

शारंगरव -राजन्, चुप क्यों हो गये

राजा: भोस्तपोधनाः! चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशंकमानः प्रतिपत्स्ये?

राजा-हे तपस्वियों, सोचने पर भी मैं इनको (पत्नी के रूप में) स्वीकार करना स्मरण नहीं कर पा रहा हू। तो कैसे मैं गर्भ के स्पष्ट लक्षणों वाली इसका क्षेत्री पति बनूगा ऐसी आशंका करते हुए इसे स्वीकार करूं।

शकुन्तला- (अपवार्य) आर्यस्य परिणय एवं सन्देहः। कुत इदानी में दूराधिरोहिण्याशा?

शकुन्तला- (एक ओर मुख कर) आर्य को विवाह में ही सन्देह है। अब मेरी ऊँची आशाओं के लिए स्थान कहाँ।

शारंगरव मा तावत्ः

कृताभिमर्शामनु मन्यमानः

सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।

मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं

पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन।।20।।

अन्वय-कृताभिमर्शाम सुताम् अनुमान्यमानः मुनिः त्वाया (त्वम् तावत्) विमान्यः नाम येन मृष्टं स्वम् अर्थम् प्रतिग्राहयता दस्युः इव (त्वम) पात्रीकृतः असि।

अपनी बलपूर्वक धर्षिता पुत्री के प्रति तुम्हारे अपराध को (क्षमापूर्वक) अनुमति देने वाले उस मुनि का तुम थोड़ भी अपमान मत करों, जिन्होंने तुम्हें वैसे ही (कन्यादान हेतु) योग्य पात्र बना दिया है जैसे कोई (उदारचेता) अपने चुराये गये धन का चोर को ही सम्मानपूर्वक दान कर दे।।**20।।**

शारंगरव दुष्यन्त को चेतावनी-सा देता हुआ कहता है। मा तावत्=ऐसा मत करो। कृताभिमर्शा सुताम् अनुमन्यमानः बलपूर्वक या स्वेच्छा से उपभोग ली गयी कन्या को अनुमति देते हुए। फुसलाकर भोग की गयी पुत्री के साथ तुम्हारे व्यवहार को स्वीकार करते हुए। कृतः अभिमर्शः बलादधर्षणं यस्याः सा तम्। अभि+मृश्+घञ्। अनुमन्यमानः=अनु+मन+शानच्। मुनिः त्वया(मा तावत) विमान्यः नाम=मुनि का तुम्हें बिल्कुल अपमान नहीं करना चाहिये। प्रतिग्रह का अर्थ दान है। दान किसी योग्य पात्र को दिया जाता है। उन्होंने चुराये गये धन को ही चुराने वालेको योग्य पात्र बनाकर दान कर दिया है यह भाव है। प्रति+ग्रह+णिच्+शतृ, तुतीया एकवचन। यहाँ 'दस्युरिव' में उपमालंकार है। मुनि ने एक अपराध क्षमा कर दिया है, अब वे अवमानना क्षमा नहीं करेंगे, अवश्य दण्ड देंगे यह सूक्ष्म अर्थ व्यक्त होने के कारण सुक्षमलंकार भी है। 'मन्यमान्य' 'स्युसिये' में छेकवृत्यनुप्रास है उपजाति छन्द है जो इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के चरणों के मिश्रण से होता है।

राजा (कर्णौ विधाय) शान्तं पापम्।

राजा (कानों को ढककर) पाप शान्त हो।

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातर्यितुम?

कूलंकषेव सिन्धु प्रसन्नमम्भस्तटतरूं च।।21।।

अन्वय- (त्वम्) कूलंकषा सिन्धु प्रसन्नम् अम्भः तटतरूं च इव, व्यपदेशम् आविलयितुम, इमं जनं पातयितुम च किम ईहसे?

किनारों को तोडने वाली नदी जैसे निर्मल जल को कलुषित करती है और तट पर खडे वृक्ष को गिरा देती है वैसे ही (अपने) कुल को कलकिंत करने और तटस्थ वयक्ति को पतित बनाने की चेष्टा क्यों कर रही हो?।।**21।।**

शकुन्तला अच्छा, तो यदि आप सचमुच मेरे दूसरे की पत्नी होने की शंका करते हुए ऐसा कहने लगे तो मैं इस पहचान की वस्तु द्वारा आपकी शंका दूर करूगी।

शकुन्तला-भवतु, यदि परमार्थतः परपरिग्रहशंकिना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तवभिज्ञानेनानेन तवाशंकामपनेष्यामि!

राजा उदारः कल्पः।

राजा उत्तम उपाय है।

राजा शकुन्तला के आरोप से खिन्न होकर पूछता है कि मेरे कुल को कलंकित करना और मुझे पापी बनाना क्यों चाहती हो? सिन्धु के साथ कूलंकषा विशेषण आवश्यक है। इससे शकुन्तला के कुल की मर्यादा का उल्लंघन कर राजा के समीप आने की भी व्यंजना होती है। अलंकारादि- यहा पूर्णोपमा अलंकार स्पष्ट है पूर्वार्द्ध में क्रियाओं और गुण के समुच्चय के कारण समुच्चयालंकार है। आर्या जाति छन्द है।

शकुन्तला- (मुद्रास्थानं परामृश्य)-हा धिक, अड़गुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः।

(इति सविषादं गौतमीमेक्षते।)

शकुन्तला-अगूँ ठी धारण करने के स्थान को छूकर) हाय, अनर्थ हो गया, मेरी अंगुली में अंगुठी नहीं है। (ऐसा कहकर विषाद के साथ गौतमी की ओर देखती है।)

गौतमी नूनं ते शक्रावताराभ्यतरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमंगुलीयकम्।

गौतमी लगता है, शक्रावतार में शचीतीर्थ के जल की वन्दना करते समय तेरी अंगूठी गिर गयी है।

राजा (सस्मितम) इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते।

राजा (मुस्कराते हुए) यह वैसा ही है जैसा कहा जाता है कि स्त्री जाति अवसर के अनुकूल तत्काल बुद्धि से काम लेने में निपुण होती है।

शकुन्तला अत्र तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।

शकुन्तला इस विषय में तो विधि ने अपना प्रभुत्व दिखा दिया। मैं दूसरा तृत्तान्त सुनाती हूँ।

राजा श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्।

राजा: अब सुनने वाली बात आ गयी।

शकुन्तला- नन्वेकस्मिन्दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुकं तव हस्ते संनिहिमासीत्।

शकुन्तला-एक दिन नवमालिकाकुन्ज में कमलिनी के पत्ते के दोनो में रखा हुआ जल आपने हाथ में लिया था।

राजा-शृणुमस्तावत्।

राजा-सुन तो रहे हैं।

शकुन्तला- तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापांगो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत्प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्दन्दित उदकेन। नपुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्याशमुपतः पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते

सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि सर्वः सगन्धेषुविश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकौ इति।

शकुन्तला-उस समय मेरे द्वारा पुत्र बनाया गया दीर्घापाड़ग नाम का मृंगशावक आया। तब आपने यह पहले यह जल पिया ऐसी अनुकम्पा से उसे जल दिखाकर प्यार से बुलाया था। वह अपरिचित होने के कारण आपके हाथों के पास नहीं आया। उसके बाद जब उसी दोने में मैंने जल लेकर बुलाया तब उसने चाव से जल पी लिया था। तब आपने इस प्रकार परिहास किया था कि सभी अपने ही बन्धुओं पर विश्वास करते हैं। यहॉ तुम दोनों ही आरण्यक हो।

राजा-एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाड़मधुभिराकृष्यन्ते।

राजा-अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाली स्त्रियों के ऐसे ही झूठे और मधुर वचनों से कामी पुरूष फसाये जाते है।

गौतमी-महाभाग! नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽयं जनः कैतवस्य।

गौतमी -महानुभाव! आप ऐसा न सोचें। तपोवन में पाली-पोसी गयी यह छल-प्रपंच से अनभिज्ञ है।

राजा -तापसंवृद्धे! **राजा**-तापसी वृद्धा

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
स्ंदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
मन्यैद्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति।।22।।

अन्वय-स्त्रीणाम् अशिक्षिणतपटुत्वम् अमानुषीषु संदृश्यते, किमुत या प्रति-प्रबोधवत्यः? परभृताः खलु अन्तरिक्षगमनात् प्राक अपत्जातम् अन्यैः द्विजैः पोषयन्ति।

अर्थ- स्त्रियों की उपदेश के बिना भी वचनो की चतुराई मनुष्य जाति से भिन्न जातियों की स्त्रियों में भी सम्यक् दिखायी पड़ती है, तो फिर जो बुद्धि विवेक से संपन्न (मनुष्य जाति की) स्त्रियाँ है उनकी बात ही क्या? परभृता (कोकिलाएं)अपने बच्चों का जब तक के अन्तरिक्ष में उड़ने में समर्थ नहीं होते तब तक दूसरे द्विजों (कौओं) से पालन पोषण कराती है।।22।।

जब गौतमी राजा से यह कहती है कि शैशव से ही तपोवन में पाली-पोसी गयी यह शकुन्तला छल-प्रपंच से अनभिज्ञ है, तब राजा उत्तर में कहता है कि स्त्रियों को छल-प्रपंच कहीं से सीखना नहीं होता,वह तो विना सीखे ही उन्हें स्वभाव से प्राप्त हो जाता है। पशु-पक्षियों की मादा में भी यह चतुराई रहती है फिर मनुष्य जातिकी स्त्रियों की तो बात ही क्या?

शकुन्तला (सरोषम्)-अनार्य! अनार्य! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यति। क इदानीमन्यो धर्मकंचुकाप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृति प्रतिपत्स्यते?

शकुन्तला: (रोष के साथ) नीच कही के। अपने हृदय जैसा ही दूसरो को समझ रहे हो। इस समय और कौन दूसरा धर्म का चोंगा धारण करने वाले और तिनकों से ढंके हुए कुएँ जैसे तुम्हारे ढोग को समझ सकता है?

राजा (आत्मगतम्)सन्दिग्धबुर्द्धि मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा हा्रनया-

राजा (आत्मगत) मेरी बुद्धि को सनदेह में डालता हुए इसका यह क्रोध स्वाभाविक-सा दिखाई पड़ रहा है क्योंकि इसने ।

शकुन्तला विशेष के स्थान पर स्त्री सामान्य का वर्णन होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। पूर्वार्द्ध के सामान्य कथन का उत्तरार्द्ध के विशेष कथन द्वारा समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास है। वसन्ततिलका छन्द है उक्ता 'वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

मय्येव विस्मरणदारूणचित्तवृत्तौ
वृत्त रहः प्रणयमप्रतिद्यमाने।
भेदाद् भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं् शरासनमिवातिरूषा स्मरस्य।।23।।

अन्वय-अतिरूषा अतिलोहिताक्ष्या (अनया) विस्मरणदारूणचित्तवृतौ रह वृतं प्रणयम् अप्रतिपद्यमाने मयि एव कुटिलयोः भ्रुवोः भेदात् स्मरस्य शरासनं भग्नम् इव।

(**प्रकाशम**)भद्रे! प्रथितं दुष्यनतस्य चरितम्। तथापीदं न लक्षये।

स्मरण न होने से कठोर चित्तवृत्ति वाले पर ही एकान्त में किये गये प्रणय व्यापार को निश्चयपूर्वक स्वीकार न करने पर अत्यनत रोष से भरी हुई और अत्यधिक लाल नेत्रों वाली ने तिरछी भौहौं को ऊपर चढाकर मानों कामदेव के धनुष् का दण्ड ही तोड़कर रख दिया।।**23।।**

(प्रकट)भद्रे, दुष्यन्त का चरित्र सर्वविदित है। यदि न भी हो, तो भी मैं ऐसा दोष नहीं पा रहा हूँ।

शकुन्तला के स्वाभाविक क्रोध से राजा भी सन्देह में पड़ जाता है। अन्तर्मन में शाप के कारण सुप्त स्मृति भी बीच-बीच में उद्बुद्ध होती है। अतिरूषा=अत्यन्तक्रोधकेकारण,अतिलोहिताक्ष्या=अत्यन्त लाल नेत्रों वाली द्वारा। अतिलोहिते अक्षिणी यस्याः सा तया। अत्यन्त क्रोध के कारण आँखें बहुत अधिक लाल हो गयी है। यह क्रोध की वास्विकता का द्योतक है। स्मरस्य शरासनं भग्नम् इव=मानों कामदेव का धनुष तोड़ दिया गया। हो। अलंकार-'भग्नम्' नेत्रों की अतिशय लालिमा तथा भ्रूभंग एवं स्मर के शरासन के टूटने का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

शकुन्तला-सुष्ठुतावदत्रसवच्छन्दचारिणी-कृतास्मि,याहमस्यपुरूवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयसिथतविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता। (इति पटान्तेन मुखमावृत्यं रोदिति।)

शकुन्तला-तो मैं सम्यक रूप से स्वेच्छाचारिणी बना दी गयी, जो पुरूवंश का विश्वास कर मुख में मधु और हृदय में विष से भरे हुए तुम्हारे जैसे पुरूष के हाथों में पहुँच गयी। (आँचल में मुख ढंककर रोती है।)

शार्ङ्गरव-इत्थमात्मकृतं प्रतिहतं चापलं दहति।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्संगतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्।।24।।

अन्वय-अतः रहः संगतम् विशेषात् परीक्ष्य कर्तव्यम्। अज्ञात हृदयेषु सौहृदम् एवं वैरीभवति।

शारंगरव-इसी प्रकार अपना किया हुआ अविवेकपूर्ण कार्य विध्न उत्पन्न् होने पर सन्ताप देता है।

इस कारण एकान्त में मैत्री या प्रेमसंबन्ध विशेष रूप से परीक्षा लेकर करना चाहिए। जिसके हृदय के विषय में ज्ञान नहीं है उनसे प्रेम करना ही शत्रु बन जाता है **।।24।।**

शकुन्तला का उदाहरण दिया गया है, अवैरम वैरं सम्पद्यमानं भवति इति वैरीभवति। वैरच्विभूलट्लकार। 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।' अलंकार-इस पद्य में शकुन्तला और दुष्यनत का प्रणयव्यापार प्रस्तुत है, उसके स्थान पर सामान्य एकान्तघटित प्रेम सम्बन्ध का वर्णन किया गया है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। अज्ञातहृदय वालों के साथ मैत्री शत्रु के समान आचरण करती है इस सामान्य कथन से वैधर्म्य द्वारा दुष्यनत के प्रति प्रेम से शकुन्तला की विषम स्थिति का समर्थन किया गया है, सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। उत्तरार्द्ध में पूर्वार्द्ध का हेतु वर्णित होने से वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग भी है । पथ्यावक्त्र छन्द है ।

राजा- अयि भोः! किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् संयुतदोषाक्षैरः क्षिणुथ?

राजा-महाशयां इन देवी जी के ऊपर विश्वास कर ही हमें कलंक में सने हुए वचनों से क्यों क्लेश दे रहे हैं?

शारंगरव (सासूयम) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम् ।

आ जन्मन: शाठयमषिक्षितो य-

स्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।

परातिसन्धानमधीयते यै-

र्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः।।25

अन्वय- यः आ जन्मनः शाठयम् अशिक्षितः तस्य जनस्य वचनम् अप्रमाणम्। यैः परातिसन्धानम् विद्या इति अधीयते ते किल आप्तवाचः सन्तु।।

शार्ङ्गरव- (दोष दिखाने के भाव से) आप लोगों में यह उल्टी बात सुनी?

जिसने जन्म से ही धूर्तता नहीं जानी उस व्यक्ति का वचन अप्रमाण हो गया और जो दूसरों की वंचना का एक शास्त्र के रूपमें अध्ययन करते है वे परम सत्यवादी हो गये**।।25।।**

इस पद्य में व्यंग्यार्थ यह ध्वनित होता है कि जिस व्यक्ति ने (अर्थात् शकुन्तला ने) जन्म से शठता सीखी भी नहीं है, इसके वचन असत्य नहीं हो सकते और जिस व्यक्ति ने (अर्थात् राजा ने) परवंचना को विद्या के रूप में सीखा ही नही अपितु विधिवत् गुरूओं से पढ़ा है उसका वचन सत्यवचन नहीं हो सकता है। शकुनतला के वचन ही प्रमाण हैं।

राजा-भोः सत्यवादिन्! अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमामति-सन्धाय लभ्यते?

राजा-हे सत्यवादी हम ऐसा ही मान ले रहे हैं, किन्तु इनहें धोखा देकर क्या मिलेगा?

शार्ङ्गरव-विनिपातः।

शारंगरव -घोर अधःपतन ।

राजा-विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयम् ।

राजा-अधःपतन की कामना पुरूवंशी राजा करते हों यह विश्वास करने योग्य नहीं है ।

शारद्वत-शार्ङ्गरव! किमुत्तरेण? अनुष्ठितो गुरोः सन्देशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्। (राजानं प्रति)-

तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा ।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ।।26

अन्वय-तत् एष भवतः कान्ता, एनाम् त्यज गृहाण वा। हि दारेषु सर्वतोमुखी प्रभुता उपपन्ना।

गौतमि! गच्छाप्रतः। (इति प्रस्थिताः)

शारद्वत शाङ्गरव! बत बढाने से क्या लाभ? हमने गुरू का सन्देश पूरा कर दिया। अब हम लौटें। तो यह आपकी कान्ता है। इस का परित्याग कीजिए या इसे स्वीकार कीजिए। पत्नी के ऊपर पति का सभी प्रकार का अधिकार माना जाता है **।।26।।**

गौतमी, आगे चलो। (ऐसा कहकर चलने लगते हैं)

शकुन्तला-कथमनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि। यूयमपि मां परित्यजथ? (इत्यनुप्रतिष्ठते)

शकुन्तला-यह क्या? इस धूर्त ने तो मेरे साथ विश्वासघात किया ही है, आप लोग भी मुझे छोड़ रहे हैं? (ऐसा कहकर उनके पीछे चलने लगती है)

अलंकारादि-शकुन्तला और दुष्यन्त के विशेष प्रस्तुत वृत्तान्त के स्थान पर सामान्य अप्रस्तुत का वर्णन होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा है। 'परातिसन्धानम् विद्येति' में परातिसन्धान पर विद्या का अभेद आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है अनुप्रास भी है। उपजाति छन्द है।तत् एषा भवतः कान्ता=तो यह आपकी प्रिया है। कान्ता का अर्थ है प्रिया। एनां त्यज गृहाण वा=इसे छोड़ो या गृहण करो। दारेषु=पत्नी पर, दारा शब्द पत्नी का पर्यायवाची है, नित्य बहुवचन है और पुल्लिंग है। सर्वतोमुखी प्रभुता उपपन्ना=सभी प्रकार से प्रभुत्व या अधिकार माना जाता है। सर्वतोमुखी=सभी दिशाओं में, सर्वासु दिक्षु मुखं प्रवृत्तिः यस्याः तादृशी। (सर्वतोमुखी त्यागे ताड़ने स्वीकारे दान इत्यादि)। उपपन्ना=उप+पद्+क्त+टाप्। दाराः=दारयन्ति भ्रातृन् इति√दृ+णिच्+घञ् कर्तरि। पूर्वार्द्ध में विशेष का उत्तरार्द्ध में वर्णित सामान्य द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। पथ्यावक्त्र छन्द है

गौतमी: (स्थित्वा)वत्स शार्ङ्गरव! अनुगच्छतीयं खलु नः करूणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरूषे भर्तरि किं वा में पुत्रिका करोतु?

गौतमी (रूककर) बेटा शारंगरव। करूण विलाप करती हुई यह शकुन्तला हमारे पीछे आ रही है। पति के परित्याग की निष्ठुरता दिखाने पर मेरी बिटिया क्या करे?

शार्ङ्गरव- (सरोषं निवृत्य) किं पुरोभागे! स्वातन्त्र्यवलम्बसे? (शकुन्तला भीता-वेपते)

शारंगरवः(रोष के साथ पीछे मुड़कर) अरी दुष्टा, मनमानी कर रही है? (शकुन्तला डर कर कॉपने लगती है)

शार्ङ्गरव-शकुन्तले!

यदि यथा वदति क्षिपिपस्तथा
त्वमसि किं पितुरूत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः
पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ।। 27 ।।

अन्वय-क्षितिपः यथा वदति, यदि त्वं तथा असि, उत्कुलया त्वया पितुः किम्? अथ तु आत्मनः व्रतं शुचि वेत्सि, पतिकुले तब दास्यम् अपि क्षमम्।

तिष्ठ, साधयामो वयम्। रूको। हम चलते हैं।

शारंगरव- शकुन्तले!यदि राजा जैसा कह रहे हैं वैसी ही तू है, तो कुल की मर्यादा का उल्लंघन करने वाली तुझसे अब पिता को क्या प्रयोजन? और यदि तुम अपने आचरण को पवित्र समझती हो तो पति के घर में तुम्हारा दासी बनकर रहना ही उचित है **।।27।।**

विप्रलब्धा=वि, प्र+लभ+क्त+टाप्। छली गयी। अनुप्रतिष्ठते=पीछे चल पड़ती है। *परि+दिव्+णिनि+ड़ीप्। करूण विलाप करती करूणं यथा स्यात्तथा परिदेविनी।* है। ध्वनित है कि राजा तुम्हें स्वीकार न करते हुए भी तुम्हारा पालन करेगा। राजा का यह धर्म होता था कि वह धर्षिता, अनाथा स्त्री के भी पालन-पोषण की व्यवस्था करता था, जैसा कि आजकल शासन की ओर से संरक्षणगृहों में संवासिनियों का पालन-पाषण किया जाता है। उत्तरार्द्ध में 'पति' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसके द्वारा शकुन्तला के कथन की सत्यता भी विकल्प के रूप् में स्वीकार की गयी है। अलंकार-यहॉ प्रथम चरण में द्वितीय चरण में चतुर्थ चरण के कथन का हेतु है, अतः दूसरा काव्यलिंग अलंकार है। अनुप्रास भी है। द्रुतविलम्बित छन्द है, लक्षण है-द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ'।

राजा-भोस्तपस्विन्! कथमत्रभवतीं विप्रलम्भसे?

कुमुदान्येव शशांकः सविता बोधयति पंकजान्येव।
वशिनांहि परपरिग्रहसंश्लेषपराड्मुखी वृत्तिः।।28।।

अन्वय-शशांक कुमुदानि एव बोधयति सविता, पंकजानि एवं (बोधयति)। हि वशिनां वृत्तिः परपरिग्रहसंश्लेषपराड्मुखी (भवति)।

राजा-हे तपस्वी! इन्हें क्यों धोखे में डाल रहे हैं?

चन्द्रमा कुमुदों को ही विकसित करता है और सूर्य कमलों को ही प्रस्फुटित करता है। जितेन्द्रियों की मनोवृति दूसरों की वस्तु या पत्नी के सम्पर्क से दूर भागने वाली होती।।28।।

शार्ङ्गरव -यदा तु पूर्ववृत्तमन्यसंगाद्विस्मृतो भवांस्तदा कथमधर्मभीरूः?

शाड़र्गरव जब आप पहले के वृतान्त को अन्य में आसक्ति के कारण भूल बैठें तब अधर्म से भय क्यों कर रहे हैं?

राजा- (पुरोहितं प्रति) भवन्तमेवात्र गुरूलाघवं पृच्छामि ।

मूढ़ स्थामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ।।29।।

अन्वय-अहम् मूढः स्याम् एषा वा मिथ्या वदेत् इति संशये दारत्यागी भवामि आहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः(भवामि)

राजा- (पुरोहित से) इस विषय में मैं आप से ही उचित अनुचित पूछता हूँ।

मैं ही स्मृति खो चुका हूँ या यह मिथ्या बोल रही है इस प्रकार के संशय में पत्नी का परित्याग करने वाला बनूं यापरस्त्री के संपर्क से दूषित होऊँ**? ।।29।।**

किमत्रभवती विप्रलभसे=क्यों इनको धोखे में रख रहे हैं? तात्पर्य यह है कि इन्हें आप यहॉ मेरे राजप्रासाद में रहने का आदेश देकर इन्हें इस धोखे में क्यों रख रहे हैं मैं इनके यहॉ निवास करने पर स्वीकार कर लूँगा । शशांकः कुमुदानि एवं बोधयति=चन्द्रमा कमलों को ही जगाता है, प्रस्फुटित करता है, विकसित करता है। दूसरे पुष्पों को विकसित नहीं करता।

पुरोहित- (विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम्।

पुरोहित - (विचार कर) यदि ऐसी बात है तो आप यह करें।

राजा-अनुशास्तु मां भवान्। **राजा**-आप मुझे निर्देश दें।

पुरोहित -अत्रभवती तावदा प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यत इति चेत्। त्वं साधुभिरूद्दिष्टः, प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्ययें तु पितुरस्या समीपनयनमवस्थितमेव।

पुरोहित-ये देवी प्रसव होने तक मेरे घर रहें। मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ यदि यह पूछें, तो आपको महात्माओं ने कहा ही है कि पहला ही पुत्र चक्रवर्ती बनने वाला उत्पन्न करेगे। यदि मुनि का यह नाती चक्रवर्ती राजा के लक्षणों से युक्त हो, तब इनका सत्कार कर इन्हें अन्तःपुर में पहूँचा दीजिएगा, इसके विपरीत होन पर इसे पिता के समीप तो पहुँचाना ही है।

राजा-यथा गुरूभ्यो रोचते।

राजा-जैसा गुरूवर को अच्छ लगे।

पुरोहित-वत्से! अनुगच्छ माम्

पुरोहित-पुत्री, मेरे पीछे आ।

शकुन्तला-भवति वसुधे! देहि मे विवरम् ।(इति रूदती प्रस्थिता, निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च)(राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति)

(नेपथ्ये) आश्चर्यम्।(नेपथ्य में) आर्श्चय है।

शकुन्तला-हे पृथ्वी देवी, मुझे अपने भीतर प्रवेश के लिए मार्ग दो। (यह कहकर होती हुई चल देती हे और पुरोहित एवं तपस्वियों के साथ निकल जाती है।)

(राजा शाप के कारण अवद्ध स्मृति की अवस्था में पड़कर शकुन्तला के विषय में ही सोचता है।)

राजा- (आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात्?

राजा- (सुनकर) क्या हो सकता है?

पुरोहित- (सविस्मयम) देव, अद्भुतं खलु संवृत्तम्।

पुरोहित - (प्रवेशकर, विस्मय के साथ) महाराज, सचमुच अद्भुत हो गया।

राजा-किमिव? **राजा**-वह क्या?

पुरोहित- देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु।

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला

बाहुत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।

पुरोहित -महाराज, कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर-

वह युवती अपने भाग्य को कोसती हुई बाहों को उठाकर फूट-फूट कर रोने लगी।

राजा-किंच। **राजा**-और तब?

पुरोहित- **स्त्रीसंस्थानं चापसरस्तीर्थमारा**
दुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम।।30।।

अन्वय-सा बाला स्वानि भग्यानि निन्दती बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं प्रवृत्ता। स्त्रीसंस्थानम् एकं ज्योतिः आरात् एनाम् उत्क्षिप्य अप्सरस्तीर्थम् जगाम। (सर्वे विस्मयं रूप्त्रपयनित)

पुरोहित- स्त्री की आकृति वाला एक तेजःपुन्ज उसे दूर से उठाकर अप्सरस्तीर्थ की ओर गया।।30।

(सभी आश्चर्य का अभिनय करते है)

राजा-भगवान्! प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्यते? विश्राम्यतु भवान्।

राजा-भगवान् हमने पहले ही उसे वस्तु को ठुकरा दिया है। अब व्यर्थ तर्क से किस उधेड़-बुन में पड़े हुए है। आप विश्राम करें।

पुरोहित - (विलोक्य)विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः)

पुरोहित - (राजा को देखकर) विजयी होवें।(निकल जाता है)

राजा-वेत्रवति! पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय।

राजा-वेत्रवती, व्याकुल हो गया हूँ । शयनगृह का मार्ग दिखाओ।

प्रतीहारी -इत इतो देवः। (इति प्रस्थिता)

प्रतीहारी- इधर से इधर महाराज। (प्रस्थान करती है)

सोऽर्थः प्रत्यादिष्टः एवं=उस वस्तु को या उस स्त्री को हमने अस्वीकार ही कर दिया। पर्याकुलः अस्मि=मैं व्याकुल हो गया हूँ। अब शाप का प्रभाव पूरा हो चुका है, स्मृतियॉ और भी जोर मार रही है, इस कारण व्याकुलता और बढ़ जाती है। वह अपनी स्थिति का वर्णन पद्य में करता है।

राजा- **कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।**
बलयत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम्।।31।।

अन्वय-कामम् प्रत्यादिष्टाम् मुनेः तनयाम् परिग्रहं न स्मरामि। बलवद् दूयमानं में हृदयं तु प्रत्यायति।

राजा-यद्यपि मैं ठुकरायी गयी मुनिकन्या को पत्नी बनाने का स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ तथापि व्यथित होता हुआ मेरा हृदय मुझे विश्वास-सा दिला रहा है।।31।। (इति निष्क्रान्ताः सर्वे) सभी निकल जाते है।)

।।पंचमोऽङ्कः।। पंचम अंक समाप्त।।

अभ्यास प्रश्न 1 -

4.4 सारांश

इस इकाई में आपने हंसपादिका के गीत द्वारा दुष्यन्त के ऊपर किये जाते हुए व्यंग्य की सूचना प्राप्त करते हुए परित्यक्त शकुन्तला के वियोग का अनुभव एवं दुष्यन्त-शकुन्तला के

विस्तृत संवादों का अध्ययन किया और जाना कि किस प्रकार अंगूठी के खो जाने के कारण राजा शकुन्तला को नही पहचान सका और अन्त में एक तेजोमयी नारी की आकृति उसे उठाकर आकाश में ले गयी।

4.5 शब्दावली

मुनिसुता	मुनिकन्या
प्रत्यादेशात्	परित्यक्त होने के कारण
मेदिनी	पृथ्वी
शाठयम्	धूर्तता
रह	एकान्त

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 -

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा॰ उमेश चन्द्र पाण्डेयप्रकाशक – प्राच्य भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

4.8 सहायक व उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा॰ उमेश चन्द्र पाण्डेयप्रकाशक – प्राच्य भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंचम अंक की प्रमुख सूक्तियों की व्याख्या लिखिये।

इकाई 5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाट्य साहित्य से सम्बन्धित यह तृतीय खण्ड की अन्तिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् का भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या से परिचित हुये। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या को विस्तार से अध्ययन करेंगे।

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सूक्तियों के माध्यम से समाज को विभिन्न सन्देश दिये हैं, जिनसे कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और पाण्डित्य का दिग्दर्शन होता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक ऐसा सम्पूर्ण शास्त्र है जो वैदुष्य के धारा प्रवाह के कुन्द हो जाने पर उसे पुनः प्रखर बनाने में समर्थ है। महाकवि कालिदास ने अपने लेखन कौशल से भारतीय संस्कृति एवं अनेक गम्भीर विषयों से अलङ्कृत किया है। उनके सन्दर्भ में यह उक्ति प्रसिद्ध है।—**'उपमा कालिदासस्य'** शाकुन्तलम् में उपमा की मञ्जुलता ही नहीं वरन् भारतीय संस्कृति के प्राण रूप पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष परक जीवन मूल्यों की भी अभिव्यक्ति होती है।

साहित्य सूक्ति के विना अधूरे है। सूक्ति का प्रयोग व्यवहार में मृदुता एवं भाव व्यक्त करने के लिए किया जाता है। सूक्ति शब्द सु और उक्ति इन दो शब्दों के योग से वना है, सूक्ति में सु उपसर्ग तथा उक्ति में कथनार्थक वच् धातु से भाव और कर्म में क्तिन् प्रत्यय लगा है। जिसका अर्थ है शोभन उच्चारण करना, सरल उल्लेख वर्णन करना, इस प्रकार सु + उक्ति के मेल के वने सूक्ति पद का अर्थ हुआ एक सुन्दर–शोभन–गुण युक्त,मूल्यवान, गरिमापुर्ण कथन,जिसमें अपनी इच्छानुसार अभिव्यक्ति हो पाश्चात्य विद्ववानों ने सुक्ति के लिए ऐन्थोलौजी या कोटेशन्स (Anthology / Quotations) का प्रयोग किया है। प्रस्तुत इकाई में उक्त सभी प्रसंगों के बारे में आप सम्पूर्ण ज्ञान पाप्त करेंगे।

5.2 उद्देश्य:-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कथित उक्तियों की समीक्षा करने में समर्थ हो सकेगें।
- महाकवि कालिदास के विषय में कहे गये लोकोक्ति 'उपमा कालिदासस्य' से पूर्णतया परिचित हो सकेगें।
- इस इकाई के माध्यम से शाकुन्तलम् की महत्वपूर्ण सूक्तियों से परिचित हो सकेगें।
- इस इकाई के माध्यम से आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सम्पूर्ण स्वरूप को समझ सकेगें।

5.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

प्रिय शिक्षार्थियों !

प्रस्तुत इकाई में अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रसिद्ध सूक्तियों की सप्रसंग व्याख्या को आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत है। इस सूक्त में सूत्रधार नटी से कहता है कि आज हमें अभिज्ञानशाकुन्तल नाट्य का अभिनय करना है और विद्वानों की सभा है, अतः प्रत्येक पात्र को बड़ी सावधानी से अभिनय के लिये प्रयत्न करना चाहिये। तब सूत्रधार कहता है- **"प्रिये! अत्यन्त शिक्षित लोगों का सुदृढ़ मन भी इस विषय में विश्वास नहीं करता कि उसका प्रयोग पूर्ण सफल होगा।"**

व्याख्या— इस सूक्ति में सूत्रधार नटी से कहता है कि हे प्रिये । यद्यपि मैं नाट्य कला में कुशल हूँ और मेरे सहयोगी अभिनेता भी कुशल हैं, फिर भी जब तक दर्शक पूर्णरूप से सन्तुष्ट न हो जायें, तब तक मैं अपनी अभिनय कुशलता को सफल नहीं मानता; क्योंकि अत्यधिक शिक्षित अभिनय कला में अत्यन्त निपुण लोगों का चित्त भी अपने विषय में पूरा विश्वास नहीं करता कि मेरा अभिनय पूर्ण सफल होगा। जब विद्वान दर्शक सन्तुष्ट हो जाएँ, तभी मैं अपने कौशल को सफल समझूगा।

विशेष— इस उक्ति में विशेषोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार का वर्णन है।

(2) विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम ।

प्रसंग— यह सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा विरचित नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक से ली गई है। तपस्वी राजा को आश्रम में आने के लिये आमन्त्रित करते हैं। राजा उसे स्वीकार करके आश्रम में पहुँचता है। रथ को रुकवा तथा उससे उतरकर राजा सारथि से कहता है- **"विनीत वेश में तपोवन में प्रवेश करना चाहिये।"**

व्याख्या— राजा सारथि से कहता है कि यह आश्रम है, यहाँ सादे वेश में प्रवेश करना चाहिये, क्योंकि मुनियों के आश्रम में ठाटबाट से जाना ठीक नहीं है। यहाँ विनम्र भाव से जाना उचित है। मनु ने कहा है कि साधारण वेशभूषा और विनीत भाव से आश्रम में जाना चाहिये। राजा राजसी वेश-भूषा उतारकर सादे वेश में आश्रम में प्रवेश करता है।

(3) अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत है। राजा दुष्य। विनीत वेश में आश्रम में प्रवेश करता है। आश्रम में प्रवेश करते ही उसकी दाहिनी भुजा फड़कने लगती है। दाहिनी भुजा फड़कने पर वराङ्गनालाम्भ होता है, विश्वास किया जाता है। राजा सोचता है कि यह आश्रम स्थान है। यहाँ यह फल कैसे मिल सकता है ? इस प्रकार सोचकर राजा कहता है- "होनहारों के द्वार सब जगह होते हैं।"

व्याख्या— राजा दुष्यन्त आश्रम में प्रवेश करता है तो उसकी दाहिनी भुजा फड़कती है। लोक विश्वास के अनुसार, दाहिनी भुजा फड़कने पर सुन्दर स्त्री मिलती है। राजा सोचता है कि इस शान्त तपोवन में वराङ्गना का लाभ असम्भव है, फिर भी दाहिनी भुजा फड़कने का लाभ यहाँ मिल सकता है, क्योंकि होनहार के दरवाजे सब जगह होते हैं। भावी प्रबल होती है।

विशेष— इस उक्ति में अर्थान्तरन्यास अलंकार का वर्णन है।

(4) दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ।

प्रसंग— यह सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा विरचित नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथम अंक से ली गई है। राजा दुष्यन्त आश्रम में प्रवेश करके लड़कियों की बातचीत सुनकर उधर जाता है। वहाँ अति सुन्दर कन्याओं को घड़े के जल से वृक्षों को सींचती हुई देखकर आश्चर्य में पड़ जाता है कि आश्रम में रहने वाली कन्याओं में ऐसी सुन्दरता है जो रनिवास की रानियों में नहीं है। वह सोचता है- "यदि अन्तःपूर के लिये दुर्लभ इस प्रकार का सुन्दर शरीर आश्रम निवासिनी कन्याओं का है तो निश्चित ही वनलताओं ने अपने गुणों से उपवन की लताओं को जीत लिया।"

व्याख्या— राजा दुष्यन्त को यह आशा नहीं थी कि तपोवन की कन्याओं में अन्तःपुर की रानियों से अधिक सुन्दरता हो सकती है। वह सोचता है कि अगर आश्रम की बालाओं में इस प्रकार की सुन्दरता है तो निश्चय ही जंगली लताओं ने अपने गुणों से उपवन की लताओं को जीत लिया है। यहाँ कृत्रिम सौन्दर्य की अपेक्षा प्राकृतिक सौन्दर्य की विशेषता है। इससे शकुन्तला के स्वाभाविक सौन्दर्य की विशिष्टता है। इससे शकुन्तला के स्वाभाविक सौन्दर्य की विशिष्टता प्रकट है। यहाँ पर शकुन्तला रूप विशेष के प्रस्तुत होने के कारण 'आश्रमवासिनो जनस्येदं वपुः' यहां 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार है।

विशेष— इस उक्ति में निदर्शना अलंकार का वर्णन है।

(5) ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिव्यर्वस्यति ।।

प्रसङ्ग— यह सूक्ति महाकवि कालिदास रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के प्रथम अङ्क से उद्धृत है। यहाँ राजा दुष्यन्त कोमलाङ्गी शकुन्तला के वृक्ष सेचन व्यापार को देखकर कहते हैं।

व्याख्या— राजा कहते हैं कि निश्चय ही भगवान् कण्व अविवेकी हैं जो इस कोमलाङ्गी शकुन्तला को आश्रम के कार्य में लगाए हुए हैं- 'जो ऋषि कण्व स्वभाव से ही सुन्दर इस शकुन्तला के शरीर को तपस्या करते के योग्य बनाना चाहते हैं तो वह निश्चय ही नीलकमल के पत्ते की धारा मे शमीलता को काटने का प्रयत्न कर रहे हैं।'

वस्तुतः शमी वृक्ष की शाखा अत्यन्त कठोर होती है और कमल की पङखुड़ियां अत्यन्त कोमल । अतः कमल की पङखुड़ियों से जैसे शमी को काटना अविवेक है वैसे ही शकुन्तला से आश्रम का कठोर काम लेना ऋषि का अविवेक ही है।

विशेष— ध्रुव के कारण यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार दर्शनीय है ।

(6) मलिनमवि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति ।

अथवा

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।

प्रसङ्ग— यह सूक्ति महाकविकालिदास रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के प्रथम अंक से उद्धृत है। राजा दुष्यन्त अनिन्द्य सुन्दरी शकुन्तला को देखकर मन में सोचते हैं कि मधुर आकृति वालों के लिए अलङ्करण की कोई आवश्यकता नहीं होती।

व्याख्या— राजा दुष्यन्त कहते हैं कि भले ही वल्कल वस्त्र इस शकुन्तला के शरीर के योग्य नहीं है तथापि यह अलङ्कार जन्य शोभा कर ही रहा है, क्योंकि - 'शैवाल से आच्छादित कमल मनोहर ही होता है।

मलिन भी कलङ्क चन्द्रमा की शोभा को बढ़ाता हो है, इसी प्रकार वल्कल बस्त्र से भी यह कृशाङ्गी अधिक मनोहर प्रतीत होती है, भला सुन्दर आकृतियों के लिए, कौन सी वस्तु अलङ्कार नहीं बन जाती है ? अर्थात् सभी वस्तु अलङ्कार बन जाती है। बतः उन्हें अलङ्करण की कोई अपेक्षा नहीं होती है।

विशेष— सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन होने से 'किमिव हि मधुराणाम्' आदि में अर्थान्तरन्यास दर्शनीय है।

(7) न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।

प्रसङ्ग— यह सूक्ति महाकविकालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के प्रथम अङ्क से उद्धृत है। जब राजा को अनुसूया से शकुन्तला की उत्पत्ति अप्सरा से हुई है यह ज्ञात होता है तब वह कहते हैं।

व्याख्या— राजा दुष्यन्त शकुन्तला के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते है कि "मनुष्य जाति की स्त्री से ऐसे रूप की उत्पत्ति ही कैसे हो सकती है ? कान्ति से समुज्ज्वल तेज की उत्पत्ति भूतल से नहीं होती है।" भाव यह है कि शकुन्तला जो प्रकाश पुञ्जरूप है, जो यह अनिन्द्य सौंदर्य है वह स्वर्ग से अवतरित सा प्रतीत होता है।

(8) अहो ! चेष्टानुरूपिणी कामिजनचित्तवृत्तिः।

प्रसङ्ग— यह सूक्ति महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के प्रथम अङ्क से उद्धृत है जब राजा दुष्यन्त और प्रियंवदा के बीच शकुन्तला के परिणय की बात सुनकर प्रियंवदा के प्रति रुष्ट शकुन्तला जाना चाहती है तब राजा उसे पकड़ने की इच्छा करता है फिर भी अपनी इच्छा को रोककर इस सूक्ति को कहता है।

व्याख्या— राजा दुष्यन्त अपने मन में सोंचते हैं। यहाँ मेरा मन शकुन्तला के प्रति कामग्रस्त हो गया है। अतः मैं इसको रोकना चाहता हूँ। परन्तु यह श्रेष्ठ पुरुवंशी के अनुरूप कृत्य नहीं है। अतः अपनी इच्छा को रोककर कहते हैं- 'कामियों को चित्तवृत्ति उनकी चेष्टाओं के अनुकूल ही होती हैं।' अर्थात् कामीजन जैसा सोंचते हैं वैसा ही उनका शरीर करने के लिए समुद्यत हो जाता है।

(9) अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते।

प्रसंग— यह सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के द्वितीय अंक से ली गई है। दुष्यन्त अपने मन में सोचता है कि शकुन्तला की प्राप्ति यद्यपि सुलभ नहीं है और महर्षि कण्व के आश्रम में न होने से विवाह भी सम्भव नहीं है। मेरा मन उसके हाव-भाव आदि देखने से पूर्ण आश्वस्त है कि शकुन्तला मुझसे प्रेम करती है। दुष्यन्त कहता है- "कामदेव के सफल मनोरथ न होने पर भी हम दोनों की कामना एक-दूसरे के प्रति प्रेम को उत्पन्न करती है।"

व्याख्या— दुष्यन्त कहता है कि मेरी काम-वासना यद्यपि पूरी नहीं हुई है, फिर भी हम दोनों की एक-दूसरे से मिलने को अभिलाषा दोनों का प्रेम बढ़ा रही है और असीम आनन्द उत्पन्न कर रही

है। यहाँ पर उत्तरार्द्ध सामान्य के द्वारा पूर्वार्द्ध **विशेष** – यहां अर्थान्तरन्यास अलंकार है। कुछ आचार्य अप्रस्तुत प्रशंसा और काव्यलिंग अलंकार भी मानते है।

(10) अहो कामी स्वतां पश्यति।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के द्वितीय अङ्क से उद्धृत है। इसमें राजा कहते हैं कि शकुन्तला ने जो कुछ हाव-भाव आदि चेष्टाएं की थीं बह सब मुझको ही लक्ष्य करके की गई थीं।

व्याख्या - दुष्यन्त कहते हैं कि 'अपनी आँखों से दूसरी ओर देखती हुई भी शकुन्तला ने स्निग्ध चितवन से हमीं को देखा था। हमें देखने के लिए ही तो मानो विलासपूर्वक वह अपने नितम्बभार से धीरे-धीरे चल रही थी। 'मत जाओं' इस प्रकार रोके जाने पर उसने अपनी सखी प्रियंवदा को जो ईर्ष्यापूर्वक कहा, यह सब कुछ मुझे ही लक्ष्य में रखकर किया गया था- ओह कामी सर्वत्र अपने को ही देखता है ।।

विशेष— 'कामी स्वतां पश्यति' इस विशेष कथन से सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास दर्शनीय है।

(11) सर्वः खलु कान्तमात्मानं पश्यति।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तल के द्वितीय अङ्क से उद्धृत है। जब राजा दुष्यन्त आखेट बन्द करने का आदेश सेनापत्ति को देकर विदूषक के साथ एकान्त में बैठते हैं तब उससे कहते हैं कि माधव्य ! तुम्हें नेत्र पाने का फल नहीं मिला जो तुमने देखने योग्य बस्तु को नहीं देखा। राजा के अभिप्राय को समझकर भी विदूषक कहता है - क्यों ? आप तो सामने ही हैं अर्थात् आप से अधिक सुन्दर कौन है ? तभी राजा इस उक्ति द्वारा उत्तर देते हैं।

व्याख्या— राजा दुष्यन्त कहते हैं कि-'सब लोग अपने को सुन्दर ही समझते है। किन्तु मैंने तो इस आश्रम की अलङ्कार स्वरूपा शकुन्तला को लक्ष्य करके कहा था।

विशेष— राजा का यह कथन मनोवैज्ञनिक सत्य है। अपनी वस्तु को सभी सुन्दर समझते हैं। अपनी कुरूप या अवगुण युक्त भी सन्तान किसको प्रिय नहीं लगती ?

(12) स्निग्धजन संविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति कालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के तृतीय अंक से उद्धृत है। अनसूया और प्रियम्वदा दोनों सखियाँ शकुन्तला से उसके सन्ताप का कारण पूछती है। इस पर शकुन्तला कहती है कि हे सखि ! अपने सन्ताप का कारण यदि तुम दोनों को नहीं बताऊँगी तो और किससे कहूँगी ? इस पर दोनों सखियाँ उससे कहती है कि इसीलिये तो
हम दोनों का यह आग्रह है। प्रियजनों में बाँटा हुआ दुःख सहन करने योग्य हो जाता है।

व्याख्या— दोनों सखियाँ शकुन्तला से कहती है कि तुम अपने मन की बात हम दोनों को बता दो तो हम लोग तुम्हारा दुःख दूर करने का प्रयल करेंगी। यदि अपना दुःख प्रियजनों को बता दिया जाता है तो वह दुःख बँट जाता है। बंटा हुआ दुख हल्का और सह्य हो जाता है।

(13) सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति।

प्रसंग— यह सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के तृतीय अंक से उधृत है। अनसूया और प्रियम्बदा शकुन्तला के सन्ताप का कारण जानकर कहती हैं कि हम लोगों को शीघ्र ही ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे राजा दुष्यन्त शकुन्तला से मिल जाएँ और शकुन्तला मरने से बच जाय, तब प्रियम्बदा शकुन्तला से कहती है- कि इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या लाभ ? हमने गुरुजी का सन्देश कह दिया है। फिर राजा से कहता है-

व्याख्या— शारद्वत कहता है कि हे राजन्। यह शकुन्तला आपकी पत्नी है। इसे स्वीकार करें या छोड़ दें यह आपका अधिकार है। पत्नी पर पति का सब प्रकार का अधिकार होता है। शकुन्तला आपकी पत्नी है। इस पर आपका पूर्ण अधिकार है। आप चाहे इसे रखिए, चाहे इसे छोड़ दीजिये।

(14) लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ।।

प्रसङ्ग - प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के तृतीय अङ्क से उद्धृत की गयी है। जब शकुन्तला को सखी प्रियंवदा प्रणय पत्र लिखने को कहती है तब तिरस्कार के भय से उसका हृदय सशङ्कित हो उठता है। इसी पर राजा दुष्यन्त लता की ओट से मन में कहते है।

व्याख्या— दुष्यन्त मन में कहते हैं कि हे भीरु ! तुम जिससे तिरस्कार को आशङ्का करती हो वह यह दुष्यन्त तुमसे मिलने के लिए उत्कण्ठित हो रहा है क्योंकि-"याचक तो लक्ष्मी की प्रार्थना करने पर भी कहीं से लक्ष्मी को कदाचित् प्राप्त कर सके या नहीं भी, परन्तु लक्ष्मी के लिए तो कभी याचक दुर्लभ नहीं होते ।"

अर्थात् प्रार्थी को लक्ष्मी भले न मिले किन्तु लक्ष्मी जिसको चाहे उसका मिलना दुःसाध्य नहीं। तात्पर्य यह है कि यहाँ दुष्यन्त अपने को प्रार्थी तथा शकुन्तला को लक्ष्मी मानते हैं। अतः उस शकुन्तला के अभिलषित का मिलना कठिन नहीं है ।

(15) ग्लपयति यथा शशाङ्क न तथा हि कुमुद्धतीं दिवसः ।

प्रसङ्ग— यह सूक्ति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के तृतीय अङ्क से उद्धृत है। राजा दुष्यन्त छिपकर शकुन्तला से सम्बन्धित सखियों की बातें सुनते हैं। जब शकुन्तला प्रणयपत्र लिख देती है। तब राजा कहते हैं कि अपने को दिखाने का यही उपयुक्त अवसर है।

व्याख्या-हे कृशांगि ! यह सत्य है कि कामदेव तुम्हें सता रहा है, किन्तु मुझे तो रात-दिन जला रहा है। सूर्योदय होने पर दिन चन्द्रमा को जितनी ग्लानि पहुँचाता है, उतना कुमुदिनी को नहीं। सूर्योदय होने से दिन कुमुदिनी को मलिन भले ही कर दे, किन्तु उसका अस्तित्व तो बचा रहता है। वह चन्द्रमा का अस्तित्व तो नष्ट कर देता है। इस प्रकार कामदेव तुम्हें स्त्री समझकर उतना सन्ताप नहीं दे रहा है, जितना पुरुष होने के कारण मुझे दे रहा है।

विशेष— वस्तुतः दिन कुमुदिनी को तो मात्र मलिन ही करता है। किन्तु वह तो चन्द्रमा के अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है और कुमुदिनी चन्द्रोदय पर हो खिलती है। यहाँ दुष्यन्त चन्द्र रूप है और शकुन्तला कुमुदिनी। इस प्रकार चन्द्र एवं कुमुदिनी में नायक एवं नायिका के व्यवहार का आरोप होने से यहाँ समासोक्ति अलङ्कार दर्शनीय है

(16) कस्तावदुष्णोदकेन नबमालिकां सिञ्चति ?

प्रसंग— यह सूक्ति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के चतुर्थ अङ्क से उद्धृत है। यहाँ प्रियंवदा अनुसूया से कहती है कि शापविषयक वृत्तान्त हम दोनों के बीच ही रहना चाहिए।

व्याख्या – प्रियंवदा, अनुसूया के इस प्रश्न का कि 'यह वृत्तान्त हम दोनों के बीच ही रहना चाहिए, स्वभाव से ही कोमल प्रिय सखी शकुन्तला की रक्षा तो करनी ही है' उत्तर देती है कि - **"भला ऐसा कौन होगा जो गरम जल से नवमल्लिका की बेल को सींचेगा ?'** अर्थात् दुर्वासा के शाप से शकुन्तला को अवगत कराना तो उसके प्रेम को ही नष्ट कर देना होगा। अतः यह वृत्तान्त तो हम दोनों जानें, यही ठीक होगा।

(17) तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ।।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के चतुर्थ अङ्क से उद्धृत है। यहाँ कण्व शिष्य जब प्रात: काल सोकर उठते हैं तब कितनी रात शेष है? इसी का प्रतिपादन इस सूक्ति में करते हैं।

व्याख्या— शिष्य कहता है- 'एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है और दूसरी ओर सारथि अरुण को आगे किए हुए सूर्य उदित हो रहे हैं। यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त ओर उदय के द्वारा मानों अपनी दशा विशेषों में नियन्त्रित हो रहा हो। अथवा मानों शिक्षित किया जा रहा है।

विशेष - यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार दर्शनीय है

(18) दिष्ट्या धूमोरूद्धदृष्टेरपि यजमानस्य पावकस्यैव मुखे आहुतिर्निपपतिता।

प्रसंग— यह अत्यत्तुम सूक्ति कालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के चतुर्थ अंक से उधृत की गई है।

व्याख्या— जिस समय अनसूया चिन्तामग्न बैठी थी कि प्रवास में लौटे हुए पिता कण्व से शकुन्तला का विवाहित एवं गर्भवती होने कैसे निवेदित किया जाये, तभी प्रियम्वदा अत्यन्त मुदित होकर उससे आकर कहती है कि हे सखि, शकुन्तला की विदाई (पतिगृहगमन) का मंगलमय कार्य सम्पादन करने के लिये शीघ्रता करो। चकित होकर अनसूया पूछती है कि यह कैसे ? तो प्रियम्वदा कहती है कि सुनो, मैं अभी-अभी 'रात्रि में सुख से नींद आई' ? यह पूछने के लिये शकुन्तला के पास गई थी तो (पिता की आज्ञा के बिना पतिवरण के अकृत्य से) लज्जा से नीचे मुख किये हुए शकुन्तला को छाती से लगाकर पिता ने इस प्रकार उसका सानन्द अनुमोदन किया है- **दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता।**

अर्थात् बड़े सौभाग्य की बात है कि यज्ञाग्नि के धुयें से पीड़ित (अर्थात् बन्द) दृष्टि (नेत्रों) वाले यजमान की आहुति इधर-उधर न गिर कर, जैसा कि दृष्टि उपरुद्ध होने से स्वाभाविक ही था, अग्नि में ही पड़ी।

भाव यह है कि प्रायः कामान्ध जन उचित-अनुचित के विवेक से च्युत हो जाते हैं एवं अकुलीन और अभव्य (अयोग्य) व्यक्ति से प्रेम कर बैठते हैं, जिससे जीवन दुःखमय हो जाता है एवं पश्चाताप होता है, किन्तु कामवश होकर भी शकुन्तला के द्वारा योग्य एवं बावनकुलोत्पन्न पति का ही वरण किया गया, यह बड़े सौभाग्य एवं हर्ष की बात है। इस कथन से महर्षि कण्व की कृतकृत्यता भी ध्वनित होती है। विशेष-उक्त वाक्य में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

(19) स्नेहः पापशंकी।

प्रसंग— यह अत्यन्त भावगम्भीर सूक्ति अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के चतुर्थ अंक से उद्धृत की गई है।

व्याख्या— जब शकुन्तला पिता कण्व एवं अभिन्न सखियों से भेंट कर पतिगृह के लिये चलने को उद्यत होती है तो सखियाँ उससे कहती हैं कि यदि वे राजा (दुष्यन्त) तुम्हें पहचान न सकें तो उसके नाम से अंकित यह अँगूठी उसे दिखा देना। सखियों के इस वाक्य को सुनकर शकुन्तला भयभीत होकर कहती है कि सखियों, तुम्हारे इस सन्देह से तो मैं कॉप उठी हूँ (क्योंकि पिता कहीं ऐसा भी होता है कि पति अपनी पत्नी को न पहचाने, किन्तु दुर्वासा के शाप के कारण सखियों की यह आशंका सत्य ही थी। शकुन्तला के इस वाक्य को सुनकर सखियाँ, शकुन्तला अत्यन्त दुःखी न हो जाये, इस भय से शाप की वात को छिपाती हुई, उसे धैर्य बँधाती हुई कहती हैं कि- 'मा भैषीः। स्नेहः पापशंकी।'

सखि, डरो नहीं। प्रेम अमङ्गल (पाप अमंगल या अनिष्ट) की आशंका किया करता है।

कवि का उक्त कथन मनोवैज्ञानिक सत्य से पूर्ण है। उदाहरण के लिये कोई बालक नित्य ४ बजे विद्यालय से घर आ जाता है। यदि किसी दिन साढ़े चार बजे तक भी वह घर नहीं पहुँचता, तो पड़ोसियों को कोई चिन्ता नहीं होती, क्योंकि उन्हें उससे कोई प्रेम नहीं (हाँ, जिस पड़ोसी के हृदय में प्रेम होगा, उसे चिन्ता भी हो जायेगी)। भाई-बहिनों के मन में व्यग्रता होने लगती है, उससे अधिक पिता के हृदय में और माता का हृदय तो चिन्ता से विह्वल हो हो जाता है और वह तुरन्त उसका पता लगाने में तत्पर हो जाती है। इसी प्रकार यदि वयस्क पुत्र भी प्रथम बार कहीं अकेले प्रवासयात्रा करता है तो उसके पत्र प्राप्त न होने या न लौट आने तक माता-पिता उसके विषय में जितने चिन्तित रहते हैं, उतने भाई-बहिन या अन्य सम्बन्धी नहीं। इससे सिद्ध होता है कि जिसके हृदय में किसी के प्रति प्रेम जितना ही प्रगाढ़ होता है, उसे अपनी अधिक आशंकायें उठा करती हैं।

सखियों के कहने का तात्पर्य है कि हमारे हृदय में तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम होने के कारण ही ऐसी आशंका उत्पन्न हो गई है, अन्य किसी कारण से नहीं, अतः कोई भय मत करो। इस प्रकार वे अपनी प्रिय सखी (शकुन्तला) को भयविह्वल होने से बचाने का प्रयास करती है, यद्यपि उनका यह प्रयास शकुन्तला के भविष्य के लिये हितकर नहीं हुआ, किन्तु यह विधि (प्रस्तुत प्रसंग में नाटक के स्रष्टा कवि) का विधान था।

(20) अर्थो हि कन्या परकीय एव।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के चतुर्थं अङ्क से उद्धृत है। यहाँ महर्षि कण्व शकुन्तला को पतिगृह भेजकर अपने को प्रसन्नचित्त और उत्तर- दायित्व के बोझ से चिन्ताविहीन अनुभव कर रहे हैं।

व्याख्या— महर्षि कण्व कहते हैं कि -'कन्या वस्तुतः पराया ही धन है। आज उसे पति के पास भेजकर मानों चिरकाल से निक्षिप्त धरोहर लौटाकर तत्काल प्रसन्नचित्त हो गया हूँ।'

भाव यह है कि आज से शकुन्तला को पतिगृह भेजकर मेरा यह हृदय उसी प्रकार प्रसन्न हो रहा है जिस प्रकार धरोहर लौटाने पर धरोहर रखने वाले व्यक्ति का मन प्रसन्न होता है।

(21) अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकार।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के पंचम अंक से उद्धृत है।

व्याख्या-जिस समय राजा दुष्यन्त प्रजा का धर्म कार्य करने से श्रान्त होकर तनिक विश्राम करने के हेतु अन्दर चले जाते हैं, वैसे ही कण्व के शिष्य शकुन्तला को लेकर राजगृह में पहुंचते हैं और कंचुकी से राजा के दर्शन कराने को कहते हैं। उस समय कंचुको अपने मन में सोचता है कि यद्यपि महाराज के लिये धर्मकार्य अनतिक्रमणीय है, वे मुनिजन सन्दर्शनरूप धर्मकार्य का उल्लंघन नहीं कर सकते, अर्थात् वे सूचना पाते ही मुनिजनों से अवश्य मिलेंगे, अतः कण्व-शिष्यों के आगमन की उन्हें अभी सूचना देनी चाहिये, तथापि अभी-अभी प्रजाकार्यपरिवीक्षण से धककर उठे हुए महाराज की पुनः तुरन्त ही कण्व-शिष्यों के आगमन का निवेदन करने को (अर्थात् निवेदन करके कष्ट देने को) जी नहीं चाहता। इतना सोचने के पश्चात् वह (कंचुकी) तुरन्त ही पुनः मन में विचार करता है। 'अथवाऽविश्रमोऽय लोकतन्त्राधिकार' अर्थात् मेरा ऐसा सोचना बेकार है क्योंकि प्रजापालन के अधिकार (कर्तव्य) में विश्राम कहाँ ? तात्पर्य यह है कि जिनके कन्भों पर प्रजापालन एवं लोकरक्षण का भार है, उन्हें आराम करने को अवकाश कहाँ, जैसे कि सूर्य एक बार ही रथ में घोड़े जोत कर निरन्तर चलता ही रहता है, वायु भी रात-दिन चलता रहता है तथा शेषनाग भी सदैव भूमि का भार सिर पर रखे रहते हैं, राजा का भी वैसा ही धर्म है। मुझे निःसंकोच कण्व-शिष्यों के आगमन को

सूचना दे देनी चाहिये। उपर्युक्त शब्दों के द्वारा महाकवि ने कर्तव्य तथा तत्कालीन राजतन्त्र की एक अत्यत्तुम झाँकी प्रस्तुत की है।

(22) श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के पञ्चम अंक से उद्धृत है। व्याख्या-जब दुर्वासा मुनि के शाप के कारण राजा दुष्यन्त गर्भवती शकुन्तला को भूल कर परस्त्री की शंका के कारण स्वीकार करने को तैयार न हुए तो कण्व-शिष्य शारद्वत ने शकुन्तला से कहा कि वह राजा को विश्वास दिलाने वाला उत्तर दे। अगत्या शकुन्तला राजा को उसकी अंगूठी दिखाकर विश्वास करना चाहती है किन्तु अँगुली को अँगूठी से रहित देखकर अत्यन्त दुःखी हो जाती है और राजा से कहती है कि इसमें तो भाग्य ने अपनी प्रभुता दिखा दी। खैर, आपको दूसरा प्रमाण बताती हूँ। शकुन्तला के इस वाक्य को सुनकर राजा शकुन्तला पर स्त्री-भाव की वाग्विदम्यता (प्रत्युत्पन्नमतित्व) तथा कुटिलता का आक्षेप करते हुए कहता है- 'श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्'

अर्थात् तो क्या अब सुनाने पर आ गई हो ? पहले तो दिखाकर शंका दूर करने की बात थी, किन्तु अब सुनाना ही शेष रह गया है। भाव यह है कि सुनने से देखना अधिक प्रामाणिक होता है किन्तु जब दिखाने को तुम्हारे पास कोई प्रमाण (निशानी) है ही नहीं, तो बातों के द्वारा (अर्थात् झूठी बात) मुझे बहकाने (भुलावे में डालने) को तैयार हुई है। "स्त्री-स्वभाव की इस

विशेषता को कवि ने अन्यन्त्र भी 'इदं तत्प्रत्युत्पन्नपति स्वैणमिति बटुल्यते' तथा 'स्त्रीणाशिक्षितपटुत्वममानुषीषु' इत्यादि वाक्यों के द्वारा व्यजित किया है।

(23) अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्

प्रसंग— महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक से पञ्चमाङ्कगद यह सुभाषित कण्व-शिष्य शार्ङ्गरव का शकुन्तला के प्रति कथन है।

व्याख्या-जब परपरिग्रह की आशंका से दुष्यन्त ने शकुन्तला को कथमपि स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत्त यह आक्षेप किया कि इस प्रकार के मीठे वचनों से अपना कार्य सिद्ध करने वाली स्त्रियों के असत्य किन्तु मधुमय वचनों से विषयी लोग ही आकृष्ट होते हैं, तो शकुन्तला अत्यन्त दुःखी होकर रोदन करने लगी कि पुरुवंश के विश्वास में मैं ऐसे प्रतारणा पटु पुरुष के चक्कर में आ गई। उसी समय कण्व-शिष्य शार्ङ्गरव शकुन्तला से कहता है कि जो काम बिना समझे-बुझे मन की चञ्चलतावश कर डाला जाता है यह भविष्य में इसी प्रकार दुःखदायी होता है। वह आगे कहता है-

अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेध्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ।।

अर्थात् प्रेम या मैत्री समझ-बूझकर करनी चाहिये, विशेषतः एकान्त प्रेम अर्थात् गान्धर्व विवाह आदि तो कुल-शील आदि का भली-भाँति ज्ञान कर लेने के बाद ही करना चाहिये क्योंकि यदि ऐसे व्यक्ति से प्रणय कर लिया जाता है जिसके हृदय का पता न हो तो वह प्रेम इस प्रकार शत्रुता में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार -भारवि ने भी कहा है कि

'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्' ।

इस श्लोक के द्वारा कालिदास ने शार्ङ्गरव के मुख से गान्धर्व विवाह (Love Marriage) के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा प्रेम विवाह के दोषों की ओर ध्यान दिलाया है। प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में भी गान्धर्व विवाह अप्रिय हो चला था।

(24) स्वभाव एवैश परोपकारिणाम् ।

प्रसंग— यह सूक्ति कालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के पञ्चम अंक से उद्धृत है। कण्व के शिष्य गौतमी के साथ शकुन्तला को लेकर राजा के पास गये। राजपुरोहित उन्हें राजा के पास ले गये। कण्व का शिष्य शार्ङ्गरव राजा को देखकर पुरोहित से बोला कि हे महाब्राह्मण । भले ही राजा प्रशंसनीय है, फिर भी हम लोग इस विषय में उदासीन है- **व्याख्या**— शार्ङ्गरव कहता है कि राजा दुष्यन्त विनम्र हो-यह उनका स्वभाव है, क्योंकि राजा एक सज्जन पुरुष है। परोपकार करना सज्जन पुरुषों का स्वभाव है। देखिये-फल लगने पर वृक्ष झुक जाते हैं, वर्षा में नये जलों से भरे हुए बादल बहुत दूर तक लटक जाते हैं। सज्जन पुरुष सम्पत्ति आने पर विनम्र हो जाते हैं। उन्हें सम्पत्ति का अहंकार नहीं होता। जिस प्रकार वृक्ष, मेघ और सज्जन पुरुष सम्पत्ति से झुक जाते हैं, विनम्र होते हैं, उसी प्रकार राजा का भी विनम्र होना उसका स्वभाव है।

(25) उपयन्तुहिं दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ।

प्रसंग— यह सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक से ली गई है। शार्ङ्गरव क्रुद्ध होकर जब खोटी-खोटी बातें सुनाता है तो राजा कहता है कि हे तपस्विन् ! आप ठीक कहते हैं, पर इन्हें धोखा देकर हमें क्या मिलेगा ? शार्ङ्गरव के यह कहने पर कि 'अधोगति' राजा अधःपतन हो, यह बात विश्वास के योग्य नहीं है, तब शारद्वत शार्ङ्गरव से कहता है कि इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या लाभ ? हमने गुरुजी का सन्देश कह दिया है। फिर राजा से कहता है-

व्याख्या-शारद्वत कहता है कि हे राजन् ! यह शकुन्तला आपकी पत्नी है। इसे स्वीकार करें या छोड़ दें यह आपका अधिकार है। पत्नी पर पति का सब प्रकार का अधिकार होता है। शकुन्तला आपकी पत्नी है। इस पर आपका पूर्ण अधिकार है। आप चाहे इसे रखिये, चाहें छोड़ दीजिये।

(26) अचेतनं नाम गुणं न लक्ष्यते

प्रसंग— यह सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के षष्ठ अंक से ली गई है। राजा दुष्यन्त अंगूठी को देखकर पश्चाताप करते हुए कहते हैं कि शचीतीर्थ में वन्दना करते हुए यह अंगूठी जल में गिर गई थी, जिसे मछली निगल गई। उसे धीपर ने मछली के पेट से प्राप्त किया। दुर्वासा के कारण, अंगूठी न मिलने से शकुन्तला से प्रेम-सम्बन्ध में सन्देह हो गया था। अंगूठी के मिलने पर उसे याद आ गया। इसके बाद अंगूठी को उलाहना देते हुए राजा दुष्यन्त कहता है-

व्याख्या— राजा अंगूठी को लक्ष्य करके कहता है कि हे मुद्रिके । तुम शकुन्तला की कोमल एवं सुन्दर अंगुलियों को छोड़कर कैसे गिर गई ? भले ही अचेतन (जड़) वस्तु किसी के गुण को न पहचाने, किन्तु सचेतन मैंने भी शकुन्तला का परित्याग क्यों कर दिया ? अंगूठी तो अचेतन है और अचेतन अंगूठी ने शकुन्तला को न परखकर परित्याग कर दिया तो कोई बड़ी बात नहीं है ? मैं तो सचेतन हूँ ? मैंने क्यों नहीं उसके गुणों की परख की और गुणों की परख न करके उसे छोड़ दिया। यहाँ अचेतन अंगूठी पर चेतन प्राणी का आरोप होने से 'समासोक्ति' अलंकार है। सामान्य से विशेष का समर्थन होने से 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है।

(27) वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा

प्रसंग— यह सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के षष्ठ अंक से ली गई है। राजा दुष्यन्त निःसन्तान होने का दुःख प्रकट करते हुए कहता है- अहो ! सन्तानहीन पुरुष के मर जाने पर उसकी सम्पत्तियाँ दूसरे के पास चली जाती हैं। क्या मेरे मरने के बाद मेरी सम्पत्ति का भी दूसरे उपयोग करेंगे ? क्या पुरुवंश की राज्यलक्ष्मी की भी यहीं दशा होगी। शकुन्तला का तिरस्कार करने वाले मुझको धिक्कार है।

व्याख्या— राजा कहता है कि समय पर बीज डाली गई अधिक अन्न देने में समर्थ पृथ्वी के समान समय पर गर्भ के हेतु वीर्य का आधान की गई शकुन्तला का परित्याग कर दिया। भारतीय मान्यता के अनुसार पुत्र आत्मा है अर्थात् पिता स्वयं पुत्र के रूप में जन्म लेता है। वह अपने को ही गर्भ के रूप में आधान करता है। इसीलिये सपुत्रा स्त्री को वंश को प्रतिष्ठा कहा गया है।

(28) मनोरथानामतटप्रपाताः ।

प्रसंग— यह सूक्ति कालिदास द्वारा विरचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक के षष्ठ अंक से अवतरित है। राजा दुष्यन्त को धीवर के द्वारा मछली के पेट से निकली हुई अँगूठी मिल जाने से

दुर्वासा का शाप समाप्त हो गया और शकुन्तला के साथ प्रेम सम्बन्धी सारी बातें याद आ गईं। वह शकुन्तला के वियोग में दुःखी रहने लगा। वह उसके विषय में तर्क करता है-

व्याख्या— राजा दुष्यन्त कहता है कि शकुन्तला का प्रथम मिलन क्या स्वप्न था या माया अथवा मेरी बुद्धि का भ्रम था अथवा मेरे मन्द पुण्यों का फल था ? जो कभी फिर न लौटने के लिये चला गया। वह सोचता है, "ये मनोरथ नदी के तट के समान उठते हैं और गिर जाते हैं। जिस प्रकार नदी का तट वर्षा में गिरकर नदी में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार मेरे मन की आशायें उठती हैं और विलीन हो जाती हैं। वर्षाकाल में जब नदियाँ उमड़ती हैं तो तटों को ढहा देती हैं, उसी प्रकार मेरे मन में शकुन्तला की आशायें उठती हैं फिर विलीन हो जाती हैं।

(29) अहो, ईदृशी स्वकार्यपरता। अस्य सन्तानेनाहं रमे।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के छठे अङ्क के अन्तर्गत सानुमती का कथन है।

व्याख्या-जब राजा दुष्यन्त शकुन्तला की याद करके उसके वियोग में अत्यन्त दुःखी होता है, तो उसके दुःख को देखकर सानुमती को बड़ी प्रसन्नता होती है। सानुमती को इसीलिये भेजा गया था कि वह जाकर देखे कि शकुन्तला को त्याग कर अब राजा के चित्त की अवस्था कैसी है। अतः सानुमती राजा को शकुन्तला विरह में जितना ही अधिक सन्तप्त होते देखती थी, उतने ही उसे प्रसन्नता होती थी क्योंक राजा का वह सन्ताप ही शकुन्तला के प्रति उनके प्रगाढ़ प्रेम का (जो उसे अभीष्ट था) प्रमाण था। साथ ही यह आशा भी थी कि राजा शकुन्तला के लिये जितना ही अधिक सन्तप्त होगा, उतना ही उसे शीघ्रताशीघ्र प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करेगा। अतः सानुमती अपने मन में कहती है-

अहो, ईशी स्वकार्यपरता। अस्य सन्तापेनाऽअहं रपे'।

मनुष्य को अपने स्वार्थ के प्रति तत्परता होती है, कि इसके दुःख में भी मुझे आनन्द आता है और उस आनन्द में ऐसी तन्मय हो गई कि सामान्य जीवन धर्म को भी भूल गई। वस्तुतः प्रत्येक वस्तु अपनी अनुकूलता या प्रतिकूलता से ही प्रिय या अभिय होती है।

(30) अनार्यः खलु परदारपृच्छाव्यवहारः।

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के सप्तम अङ्क से उद्धृत है।

व्याख्या— मुनि कश्यप को आश्रम में सिंहशावक को क्रीड़ा में परेशान करते हुए शकुन्तला के पुत्र सर्वदमन को जब राजा दुष्यन्त उसे 'महर्षिपुत्र' कहकर सम्बोधित करता है, तो तापसी कहती है कि यह ऋषिकुमार नहीं है, अपितु पुरुवंशी है। राजा के पूछने पर कि इसकी माँ किस राजर्षि की पत्नी है, वह उत्तर देती है कि धर्मपत्नी का परित्याग करने वाले उस अधर्मी का कौन नाम लेगा ? राजा मन में सोचता है कि यह सारी कथा मेरे ऊपर ही घटित हो रही है। अतः निश्चय करने के लिये उस शिशु की माता का नाम पूछने का विचार करता है, किन्तु तत्क्षण ही उसके ध्यान में आता है कि उसकी माता का नाम पूछना उचित नहीं एवं अपने मन में कहता है कि-

अथवानार्यः परदारव्यवहारः अर्थात् परस्त्री के विषय में पूछताछ करना सज्जनों का काम नहीं। उपर्युक्त कथन पर महाराज दुष्यन्त के चरित्र को उच्चता पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है एवं

संदिग्धावस्था में उसके द्वारा किये गये पत्नी-परित्याग का रहस्योद्घाटन तथा तज्जन्य दोष का बहुत कुछ क्षालन हो जाता है।

उक्त सूक्ति महाकवि कालिदास की चरित्र-चित्रण दक्षता का ज्वलन्त उदाहरण है।

(31) अप्याचरितव्यमभ्युदयकालेषुः

प्रसंग— उपर्युक्त सूक्ति महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के सप्तम अङ्क के अन्तिम भाग से उद्धृत है।

व्याख्या— जब मुनि कश्यप के आश्रम में दुष्यन्त और शकुन्तला का परस्पर मिलन हो जाता है, उसी समय मातलि आकर राजा से कहता है कि आइये, भगवान् कश्यप आपको दर्शन देने के लिये उत्सुक है। यह प्रिय वचन सुनकर राजा शकुन्तला से कहता है कि प्रिये, बालक का हाथ पकड़ो। तुम्हें आगे करके मैं भगवान् कश्यप के दर्शन करना चाहता हूँ। इस पर शकुन्तला कहती है कि आपके साथ मुझे गुरुजनों के समीप जाते लज्जा आती है। धर्मपत्नी का यह वचन सुनकर राजा कहता है-

अभ्युदय (मंगल, हर्ष, उत्सव आदि) के अवसरों पर तो यही उचित आचार है। भाव यह है कि यद्यपि लज्जा रमणी का भूषण है, तथापि मंगलावसरों (संस्कार, यज्ञ आदि) पर तो उसे पति के साथ सहधर्मिणी होने के कारण समस्त कार्यों में भाग लेना उचित है तथा यही आर्यपरम्परा है।

उक्त कथन से प्राचीन भारत की पर्दा-प्रथा के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है कि विवाहित, युवती-स्त्रियाँ सामान्यतः गुरुजनों से लज्जा करती थीं, किन्तु यज्ञादि मंगल कृत्यों एवं उत्सवों के अवसर पर वे पति के साथ समस्त कार्यों में भाग लिया करती थीं, यही आर्ष वैदिक परम्परा थी

बहुविकल्पीरय प्रश्न—

1. सूक्ति शब्द किस प्रत्यय से बना है।
   A. क्तिन् प्रत्यय
   B. क्त प्रत्यय
   C. क्तन् प्रत्यय
   D. ल्यप् प्रत्यय
2. सूक्ति में किस धातु का प्रयोग हुआ है।
   A. कथ् धातु
   B. वच् धातु
   C. चल् धातु
   D. उवाच् धातु
3. पाश्चात्य विद्ववानों ने सुक्ति के लिए किन शब्दों का प्रयोग किया है।
   A. ऐन्थोलौजी
   B. कोटेशन्स
   C. क एवं ख दोनों
   D. उक्त में से कोई नही

4. सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन होने से पर कौन सा अलङ्कार होता है।

A. उत्प्रेक्षा अलङ्कार
B. निदर्शना अलङ्कार
C. अर्थान्त्ररन्यास अलङ्कार
D. उपमा अलङ्कार

5.4 सारांश:-

महाकवि कालिदास का पाण्डित्य विद्वत्समाज में पूजनीय है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में विभिन्न अनुशीलनात्मक सुक्तियों के माध्यम से कवि ने अपने वेदुष्य को यहां प्रदर्शित किया है, और अपने व्यक्तित्व से उन सुक्तियों का दर्शन कराया है। शाकुन्तलम् में एक साथ अनेक उपदेशात्मक तत्वों का उल्लेख कर कवि ने आज भी इसकी कीर्ति को यथावत रखा है। ये सूक्तियां जनमानस के दिग्दर्शन करने में अत्यंत उपयोगी हैं। इन सुक्तियों का अवलोकन करने से यह तो निश्चित हो ही जाता है कि कवि कालिदास शास्त्रों की उपयोगिता को समझते थे, साथ ही उस सिद्धान्त को जनमानस के मध्य रख कर उसे कीर्ति देने में समर्थ थे।

इन्हीं उपदेशात्मक सुक्तियों को आपने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जाना तथा महाकाव्य में आये हुए सूक्तियाँ की व्याख्या के द्वारा आपके प्रतिभा चक्षु से स्पर्श कराने का प्रयास किया गया है।

5.5 शब्दावली

शब्द	=	**अर्थ**
उपमा	=	तुलना
पुरुषार्थ चतुष्टय	=	धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
अर्थान्तरन्यास	=	सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन होना

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- बहुविकल्पीय प्रश्न-

1-A
2-B
3-C
4-D

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा॰ कपिलदेव द्विवेदी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – महाकवि कालिदास,कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी।

5.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – महाकवि कालिदास,कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः सुक्ति की व्याख्या कीजिए।
2. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् सुक्तिकी व्याख्या कीजिए।
3. अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते सुक्ति की व्याख्या कीजिए।
4. अहो कामी स्वतां पश्यति की व्याख्या सुक्ति कीजिए।